सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

[चतुर्थ प्रदेशबन्धाधिकार]

पुस्तक ७

भारतीय ज्ञानपीठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक-९

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्तशास्त्र]

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

[चतुर्थ प्रदेशबन्धाधिकार]

हिन्दी अनुवाद सहित

पुस्तक ७

सम्पादन-अनुवाद

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वितीय संस्करण : १९९९ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ६, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-११० ०३२

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Moortidevi Jain Granthamala : Prākrita Grantha No. 9

MAHĀBANDHO

[MAHĀDHAVALA SIDDHĀNTAŚĀSTRA]

of

Bhagavanta Bhūtabalī

[CHATURTHA PRADEŚA-BANDHĀDHIKĀRA]

Vol. VII

Edited and Translated by

Pt. Phoolchandra Siddhantashastri

BHARATIYA JNANPITH

Second Edition : 1999 □ Price : Rs. 140.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 • Vikrama Sam. 2000 • 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in the respective languages with their translations in modern languages.
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies, art and architecture by competent scholars, and also popular Jain literature.

•

General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : Nagri Printers, Delhi-110032

All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाबन्ध का सारांश

महाबन्ध क्या है?

'महाबन्ध' का सीधा-सादा अर्थ है--महान बन्धन। दुनिया में एक-से-एक बड़े बन्धन हैं जिनको शारीरिक, मानसिक और भौतिक शक्तियों के बल से तोड़ा जा सकता है, लेकिन मोह, राग एक ऐसा बन्धन है जिसे साधु, सन्त, योगी ही अध्यात्मयोग से तोड़ सकता है। मोह, राग-द्वेष का नाम 'कर्म' है। इनमें अपनेपन की बुद्धि से कर्मबन्ध होता है। कर्म-बन्ध से जन्म-मरण, सुख-दुःख की प्राप्ति होती है जो संसार का मूल कारण है। 'कर्म' किसी भाव का नाम मात्र नहीं है, किन्तु वह एक हक़ीक़त है जो द्रव्य और भाव रूप से अपना अस्तित्व रखती है। इसलिए मूल में कर्म के दो भेद हैं--भावकर्म और द्रव्यकर्म। जिसकी कोई शुरुआत नहीं है, ऐसे काल के अनादिनिधन प्रवाह में अनादि काल से भावकर्म के निमित्त से द्रव्यकर्म और द्रव्यकर्म के निमित्त से भावकर्म प्रत्येक समय में उत्पन्न होता रहता है।

जो सदा काल ज्ञान, दर्शन में चेतता है उसे 'चैतन्य' और जो जीवित रहता है उसे 'जीव' कहते हैं। जीव चेतन है, कर्म जड़ है। लेकिन अनादि काल से दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। आगम ग्रन्थों में 'कर्म' शब्द का प्रयोग इन तीन अर्थों में मिलता है—जीव की स्पन्दन क्रिया, जिन भावों (राग-द्वेष, मोह) से स्पन्दन क्रिया होती है और जो कर्म रूप (कार्मण) पुद्गलों में संस्कार के कारण उत्पन्न होते हैं। वास्तव में जन्म-जन्मान्तरों में बने रहनेवाले वासनात्मक संस्कार 'कर्म' हैं। 'कर्म' का मुख्य काम जीव को संसार में रोककर रखना है। राग-द्वेष और मोह के निमित्त से आत्मा के साथ जो कर्म सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं उनके साथ अमुक समय तक बने रहने को स्थिति कहते हैं।

'महाबन्ध' सात पुस्तकों में है। पहली पुस्तक प्रकृतिबन्धाधिकार है। इसमें कर्म के स्वभाव का स्वरूप बताया गया है। 'प्रकृति' का अर्थ स्वभाव है। कर्म के असली स्वभाव का नाम मूल प्रकृति है। अलग-अलग भाग के रूप में जिसे कहा जाए वह उत्तर प्रकृति है। स्वभाव बतलाने का प्रयोजन द्रव्य की स्वतन्त्रता बतलाना है। जीव कभी कर्म रूप नहीं होता और कर्म कभी जीव रूप नहीं होता। किन्तु इन दोनों के सम्बन्ध का नाम बन्ध है। कोई भी वस्तु अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ती। नीम अपनी कड़वाहट छोड़कर मीठा नहीं होता और शक्कर कभी मिठास छोड़कर अन्य रस-रूप नहीं होती।

आगम छह खण्डों में निबद्ध है। आगम ग्रन्थों को ही सिद्धान्तशास्त्र कहते हैं। आचार्य नेमिचन्द्र का कथन है कि जीवस्थान, क्षुद्रकबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध के भेद से षट्खण्ड रूप सिद्धान्तशास्त्र है। (कर्मकाण्ड, गा. ३९७)

कर्म की सामान्य प्रकृतियाँ १४८ हैं। इनके विशेष भेद अनन्त हो जाते हैं। ओघ से ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तराय की प्रकृतियों का सर्वबन्ध होता है। आयुकर्म को छोड़कर सातों कर्मों की प्रकृतियाँ निरन्तर बँधती रहती हैं। कर्म की प्रकृतियों के स्वरूप को कहना, वर्णन करना 'प्रकृति-समुत्कीर्तन' कहलाता है जो 'महाबन्ध' के प्रथम भाग का मूल विषय है। यह 'प्रकृतिबन्ध-अधिकार' 'षट्खण्डागम' के वर्गणा खण्ड के अन्तर्गत बन्धनीय अर्थाधिकार में २३ पुद्गल वर्गणाओं की प्ररूपणा में विवेचित है। २४ अनुयोगद्वारों में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। 'महाबन्ध' में भी यही शैली अपनाई गयी है। इसमें ज्ञानावरणीय की उत्तर तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियों का विवेचन किया गया है। यह कहा गया है कि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों के निमित्त से कर्म उत्पन्न होते हैं और कर्मों के निमित्त से जाति, बुढ़ापा, मरण और वेदना उत्पन्न होती है। कर्म शुभ और अशुभ दोनों तरह के होते हैं। जीवों को एक और अनेक जन्मों में पुण्य तथा पाप कर्म का फल मिलता है। कर्म के उदय में जीव के राग-द्वेष और मोह रूप भाव होती है। उन भावों के कारण कर्म बँधते हैं। कर्मों से चार (मनुष्य, तिर्यंच, नरक, देव) गतियों में जन्म लेना पड़ता है। उससे शरीर मिलता है। शरीर के मिलने से इन्द्रियाँ होती हैं। उनसे यह जीव विषयों को ग्रहण करता है। विषयों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ग्रहण करने से राग-द्वेष रूप परिणाम होते हैं। यही संसार-चक्र है।

'महाबन्ध' में सामान्यतः बन्ध के चार भेदों (प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेश-बन्ध) का बहुत विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। मूल में प्रश्न यह है कि जीव अमूर्त है और कर्म मूर्तिक है। अमूर्तिक होने से जीव में स्पर्श गुण नहीं है। जब जीव कर्म को छू नहीं सकता है तो फिर बँधता कैसे है? इसका मुख्य कारण जीव की अपनी कमजोरी है। जीव ज्ञानमय है, लेकिन ज्ञानावरण कर्म के उदय में अपने को भूला हुआ पर को जानने में लगा रहता है। परिणमन करने की शक्ति जीव में है। अतः राग-द्वेष, मोह रूप परिणमन से कर्म का बन्ध करता रहता है और अज्ञानी (आत्मज्ञान नहीं होने से) बना रहता है। मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के निमित्त से कर्म का बन्ध होता है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन का बन्ध करने वाला मिथ्यादृष्टि होता है। (महाबन्ध, भा.१, पृ.४७) मिथ्यात्व के उदय में ही प्रथम गुणस्थान (योग और मोह से उत्पन्न स्थिति) होता है। मिथ्यात्व के भाव से मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का बन्ध करता है। मिथ्यात्व का बन्ध करने वाला ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण शरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, अपघात, निर्माण और ५ अन्तराय का नियम से बन्धक है। (वही, पृ.१३५) मिथ्यात्व में भी रंजना शक्ति है, इसलिए मिथ्यात्व का बन्ध करने वाला तीनों लोकों का स्पर्शन करता है। मिथ्यात्व के बन्धकों का स्पर्शन-क्षेत्र ८/१४, १३/१४ या सर्वलोक है। (वही, पृ. २४८) यही नहीं, 'कर्म की स्थिति' से मतलब केवल 'मोह' या 'मिथ्यात्व' की सत्तर कोड़ा-कोड़ी (एक करोड़ में एक करोड़ का गुणा करने पर जो संख्या हो) सागर की स्थिति से है जिसमें सब कर्मों की स्थिति का संग्रह है। (महाबन्ध, भा. १, पृ.६३)

कर्म की स्थिति दो तरह की होती है—कर्मस्थिति और निषेकस्थिति। द्रव्यकर्म आठ प्रकार के हैं—ज्ञानावरणीय (जो सम्पूर्ण ज्ञान को प्रकट होने से रोके), दर्शनावरणीय (जो पूर्ण दर्शन को विकसित न होने दे), वेदनीय (जिससे सुख-दुःख का वेदन हो), मोहनीय (जिससे मोह रूप अनुभव हो), आयु (जिससे जीव को अमुक समय तक शरीर में रहना पड़े), नाम (जिससे गति, जाति, शरीर आदि मिलता है), गोत्र (ऊँच-नीच कुल जिससे मिले) और अन्तराय (बिघ्न-बाधा उत्पन्न करनेवाला)। ये कर्म की मूल प्रकृति के आठ भेद कहे गये हैं। इन आठ मूल प्रकृतियों के १४८ भेद होते हैं। इनमें से कर्मबन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं। यद्यपि उत्तर प्रकृतियाँ १४८ हैं, लेकिन दर्शन मोहनीय की सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो अबन्ध-प्रकृतियाँ हैं और पाँच बन्धनों तथा पाँच संघातों का पाँच शरीरों में अन्तर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार स्पर्शादिक के बीस भेदों के स्थान पर चार का ग्रहण किया गया है, इसलिए २८ प्रकृतियाँ कम हो कर १२० प्रकृतियाँ कही गयी हैं। इन कर्म-प्रकृतियों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय की १९, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भयद्विक, तैजसद्विक, अगुरुलघुद्विक, निर्माण और वर्णचतुष्क ये ४७ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं।

द्रव्यकर्म की रचना कर्म-परमाणुओं से होती है। जीव के राग-द्वेष, मोह भाव के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो स्पन्दन क्रिया होती है, उससे समान गुण वाले वर्गों का समूह वर्गणा रूप परिणमन करता है जो कर्म का आकार ग्रहण करता है। यद्यपि वर्गणाएँ तेईस प्रकार की कही गयी हैं, किन्तु उनमें से आहार वर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मणवर्गणा ये ही पाँच ग्रहण योग्य हैं। कार्मण-वर्गणा से कर्म की रचना होती है। कर्म के परमाणु कहीं बाहर से नहीं आते, वे शरीर में ही विद्यमान (मौजूद) हैं। प्रत्येक कर्म-प्रकृति की वर्गणा भिन्न-भिन्न है। कर्म-परमाणु स्कन्धों के रूप में निक्षिप्त होते हैं जिनको निषेक कहा जाता है। कर्म निषेक रूप में बँधते हैं और निषेक रूप में झड़ते हैं। मिथ्यादर्शन, असंयमादि परिणामों से कार्मण वर्गणा के परमाणु कर्म रूप से परिणत होकर जीवप्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं जिसे 'प्रकृतिबन्ध' कहते हैं। इस प्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा २४ अनुयोगद्वारों में की गयी है जो 'महाबन्ध' की पहली पुस्तक के रूप में है। एक समय में एक ही कर्म-प्रकृति का बन्ध होता है। उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध प्रकृतिबन्ध में सम्भव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाबन्ध का विषय–

'महाबन्ध' का मूल विषय कर्म-बन्ध है। बन्ध का अर्थ है–बँधना। प्रश्न यह है कि जीव बँधता है, कर्म बँधता है या दोनों परस्पर बँधते हैं अथवा बाँधते हैं। आचार्य भूतबली भगवन्तों का अभिप्राय प्रकट करते हुए कहते हैं–'को बंधो को अबंधो।' (पु.१, पृ.३६) अर्थात् मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली तक सभी बन्धक हैं। 'बन्ध' का अर्थ बँधना तथा बँधनेवाला है। यदि जीव कर्म से बँधता है तो संसारी है और कर्मों से छूट जाता है तो मुक्त है। यह सुनिश्चित है कि जीव अपने आपको भूल जाने के कारण स्वयं अज्ञान से बँधा हुआ है, तभी कर्म उसके साथ संयोग में हैं। लेकिन महज संयोग मात्र नहीं है, हक़ीक़त भी है। जीव के स्वभाव में किसी कर्म का प्रवेश नहीं है। कहा भी है–"दव्वस्स दव्वेण दव्व-भावाणं वा जो संजोगो समवाओ वा सो बंधो णाम।" (षट्खण्डागम, धवला पु.१४, पृ.१) अर्थात् द्रव्य का द्रव्य रूप से और द्रव्य का भाव रूप से जो संयोग या समवाय है उसका नाम बन्ध है। व्यवहार से भी जीव भावों के सिवाय कुछ नहीं कर सकता है। अतः राग-द्वेष, मोह के अतिरिक्त कर्म की प्रकृति क्या है? उसका सम्बन्ध जीव के प्रदेशों के साथ है। यह भी स्पष्ट है कि एक साथ कुछ समय तक एक ही प्रदेश में जीव और कर्म के रहे बिना सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। इसलिए जीव और कर्म का एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध कहा गया है। जैसे एक ही बर्तन में दूध और पानी मिले हुए होने पर भी अलग-अलग हैं, इसी प्रकार जीव और कर्म के एक साथ रहने पर भी वे दोनों अलग-अलग हैं। यही नहीं, दोनों के काम भी अलग-अलग हैं, लेकिन कर्म का फल जीव को मिलने के कारण; क्योंकि जीव उस रूप वेदन करता है, इसलिए कर्म की प्रकृति को जीव रूप कहा जाता है अर्थात् उस समय जीव का वही भाव होता है।

चौदह गुणस्थानों में से प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विक का बन्ध न होने से ११६ प्रकृतियों का बन्ध होता है। द्वितीय गुणस्थान सासादन में मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियों का बन्ध न होने से १०१ कर्म-प्रकृतियों का बन्ध होता है। मिश्र गुणस्थान में ६६ प्रकृतियों का बन्ध होता है। चतुर्थ गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि के देवायु और तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध प्रारम्भ हो जाने से ६१ कर्म-प्रकृतियों का बन्ध होता है। पंचम देशविरत गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण ४ प्रकृतियों का बन्ध न होने से ६७ प्रकृतियों का बन्ध होता है। प्रमत्तगुण में ६३ और अप्रमत्तगुणस्थान में ५६ प्रकृतियों का बन्ध होता है। अपूर्वकरण में ५८ प्रकृतियों का, अनिवृत्तिकरण में २२ प्रकृतियों का तथा उपशान्तकषाय में १७ कर्म-प्रकृतियों का बन्ध होता है। सूक्ष्म साम्पराय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली गुणस्थानों में केवल १ कर्म-प्रकृति का बन्ध होता है। किन्तु चौदहवें गुणस्थान अयोगकेवली में किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं होता।

जैनधर्म भावप्रधान है। जीवों के मिथ्यात्व अवस्था में मिथ्या भाव होते हैं और सम्यक्त्व अवस्था में सम्यक्त्व भाव होते हैं। वास्तव में जीव में प्रत्येक भाव रूप परिणमन उसकी अपनी योग्यता से होता है, किन्तु कथन निमित्तसापेक्ष किया जाता है। सिद्धान्तशास्त्र में अन्तरंग, बहिरंग कारण निमित्त की अपेक्षा कहे गए हैं। परन्तु जीव का स्वभाव परमनिरपेक्ष है। अन्तर इतना ही है कि परमागम में आत्मा के सहज शुद्ध स्वभाव का वर्णन सर्वप्रथम किया जाता है, किन्तु सिद्धान्त (आगम) ग्रन्थों में उसे सबसे अन्त में समझाया जाता है।

परिणाम दो प्रकार के हैं–सराग और वीतराग। जैनधर्म वीतराग भाव में है। अतः जैनधर्म वीतराग है। पंचगुरु वीतराग हैं। जिनवाणी वीतरागता की प्रतिपादक है और अर्हन्त-प्रतिमा वीतरागता की प्रतीक है। जैनसाधु आदर्श हैं। परमार्थ से वीतरागता ही साधुता है।

अन्य प्रकार से दो प्रकार के परिणाम हैं–उत्कृष्ट और जघन्य। 'अनन्त' नाम संसार का है, क्योंकि उसका कभी अन्त नहीं है। जो संसार का कारण है–वह 'अनन्त' है। यहाँ पर 'मिथ्यात्व' परिणाम को 'अनन्त' कहा गया है। राग, द्वेष संसार का कारण है, बन्ध का कारण है, संसार में टिकानेवाला और उसका फल देने की शक्तिवाला है; किन्तु अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व ही है। जो उस मिथ्यात्व के साथ (अनु)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बँधती है, उसकी सहचरी है, उस कषाय को अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

("तथाहि—अनन्तसंसारकारणत्वात् मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबध्नन्तीत्यनन्तानुबन्धिनः।"—गोम्मटसार, कर्मकाण्ड भा. १, गा. ४५ की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका) मिथ्यात्व में भी स्निग्धता है। (पंचास्तिकाय, गा. ६७, समयटीका)

'महाबन्ध' में यह प्रश्न किया गया है कि किस भाव से जीव कर्म-प्रकृति को बाँधता है? उत्तर है कि सभी प्रकृतियों का बन्ध औदयिक भाव से होता है। (ओदइगो भावो। एवं याव अणाहरउ त्ति णेदव्वं।) अर्थात् जब तक जीव अनाहारक अवस्था प्राप्त नहीं करता है, तब तक औदयिक भाव से कर्म बाँधता है। मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व भाव से चारों गतियों का बन्धक होता है। मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये १६ प्रकृतियाँ मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व भाव से बँधती हैं। ये बन्धव्युच्छित्ति वाली प्रकृतियाँ हैं। (महाबन्ध पृ. ५, पृ. ३७१)

विश्व के सभी प्राणी कर्म-फल में अधिक रुचि रखते हैं। कोई जीव दुःख नहीं चाहता है, सभी सुखी रहना चाहते हैं। किन्तु जीव पुद्‌गल के आलम्बन से, संस्कार (कर्मोदय) के कारण राग-द्वेष, मोह (मिथ्यात्व) भावों को न पहचान कर, उनसे निवृत्त हुए बिना जिन भावों से स्पन्दन किया करता है, उनसे कार्मण पुद्‌गलों को ग्रहण कर निरन्तर कर्म-बन्ध करता रहता है। वस्तुतः मोहनीय कर्म के उदय से बुद्धि का विपरीत परिणमन होता है। यह अज्ञान तथा अध्यवसान भाव ही बन्ध का मूल कारण है। क्योंकि अपने असली भाव को और मौजूदा भाव को वह नहीं पहचानता है।

'महाबन्ध' की द्वितीय, तृतीय पुस्तक में स्थितिबन्ध का प्रतिपादन है। कर्म का मुख्य कार्य जीव को संसार में रोककर रखना है। कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि से स्थिति और अनुभाग बन्ध सबसे अधिक-महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि पूर्व शरीर छूटने पर नवीन जन्म की प्राप्ति के पूर्व ही कहाँ, किस जन्म को धारण करना है और वहाँ कब तक रहना है, यह सब पहले ही सुनिश्चित हो जाता है। 'स्थितिबन्ध' का सामान्य अर्थ है—शरीर में जीव का अमुक समय तक रहना। स्थिति बन्ध के मुख्य चार भेद कहे गये हैं। स्थितिबन्ध तथा अनुभागन्ध का सामान्य कारण कषाय है। आगम में कषायों के विविध भेदों तथा स्थानों का उल्लेख मिलता है। उनमें से कषाय-अध्यवसान-स्थान दो प्रकार के होते हैं—संक्लेशस्थान और विशुद्धिस्थान। असाता के बन्ध योग्य परिणामों को संक्लेश और साता के बन्ध योग्य परिणामों को विशुद्ध कहा जाता है। ये दोनों प्रकार के परिणाम कषायरूप होने पर भी विभिन्न जाति के हैं। फिर जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से दोनों ही तरह के परिणाम अनेक प्रकार के होते हैं। इनका सामान्य नियम यह है कि तिर्यंच-मनुष्य-देवायु के सिवाय सभी प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है, किन्तु विशुद्ध परिणामों से जघन्य स्थितिबन्ध होता है। यहाँ पर विशेष रूपसे उल्लेख योग्य यह है कि 'महाबन्ध' में इन परिणामों के सन्दर्भ में संसारी जीवों को दो रूपों में विभक्त कर दिया है—साताबन्धक और असाताबन्धक। दोनों तरह के जीव तीन-तीन प्रकार के होते हैं—चतुःस्थान, तृतीय स्थान तथा द्विस्थानबन्धक। साता के चार स्थानों का बन्ध करनेवाले जीव सर्वविशुद्ध होते हैं। त्रिस्थानक बन्ध करनेवाले संक्लिष्टतर और द्विस्थानबन्धक जीव उनसे भी अधिक संक्लिष्टतर होते हैं। इसी प्रकार साता के उदय में भी जानना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि 'महाबन्ध' में संक्लेश और विशुद्धि परिणामों में भेद होने पर भी वे विशेष अर्थ के वाचक हैं जो तारतम्य (रूप अंश) के सूचक हैं।

मोहनीय (दर्शनमोह, मिथ्यात्व) कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। इसलिए इसे ज्ञानावरणादि के द्रव्य से बहुत द्रव्य मिलता है। मोहनीय कर्म को जो सर्वघाति द्रव्य मिलता है, उसमें से एक भाग चार संज्वलन कषायों में और दूसरा एक भाग बारह कषायों में तथा मिथ्यात्व में विभक्त हो जाता है। मिथ्यात्व का भाग कषायों और नोकषायों को मिलता है। ("मिच्छत्तस्स भागो कसाय-णोकसाएसु गच्छदि।"—महाबन्ध पु. ६, पृ. ३०७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'महाबन्ध' की चौथी और पाँचवीं पुस्तक में अनुभाग बन्ध का विवेचन है। 'अनुभाग' शब्द का अर्थ है—फल देने की शक्ति। जिस कर्म की जितनी फल देने की शक्ति प्राप्त होती है उसका नाम अनुभागबन्ध है। यह फल निषेकों के रूप में मिलता है। प्रकृतिबन्ध की भाँति पाँचवीं पुस्तक में भी स्पष्ट उल्लेख है कि ओघसे सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवों का कौन भाव है? औदयिक भाव है। (ओघे. सव्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्स अणुभाग बंधए त्ति को भावो? ओदइगो भावो।—पृ. २२१) मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभाग वाला है। अनन्तानुबन्धी लोभ का अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। यही नहीं, अनन्तानुबन्धी लोभ के अनुभाग से मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। (वही, पृ. २२५) यह भी नियम है कि मिथ्यात्व के उत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियम से बन्ध करता है। (वही, पृ.२)

यह भी कहा गया है कि जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं वे ही अनुभागबन्धस्थान हैं। अन्य जो परिणामस्थान हैं वे ही कषाय उदयस्थान कहे जाते हैं। यह अवश्य है कि जघन्य स्थिति में अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान मिथ्यात्व और सोलह कषायों के सबसे कम तथा उत्कृष्टस्थिति में विशेष अधिक होते हैं। इस विशेषता का उल्लेख भी यहाँ किया गया है कि अप्रशस्त ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व के सन्मुख होकर बाँधता है और प्रशस्त ध्रुवबन्ध वाली प्रकृतियों को सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वके सन्मुख होकर बाँधता है। अतः इनके उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध के अन्तरकाल का निषेध किया गया है। (वही, पृ. ३६९)

यद्यपि सर्वघाती और देशघाती का भेद घातिकर्मों में किया जाता है, किन्तु अघातिकर्मों को घातिप्रतिबद्ध मानकर चतुर्थ पुस्तक में निषेकप्ररूपणा और स्पर्धकप्ररूपणा रूप में दो भेद किये गये हैं। आठों कर्मों के जो देशघातिस्पर्धक कहे गए हैं, उनकी प्रथम वर्गणा से लेकर निषेकों का विचार किया गया है। प्रत्येक कर्म-परमाणु में अनन्तानन्त शक्त्यंश उपलब्ध होते हैं। अनुभाग के शक्ति-अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। अनुभाग में ऐसे कर्म-परमाणुओं का कथन किया जाता है जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद पाए जाते हैं। इन कर्म-परमाणुओं के प्रत्येक वर्ग और उनके समुदाय की वर्गणा संज्ञा है। अनुभाग की अपेक्षा एक-एक वर्गणा में अनन्तानन्त वर्ग होते हैं। इस प्रकार की अनन्तानन्त वर्गणाओं का एक स्पर्धक होता है। पहली वर्गणा से दूसरी, तीसरी आदि वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में एक-एक प्रतिच्छेद अधिक होता है। इस प्रकार अन्तिम वर्गणा तक जानना चाहिए।

अघातिकर्मों में प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से अनुभाग दो प्रकार का है। प्रशस्त अनुभाग अमृत के समान और अप्रशस्त अनुभाग विषके समान माना गया है। क्योंकि घातिकर्मों की सभी प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं। सादि-अनादि, ध्रव-अध्रुवबन्धरूप प्ररूपणा की गयी है। इसमें यही विशेष है कि भव्यजीवों में ध्रुवबन्ध नहीं होता है। शेष मार्गणाओं में सादि तथा अध्रुवबन्ध होता है। स्वामित्वप्ररूपणा के अन्तर्गत प्रत्ययानुगम की अपेक्षा छह कर्म मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयमप्रत्यय और कषायप्रत्यय होते हैं। 'महाबन्ध' में बार-बार यह कहा गया है कि औदयिक भाव बन्ध के कारण है। वास्तव में मोह जनित औदयिक भाव ही बन्ध के कारण हैं।

'महाबन्ध' के छठे और सातवें भाग में प्रदेशबन्ध का विशद वर्णन है। कर्मरूप से परिणत पुद्‌गल स्कन्धों की संख्याका अवधारण परमाणु रूप से होना कि कितने परमाणु कर्म रूप से परिणत हुए, उसे प्रदेशबन्ध कहते हैं। जीवके समीप योगस्थानों के द्वारा बहुत प्रदेशों का आगमन होता है। अतः योगस्थान प्ररूपणा के अन्तर्गत दश अनुयोगद्वारों में प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः आठ कर्मों के बन्ध के समय कर्म-परमाणुओं का सबसे अल्प भाग आयुकर्म को मिलता है। उससे विशेष अधिक नामकर्म को और उससे भी विशेष अधिक गोत्रकर्म को मिलता है। उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म को विशेष अधिक भाग मिलता है। उससे भी विशेष अधिक वेदनीय कर्म को मिलता है। यह स्वाभाविक ही है कि जिस कर्म की जैसी स्थिति है, उसे वैसा ही भाग उपलब्ध होता है। मोहनीय का ज्ञानावरणादि के द्रव्य से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत द्रव्य मिलता है। उत्तर प्रकृतियों में कर्म परमाणुओं का वितरण कर्मबन्ध के समय ज्ञानावरणीय कर्म को जो एक भाग मिलता है वह चार भागों में विभक्त होकर आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण इन चार कर्मों को प्राप्त होता है। इनमें विशेष रूप से यह ध्यान देने योग्य है कि मोहनीय कर्म को उपलब्ध देशघातीय भाग दो भागों में विभक्त हो जाता है--कषाय वेदनीय और नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीय का द्रव्य चार भागों में और नोकषायवेदनीय का पाँच भागों में विभक्त हो जाता है। और मोहनीय कर्म को जो सर्वघाति द्रव्य प्राप्त होता है उनमें से एक भाग चार संज्वलन कषायों में तथा दूसरा एक भाग बारह कषायों में और मिथ्यात्व में विभक्त हो जाता है।

जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से प्ररूपणा दो प्रकार की गई है। ओघ से सभी प्रकृतियों का उत्कृष्ट और अनुष्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने वाले जीवों का भाव औदयिक कहा गया है। भावानुगम की अपेक्षा भी ओघ से सब प्रकृतियों के भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपद के बन्धक जीवों का भाव भी औदयिक कहा गया है। जो कुल जीवराशि है उसमें सब प्रकृतियों के सम्भव सभी पदों के बन्धकों का विभाग किया जाए, तो कितना भाग किसको मिलेगा, यह विचार भागाभाग में किया गया है। सब पदों के बन्धक जीवों का परिमाण अनन्त कहा गया है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवों में सब प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने वाले जीवों का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है। इनमें नरकायु, मनुष्यायु, देवायु का निरन्तर बन्ध सम्भव नहीं है, क्योंकि इनका बन्ध करने वाले अधिक से अधिक असंख्यात जीव होते हैं। आयुबन्ध का कुल काल अन्तर्मुहूर्त होने से इनका निरन्तर बन्ध सम्भव नहीं है। सभी प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपने-अपने स्वामित्व के अनुसार होता है। 'महाबन्ध' के सातवें भाग में विस्तार से क्षेत्रप्ररूपणा, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व के भंगों के रूप में विवेचन किया गया है। स्वामित्व में विशेषता यह कही गयी है कि मिथ्यात्व के अवक्तव्यबन्ध का सासादन सम्यक्त्व से च्युत होकर जो प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि हुआ है वह जीव स्वामी है। (भाग ७, पृ. २३०)

बन्ध करनेवाले जीवों का सभी लोक क्षेत्र है। तीन वृद्धि, तीन हानि, अवस्थित और अवक्तव्य पद के बन्धक जीवों का जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल आवलि के असंख्यातवें भागप्रमाण है। सामान्यतः जघन्य अन्तर सभी जीवों का एक समय है किन्तु उत्कृष्ट अन्तर में भिन्नता है। सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व या सासादन को अधिक-से-अधिक सात दिन-रात प्राप्त नहीं होते। भावानुगम की अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है जो अनाहारक मार्गणा तक है। मिथ्यादृष्टि असंज्ञी जीवों में पंचेन्द्रिय जीवों के समान अल्पबहुत्व का भंग है। मिथ्यादृष्टि के जो प्रदेशबन्ध स्थान होते हैं उतने को परिपाटी कहते हैं। अवस्थितबन्ध इसलिए कहलाता है कि इस समय जो जीव जिन प्रदेशों को बाँधता है उनको अनन्तर (बाद में) पिछले समय में घटाकर या बढ़ाकर बाँधे गये प्रदेशों के अनुसार उतने ही बाँधता है। अबन्ध के बाद बन्ध होना अवक्तव्यबन्ध कहलाता है। प्रायः सभी प्रकृतियों का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या वाले जीव सब लोक में पाये जाते हैं। भव्य जीवों में ओघ के समान भंग है। अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवों में मत्यज्ञानी जीवों के समान भंग है।

महाबन्ध का प्रयोजन—

'महाबन्ध' के लेखन का एक मात्र प्रयोजन जीवों को मौजूदा परिस्थिति का ज्ञान कराना है। जीव किस प्रकार अपनी करतूत से संसार के जेलखाने में पड़ा है। इस पराधीनता को जाने बिना कोई स्वतन्त्रता का पुरुषार्थ कैसे कर सकता है? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संयम, तप, त्याग का मार्ग स्वाधीन होने का उपाय है। आध्यात्मिक जागृति बिना यह सम्भव नहीं है। अतः उसका पुरुषार्थ करना चाहिए।

२६-८-१९९९   **—देवेन्द्रकुमार शास्त्री**

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

प्राथमिक वक्तव्य

(प्रथम संस्करण, १६५८ से)

महाबन्धकी इस सातवीं जिल्दके साथ एक महान् साहित्यिक निधिका प्रकाशन सम्पूर्ण हो रहा है। इसके लिये उसके विद्वान् सम्पादक पं० फूलचन्द्र शास्त्री तथा भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियोंको जितना धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है।

विद्वान् पाठकोंको ज्ञात होगा कि प्रस्तुत महाबन्ध आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलीकी अद्वितीय सूत्र-रचना षट्खण्डागमका ही छठा खण्ड है। इसके पूर्वके पाँच अर्थात् जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बंधसामित्त, वेदणा और वग्गणा खण्डोंका सम्पादन व प्रकाशन कार्य भी विदिशा निवासी श्रीमन्त सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द्रजी द्वारा स्थापित जैन-साहित्य उद्धारक ग्रन्थमाला द्वारा सम्पूर्ण हो चुका है। इस प्रकार पूरा षट्खण्डागम अपनी वीरसेन कृत धवला टीका और आधुनिक हिन्दी अनुवाद सहित १६+७=२३ जिल्दोंमें समाप्त हुआ है जिनकी पृष्ठसंख्या दस हजारसे ऊपर होती है। धवला टीकाकी श्लोक-संख्या परम्परानुसार बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण और महाबन्धकी चालीस हजार श्लोक प्रमाण मानी गई है। यदि अधिक नहीं तो इतना ही हम अनुवादका प्रमाण मान लें तो इस पूरी प्रकाशित रचनाका प्रमाण लगभग सवा दो लाख श्लोक प्रमाण हो जाता है। धवलाका प्रथम भाग सन् १६३६ में प्रकाशित हुआ था और अब सन् १६५८ में उसका अन्तिम सोलहवाँ भाग और महाबन्धका अन्तिम सातवाँ भाग प्रकाशित हो रहा है। इस प्रकार गत अठारह-उन्नीस वर्षोंमें जो यह विपुल साहित्य व्यवस्थित रीतिसे प्रकाशित हो सका इसे इस युगकी विशेष साहित्यिक अभिरुचिका ही प्रभाव कहना चाहिये।

जैन तीर्थङ्करों द्वारा उपदिष्ट आचाराङ्ग आदि द्वादशाङ्ग श्रुतके अन्तर्गत जिस बारहवें अङ्ग 'दिट्ठिवाद' का समस्त जैन परम्परानुसार लोप हो गया है, उसके एक अंशका अर्थोद्धार आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भगवान् पुष्पदन्त और भूतबलीने "षट्खण्डागम" सूत्रोंके रूपमें किया था। इसी महान् घटनाकी स्मृतिमें ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीकी तिथि आज तक श्रुतपञ्चमी या ऋषिपञ्चमीके नामसे मनाई जाती है। वर्तमान वीर निर्वाण संवत् २४८४ की श्रुतपञ्चमी इस दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है कि इस वर्षमें वही "षट्खण्डागम" शताब्दियों तक शास्त्रभण्डारमें निरुद्ध रहनेके पश्चात् पुनः प्रकाशमें आया है।

प्राचीन साहित्यके प्रकाशनकी यह सफलता बड़ी सन्तोषजनक है। किन्तु यह समझ बैठना हमारी बड़ी भूल होगी कि इस साहित्यके उद्धारका कार्य परिसमाप्त हो गया। इन परमागम ग्रन्थों और उनकी टीकाओंके सम्पादन-प्रकाशन कार्यको प्राचीन साहित्योद्धार कार्यकी प्रथम सीढ़ी कहना उचित होगा। जैसा कि उक्त ग्रन्थ-भागोंकी प्रस्तावनाओंमें हम बारम्बार कह चुके हैं, इनका पाठ-संशोधन सीधा मूल ताड़पत्रीय प्रतियों परसे नहीं हुआ, किन्तु उनपरसे की हुई प्रतिलिपियोंके आधारसे ही विशेषतः हुआ है। जो थोड़ा-बहुत मिलान सीधा ताड़पत्रीय प्रतियोंसे दूसरोंके द्वारा कराया जा सका है, उससे सम्पादकोंको पूरा सन्तोष नहीं हुआ। तथापि उस थोड़ेसे मिलानके द्वारा ही यह सिद्ध हो चुका है कि समस्त उपलभ्य ताड़पत्र प्रतियों से मिलान कितना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, मूडबिद्रीमें षट्खण्डागमकी एक सम्पूर्ण और दो खण्डित ताड़पत्रीय प्रतियाँ हैं। इनके पाठोंमें भी परस्पर कहीं-कहीं भेद है, जैसा धवला भाग तीनमें प्रकाशित पाठान्तरोंसे देखा जा सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ के पाठके सम्बन्धमें वह उतना मतभेद और बखेड़ा कभी न उत्पन्न होता, यदि प्रारम्भसे ही हमें ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलानकी सुविधा प्राप्त हुई होती और वह सब विवाद तभी समाप्त हो सका, जब हमारे द्वारा अनुमानित पाठका ताड़पत्रीय प्रतियोंसे पूर्णतः समर्थन हो गया। तात्पर्य यह कि जब तक एक बार इस सम्पूर्ण प्रकाशित पाठका ताड़-पत्रीय प्रतियों अथवा उनके चित्रोंसे विधिवत् मिलान कर मूलपाठ अङ्कित न कर लिये जायेंगे, तबतक हमारा यह सम्पादन-प्रकाशन कार्य अधूरा ही गिना जायगा और उन मूल प्रतियोंकी आवश्यकता व अपेक्षा बनी ही रहेगी।

पाठ-संशोधन पूर्णतः प्रामाणिक रीतिसे सम्पन्न हो जानेके पश्चात् इन ग्रन्थोंके विशेष अध्ययनकी समस्या सम्मुख उपस्थित होती है। इन ग्रन्थोंका विषय कर्म-सिद्धान्त है जो जैन धर्म और दर्शनका प्राण कहा जा सकता है। यह विषय जितने विस्तार, जितनी सूक्ष्मता, और जितनी परिपूर्णताके साथ इन ग्रन्थोंमें—उनके सूत्रों और टीकाओंमें—वर्णित है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। इसका जो हिन्दी अनुवाद और साथ-साथ थोड़ा बहुत तुलनात्मक अध्ययन व स्पष्टीकरण इस प्रकाशनमें किया जा सका है वह विषय-प्रवेशमात्र ही समझना चाहिये। इस विषयसे हमारा उत्तरकालीन समस्त साहित्य ओत-प्रोत है। दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्यमें समान रूपसे अनेक ग्रन्थोंमें कर्मसिद्धान्तकी नाना शाखाओं और नाना तत्त्वोंका प्रतिपादन पाया जाता है। इस समस्त कर्म सिद्धान्तसम्बन्धी साहित्यका ऐतिहासिक क्रमसे अध्ययन करना आवश्यक है, जिससे इसके भिन्न तत्त्वों और नाना मतोंका विकास स्पष्ट समझमें आ सके और उसका सर्वांग—सम्पूर्ण व्याख्यान आधुनिक रीतिसे किया जा सके। भारतीय साहित्यमें कर्मसिद्धान्तकी चर्चा इतनी व्यवस्थित रूपमें अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलती है।

जिन्होंने अपने विपुल दानों द्वारा हार्दिक उत्साहके साथ इन ग्रन्थोंका सम्पादन-प्रकाशन कराया है, हम भली भाँति जानते हैं, कि वे साहू शान्ति प्रसादजी और उनकी धर्मपत्नी रमा रानी जी, किसी व्यापारिक बुद्धिसे प्रभावित नहीं हुए, किन्तु शुद्ध धार्मिक और साहित्योद्धारकी भावनासे ही प्रेरित थे। अतएव हम आशा ही नहीं, किन्तु विश्वास भी करते हैं कि वे अपने विशुद्ध और उच्च कार्यके उक्त अवशिष्ट अंशोंपर अवश्य ध्यान देंगे और ऐसी योजना बना देंगे, जिससे वह कार्य निर्विलम्ब प्रारम्भ होकर सन्तोष जनक रीतिसे गतिशील हो जावे।

इस साहित्योद्धारकी जो यह एक मंजिल इस ग्रंथके प्रकाशनके साथ समाप्त हो रही है, उसके लिए हम मूडबिद्रीके सिद्धान्त वसदिके भट्टारकजी व अन्य सब अधिकारियों, प्रतिलिपियोंके स्वामियों, सम्पादकों, प्रकाशकों एवं अन्य विद्वानोंको हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस महान् कार्यको सफलतामें सहयोग प्रदान किया है।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

प्रदेशबन्धका मूलप्रकृतिप्रदेशबन्ध और उत्तरप्रकृतिप्रदेशबन्धके चौबीस अनुयोग द्वारोंमेंसे परिमाण अनुयोगद्वार तकका भाग सम्पादन होकर अनुवादके साथ प्रकाशित हुए लगभग तीन माह हुए हैं। उसके कुछ ही दिन बाद उसका शेष भाग सम्पादन होकर अनुवादके साथ प्रकाशित हो रहा है। पूर्व भागके साथ यह भाग भी मुद्रित होने लगा था, इसलिए इसके प्रकाशित होनेमें अधिक समय नहीं लगा है।

पूर्व भागोंके समान इस भागके सम्पादनके समय भी हमारे सामने दो प्रतियाँ रही हैं— एक प्रेस कापी और दूसरी ताम्रपत्र प्रति। मूल ताड़पत्र प्रति तो अन्त तक नहीं प्राप्त हो सकी है। इस भागके सम्पादनमें उक्त दोनों प्रतियोंका समुचित उपयोग हुआ है। दोनों प्रतियोंकी सहायतासे जिन पाठोंका संशोधन करना सम्भव हुआ उनका संशोधन करनेके बाद भी बहुतसे ऐसे पाठ रहे हैं जो चिन्तन द्वारा स्वतन्त्ररूपसे सुझाए गये हैं। इस प्रकार जितने भी पाठ मूलमें सम्मिलित किये गए हैं उन्हें स्वतन्त्ररूपसे [ ] ब्रेकेटके अन्दर दिखलाया गया है और जिन पाठोंका संशोधन नहीं हो सका है उन्हें वैसा ही रहने दिया है। अभी तककी जानकारीके अनुसार यही कहना पड़ता है कि मूड़बिद्रीमें महाबन्धकी एक ही ताड़पत्र प्रति उपलब्ध है। वह भी अधिक मात्रामें त्रुटित और स्खलित है। उसमें भी प्रदेशबन्ध पर स्खलनका सबसे अधिक प्रभाव दिखलाई देता है। इस भागमें ऐसे अनेक प्रकरण हैं जिनका यत्किञ्चित् अंश भी शेष नहीं बचा है। स्वामित्व आदिके आधारसे उनकी पूर्ति करना भी सम्भव नहीं था, इसलिए उन्हें हमने त्रुटित स्थितिमें ही रहने दिया है।

महाबन्धकी उपलब्ध हुई ताड़पत्र प्रति कितनी पुरानी है, इसकी जानकारी अभी तक नहीं हो सकी है। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके अन्तमें अलग-अलग प्रशस्ति उपलब्ध होती है। उन दोनों प्रशस्तियोंसे इतना बोध अवश्य होता है कि सेनकी पत्नी मल्लिकब्बाने श्री पञ्चमी व्रतके उद्यापनके फलस्वरूप महाबन्धको लिखाकर आचार्य माघनन्दिको भेट किया। इसी आशयकी एक प्रशस्ति प्रदेशबन्धके अन्तमें भी आई है। उसे हम अनुवादके साथ आगे उद्धृत कर रहे हैं। स्थितिबन्ध और प्रदेशबन्धके अन्तमें आई हुई प्रशस्तिमें मेघचन्द्र व्रतपतिका विशेषरूपसे उल्लेख किया है और माघनन्दि व्रतपतिको उनके पादकमलोंमें आसक्त बतलाया है।

मेरा विचार था कि इन प्रशस्तियोंके आधारसे मैं कुछ लिखूँ। किन्तु वर्तमानमें इस प्रकारका प्रयत्न करना असामयिक होगा, क्योंकि धवला और सम्भवतः जयधवलाके अन्तमें पुस्तक दान करनेवालेकी जो प्रशस्ति उपलब्ध होती है, उसके अनुवादके साथ प्रकाशमें आनेके बाद ही इस पर सर्वाङ्गरूपसे विचार होना उचित प्रतीत होता है।

यह हम पिछले भागोंकी प्रस्तावनामें बतला आये हैं कि स्थितिबन्धके मुद्रित होनेके बाद ही हमें ताम्रपत्र प्रति उपलब्ध हो सकी थी। इसलिए अभी तक उस प्रतिसे स्थितिबन्धका मिलान होकर न तो पाठ-भेद लिए जा सके हैं और न शुद्धि-पत्र ही तैयार हो सका है। प्रकृतिबन्धका सम्पादन और अनुवाद तो हमने किया ही नहीं है, इसलिए उसके सम्बन्धमें हम विचार ही करनेके अधिकारी नहीं हैं। इतना अवश्य ही संकेत कर देना अपना कर्तव्य समझते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं कि समस्त "महाबन्ध" का योग्य रीतिसे सम्पादन होकर प्रकाशमें आनेमें जो थोड़ी-बहुत न्यूनता रह गई है उस ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रसङ्गसे हम यह आशा करें तो कोई अत्युक्ति न होगी कि समस्त "महाबन्ध" का ताडपत्र प्रतिसे मिलान होनेकी ओर भी भारतीय ज्ञानपीठका ध्यान जायगा। दिगम्बर परम्परामें षट्खण्डागम और कषायप्राभृत मूल श्रुत माने गये हैं, इसलिए इनके प्रत्येक पद और वाक्यकी रक्षा करना दिगम्बर संघका कर्तव्य है।

इस भागके सम्पादनके समय भी हमें श्रीयुक्त पं० रतनचन्द्र मुख्तार और पं० नेमिचन्द्रजी वकील सहारनपुरवालोंने सहायता प्रदान की है, इसलिए हम उनके आभारी हैं।

इस भागकी समाप्तिके साथ "महाबन्ध" समाप्त हो रहा है। अन्य अनेक अड़चनोंके रहते हुए भी इस कार्यको सम्पन्न करनेके अनुकूल हमारा मनोबल बना रहा, यह वीतराग मार्गकी उपासना का ही फल है। वस्तुतः बाह्य साधन सामग्री ऐहिक है। अन्तरङ्गका निर्माण हुए बिना केवल उसकी साधना पारमार्थिक जीवनके निर्माणमें सहायक नहीं हो सकती, यह बात पद-पद पर अनुभवमें आती है। हमें ऐसे गुरुतर कार्यके निर्वाह करनेका सुअवसर मिला और हम उसका समुचित रीतिसे निर्वाह करनेमें सफल हुए, इसके लिए हम अपने भीतर प्रसन्नताका अनुभव करते हैं।

जिन्होंने वीतराग मार्गको जीवनमें उतारकर उसका प्रकाश किया, वे महापुरुष सबके द्वारा तो वन्दनीय हैं ही, किन्तु जो उस मार्ग पर यत्किञ्चित् चलनेका प्रयत्न करते हैं और जो ऐसे कार्यमें समुचित साहाय्य प्रदान करते हैं वे भी अभिनन्दनीय हैं। किमधिकम्।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम प्रशस्ति

श्रीमलधारिमुनींद्रपदामलसरसीरुहभृंगनमलिनकिचें ।
प्रेमं मुनिजनकैरवसोमनेनल्माघनंदियतिपति एसेदं[1] ॥१॥

जितपंचेषु[2] प्रतापानलनमलतरोत्कृष्टचारित्रराराजिततेजं भारतिभासुरकुचकलशालीढभाभारनूत्नायततारोदारहारं[3] समदमनियमालकृतं माघनंदिव्रतिनाथं शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशोवल्लरीचक्रवालं ॥२॥

जिनवक्त्रांभोजविनिर्गतहितनुतराद्धान्तकिंजल्कसुस्वादन............ज-पदनुतभूपेंद्रकोटीरसेना.........तिनिकायभ्राजितांघ्रिद्वयनखिलजगद्भव्यनीलोत्पलाह्लादनताराधीशनें[4] केवलमे भुवनदोल् माघनंदिव्रतीन्द्रम् ॥३॥

श्री मलधारी मुनीन्द्रके निर्मल चरणरूपी कमलमें भौरेके समान सुशोभित होनेवाले, निर्मल प्रेमी और मुनिजनरूपी कुमुदके लिए चन्द्रमाके समान माघनन्दि यतीन्द्र हुए ॥१॥

जिन्होंने मन्मथको जीत लिया है, जिनकी प्रतापरूपी अग्नि व्याप्त हो रही है, जिनका तेज निर्मलतर उत्कृष्ट चारित्रसे शोभायमान हो रहा है, जो सरस्वतीके प्रकाशमान कुचरूपी कलशमें संलग्न हैं, जो प्रकाशमान हैं, नवीन और दीर्घतर उदार हारस्वरूप हैं, शम, दम और नियमसे अलंकृत हैं तथा जो शरत्कालीन मेघके समान उज्ज्वल और विस्तृत यशःसमूहसे विभूषित हैं ऐसे माघनन्दि यतीन्द्र हुए ॥२॥

जो जिनेन्द्रदेवके मुखरूपी कमलसे निकले हुए हितकारी और मान्य सिद्धान्तरूपी कमलके परागका रसास्वादन करनेमें भौरेके समान हैं, अनेक पृथिवीपति जिनके चरण-कमलोंमें नमस्कार करते हैं, जिनके पदयुगल अनेक सेनापतियोंके मुकुट-समूहसे सुशोभित हो रहे हैं और जो समस्त भव्यरूपी नील कमलोंको आह्लादित करनेके लिए चन्द्रमाके समान हैं, ऐसे एकमात्र माघनन्दि व्रतपति हुए ॥३॥

---

१. 'नल्कापुनन्वियतिपति नेसेदं' महाबन्ध प्रथम पुस्तक प्रस्तावना पृ० ३६ ।

२. 'जितप्रपंचेषु' म० प्र० पु० प्र० पृ० ३६ ।

३. 'यत् सारोदारहारं' म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

४. 'नीलोत्पलांगा द्वताराधीशने' म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरराद्धान्तामृतांभोनिधितरलतरंगोत्करक्षालितांत[1]:-
करणं श्रीमेघचन्द्रव्रतिपतिपदपंकेरुहासक्तषट्-
चरणं तीव्रप्रतापोधृतविनतबलोपेतपुष्पेषुभृत्सं-
हरणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगल्दं माघनंदिव्रतीन्द्रम्[2] ॥४॥

श्रीपंचमियं नोंतुद्यापनमं[3] माडि बरेसि राद्धान्तमना ।
रूपवती सेनवधू जितकोपं[4] श्रीमाघनंदियतिगित्तल्[5] ॥५॥

भद्रं भूयात्, वर्धतां जिनशासनम् ।

जिनका अन्तःकरण श्रेष्ठ सिद्धान्तरूपी अमृतजलनिधिके तरल तरङ्गकणोंसे प्रक्षालित हुआ है, जो श्री मेघचन्द्र व्रतिपतिके चरणरूपी कमलमें आसक्त भौंरेके समान हैं, जो तीव्र प्रतापी हैं, जिन्होंने विशाल बलशाली कामको जीत लिया है और सैद्धान्तिकोंमें अग्रेसर हैं, ऐसे माघनन्दि व्रतीन्द्र हुए ॥४॥

सिद्धान्तको माननेवाली रूपवती सेनकी पत्नीने श्री पञ्चमी व्रतका उद्यापन कर इस ग्रन्थको लिखवा कर जितक्रोध माघनन्दि यतिको समर्पित किया ॥५॥

मङ्गल हो, जिनशासनकी वृद्धि हो ।

---

१. '-त्कटक्षालितांतः' म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

२. 'करणं श्रीमेघचंद्व्रतपतिपंकेरुहासक्तषट्पद ॥
....स ।
चारणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगल्दमाघनंदिव्रतीन्द्रम्' ॥४॥ म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

३. 'नोंतुद्यापनेयं' म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

४. 'जितकोप' म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

५. 'श्रीमाघनंदिव्रतपतिगित्तल्' म० प्र० पु० प्र० पृ० ४० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
क्षेत्रप्ररूपणा	१-६
क्षेत्रप्ररूपणाके दो भेद	१
उत्कृष्ट क्षेत्रप्ररूपणा	१-४
जघन्य क्षेत्रप्ररूपणा	५-६
स्पर्शनप्ररूपणा	७-५८
स्पर्शनप्ररूपणाके दो भेद	७
उत्कृष्ट स्पर्शनप्ररूपणा	७-४५
जघन्य स्पर्शनप्ररूपणा	४५-५८
कालप्ररूपणा	५९-६२
कालप्ररूपणाके दो भेद	५९
उत्कृष्ट कालप्ररूपणा	५९-६१
जघन्य कालप्ररूपणा	६२-६२
अन्तरप्ररूपणा	६३-६४
अन्तरप्ररूपणाके दो भेद	६३
उत्कृष्ट अन्तरप्ररूपणा	६३-६४
जघन्य अन्तरप्ररूपणा	६४
भावप्ररूपणा	६५
भावप्ररूपणाके दो भेद	६५
उत्कृष्ट भावप्ररूपणा	६५
जघन्य भावप्ररूपणा	६५
अल्पबहुत्वप्ररूपणा	६५-१०५
अल्पबहुत्वप्ररूपणाके दो भेद	६५
स्वस्थान अल्पबहुत्वके दो भेद	६५
उत्कृष्ट स्वस्थान अल्पबहुत्व	६५-७५
जघन्य स्वस्थान अल्पबहुत्व	७५-८१
परस्थान अल्पबहुत्वके दो भेद	८१
उत्कृष्ट परस्थान अल्पबहुत्व	८१-९३
जघन्य परस्थान अल्पबहुत्व	९४-१०५
भुजगारबन्ध	१०५-१९७
अर्थपद	१०५
तेरह अनुयोगद्वारोंका निर्देश	१०५
समुत्कीर्तनानुगम	१०६-१०७
स्वामित्वानुगम	१०८-१०९
कालानुगम	११०-१११
अन्तरानुगम[1]	११२-१४९
भागाभागानुगम	१५०
परिमाणानुगम	१५०-१५२
क्षेत्रानुगम	१५३
स्पर्शनानुगम	१५३-१८०
कालानुगम	१८०-१८७
अन्तरानुगम	१८८-१९१
भावानुगम	१९१
अल्पबहुत्वानुगम	१९१-१९७
पदनिक्षेप	१९७-२२६
तीन अनुयोगद्वारोंका निर्देश	१९७
समुत्कीर्तना	१९७-१९८
समुत्कीर्तनाके दो भेद	१९७
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना	१९७-१९८
जघन्य समुत्कीर्तना	१९८
स्वामित्व	१९८-२२५
स्वामित्वके दो भेद	१९८
उत्कृष्ट स्वामित्व	१९८-२२३
जघन्य स्वामित्व	२२३-२२५
अल्पबहुत्व	२२५-२२६
अल्पबहुत्वके दो भेद	२२५
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	२२५-२२६
जघन्य अल्पबहुत्व	२२६
अजघन्य वृद्धि आदिके विषयमें सूचना	२२६
वृद्धिबन्ध	२२७-३०१
तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२२७
समुत्कीर्तना	२२७-२२९
स्वामित्व	२३०-२३५
काल	२३५-२३६

१ अन्तरकालके अन्तका अंश, भंगविचय पूरा और भागाभागकी अन्तकी एक पंक्तिको छोड़ कर पूरा भागाभाग त्रुटित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अन्तर	२३७-२६७	अल्पबहुत्व	३०३-३०६
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	२६७-२६६	**जीवसमुदाहार**	**३०६-३१६**
नाना जीवोंकी अपेक्षा भागाभाग	२६६-२७०	दो अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	३०६
नाना जीवोंकी अपेक्षा परिमाण	२७१-२७६	प्रमाणानुगम	३०६-३०८
नाना जीवोंकी अपेक्षा क्षेत्र	२७६-२८१	प्रमाणानुगमके दो अनुयोगद्वार	३०६
नाना जीवोंकी अपेक्षा स्पर्शन	२८२-२८४	योगस्थानप्ररूपणा	३०६-३०७
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२८५-२९०	प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा	३०७-३०८
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२९१-२९४	जीवसमुदाहारमें अल्पबहुत्व	३०८-३१६
नाना जीवोंकी अपेक्षा भाव	२९५	अल्पबहुत्वके तीन अनुयोगद्वार	३०८
नाना जीवोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	२९५-३०१	उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	३०८-३०९
अध्यवसानसमुदाहार	**३०१-३०६**	जघन्य अल्पबहुत्व	३०९-३१०
दो अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	३०१	जघन्योत्कृष्ट अल्पबहुत्व	३१०-३१६
परिमाणानुगम	३०१-३०३	अन्तिम मङ्गलाचरण	३१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाबन्धो

चउत्थो पदेशबंधाहियारो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरि-भगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

चउत्थो पदेसबंधाहियारो

खेत्तपरूवणा

१. खेत्तं दुविहं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२-तित्थ० उक्क० अणु० पदे०बं० केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। सेसाणं कम्माणं उक्क० पदे०बं० केव०? लोगस्स असंखे०। अणु० पदे०बं० केव०? सव्वलोगे। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अ भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति।

क्षेत्रप्ररूपणा

१. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार संज्ञी जीव और तीन आयु आदि बारह प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध किन्हींका असंज्ञी जीव आदि तथा किन्हींका संज्ञी जीव करते हैं, इसलिए सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र और तीन आयु आदिके अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यद्यपि मनुष्यायुका बन्ध एकेन्द्रिय आदि भी करते हैं, पर ऐसे जीव असंख्यातसे अधिक नहीं होते और इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे भी उतना ही क्षेत्र कहा है। उक्त बारह प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि इनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सव्वणेरइएसु सव्वपगदीणं उक्क० अणु० पदे०बं० केव० ? लोगस्स असंखें० । सेसाणं पि असंखेंज्जरासीणं एवं चेव कादव्वं ।

३. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० केव० ? सव्वलोगे । मणुसाउ० ओघं । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० लोग० असंखें० । अणु० केव० ? सव्वलोगे । सेसाणं उक्क० लोग० संखेंज्जदि० । अणु० सव्वलो० । एवं बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्तगाणं । णवरि तससंजुत्ताणं उक्क० अणु० लोग० संखेंज्ज० । णवरि मणुसगदि०४ उक्क० अणु० लोग० असंखें० । सव्वसुहुमेसु सव्वपगदीणं उक्क० अणु० सव्वलो० । णवरि मणुसाउ० उक्क० अणु० असंखें० ।

एकेन्द्रियादि अनन्त जीव बन्ध करते हैं और वे वर्तमानमें सर्व लोकमें पाये जाते हैं। यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें बन्धको प्राप्त होनेवाली अपनी-अपनी प्रकृतियोंके अनुसार यह क्षेत्र प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान क्षेत्रके जाननेकी सूचना की है।

२. सब नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। शेष असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें इसी प्रकार क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए।

विशेषार्थ—सब नारकी और यहाँ निर्दिष्ट अन्य मार्गणाओंका क्षेत्र ही लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है।

३. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्वलोक क्षेत्र है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें त्रस-संयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। उसमें भी इतनी और विशेषता है कि मनुष्यगतिचतुष्कका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोकप्रमाण क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. पुढवि०-आउ०-तेउ०-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ० सव्वपगदीणं उक्क० लोग० असंखें० । अणु० सव्वलो० । णवरि बादरेसु सुहुमसंजुत्ताणं उक्क० लोग० असंखें० । अणु० सव्वलो० । तससंजुत्ताणं उक्क० अणु० लोगस्स असंखें० । बादरपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो । बादरअपज्जत्ताणं एइंदियसंजुत्ताणं उक्क० अणु० सव्वलो० । सेसाणं उक्क० अणु० लोग० असंखें० । एवं वाउकाइगस्स वि । णवरि यम्हि

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय बादर एकेन्द्रिय जीवोंके और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र कहा है। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। विशेष खुलासा ओघप्ररूपणाके समय कर आये हैं। एकेन्द्रियोंमें मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनन्त जीव करते हुए भी वे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं, इसलिए यह क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है, पर इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध स्वस्थानस्थित सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है, इसलिए यह क्षेत्र सब लोक कहा है। इनके सिवा जो शेष प्रकृतियाँ बचती हैं उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध, जो बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान स्थित हैं उन्हींके होता है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध स्वस्थानगत सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है, इसलिए यह क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें यह क्षेत्र प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इसे एकेन्द्रियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र बादर एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे जीव जो मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध करते हैं, उनका स्वस्थान स्थित क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही पाया जाता है, क्योंकि वायुकायिक जीव इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करते, इसलिए इन तीन मार्गणाओंमें उक्त तीन प्रकृतियों और मनुष्यायु इन चार प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पर त्रससंयुक्त अन्य प्रकृतियोंका बादर वायुकायिक जीव भी बन्ध करते हैं, इसलिए उनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। सब सूक्ष्म जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए उनमें मनुष्यायुके सिवा अन्य सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है। यहां भी मनुष्यायुका दोनों पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है।

४ पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि बादरोंमें सूक्ष्मसंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है तथा त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इनके बादर पर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इनके बादर अपर्याप्तकोंमें एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है और शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके असंख्यातवें भाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगस्स असंखें० तम्हि लोगस्स संखेंज्ज० । सव्ववणप्फदि-णियोद० एइंदियभंगो । णवरि यम्हि लोगस्स संखेंज्ज० तम्हि लोगस्स असंखें० । बादरपत्ते० पुढविभंगो‡ ।

प्रमाण क्षेत्र कहा है वहाँ लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहना चाहिए। सब वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वहाँ लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहना चाहिए। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक आदि तीनमें और बादर पृथिवीकायिक आदि तीनमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध बादर पर्याप्तक जीव करते हैं, इसलिए इनमें सामान्यसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है, क्योंकि इनके पर्याप्तकोंका क्षेत्र स्वस्थान और समुद्घात दोनों प्रकारसे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इनमें सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सबके सम्भव है और पृथिवीकायिक आदि तीनका सर्व लोक क्षेत्र है, इसलिए इन मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है। मूलमें यह क्षेत्र सामान्यसे छहों मार्गणाओंमें कहा है, इसलिए तीन बादर मार्गणाओंमें अपवाद बतलानेके लिए आगे अलगसे विचार किया है। बात यह है कि बादरोंका सर्वलोक क्षेत्र मारणान्तिक और उपपाद पदके समय ही बन सकता है, पर ऐसे समयमें इनके त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए तो बादर पृथिवीकायिक आदि तीनमें त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा जैसा कि स्वामित्व अनुयोगद्वारसे ज्ञात होता है बादरोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध बादर पर्याप्तक जीव ही करते हैं और इन तीन मार्गणाओंमें बादर पर्याप्तक जीवोंका क्षेत्र किसी भी अवस्थामें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, इसलिए इनमें सूक्ष्मसंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका निर्देश पहले कर आये हैं, वही क्षेत्र यहाँ बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि तीनमें प्राप्त होता है, इसलिए यह प्ररूपणा पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदि तीन मार्गणाओंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो सकता है, इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र कहा है। पर इनमें त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका प्रदेशबन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वायुकायिक जीव और उनके अवान्तर भेदोंमें पृथिवीकायिक और उनके अवान्तर भेदोंके समान ही क्षेत्रप्ररूपणा घटित कर लेनी चाहिए। पर बादर वायुकायिक और उनके अवान्तर भेदोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए बादर पृथिवीकायिक और उनके अवान्तर भेदोंमें जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वहाँ पर इनमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए। सब वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंका क्षेत्र एकेन्द्रियोंके समान बन जानेसे उनमें एकेन्द्रियोंके समान क्षेत्र प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक और उनके अवान्तर भेदोंमें बादर पृथिवीकायिक और उनके अवान्तर भेदोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे उनमें बादर पृथिवीकायिक और उनके

‡ ता०आ०प्रत्योः 'बादरपत्ते० बादर ४ पुढविभंगो' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२-तित्थ० जह० अजह० के० ? लोगस्स असंखें० । सेसाणं जह० अजह० के० ? सव्वलो० । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंज०—अचक्खु०—किण्ण-णील—काउ०—भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति ।

६. सेसाणं सव्वाणं संखेंज्ज-असंखेंज्जरासीणं सव्वपगदीणं जह० अजह० लोगस्स असंखें० । एइंदिएसु सव्वपगदीणं जह० अजह० सव्वलो० । णवरि मणुसाउ० जह० अजह० लोगस्स असंखें० । एवं सव्वसुहुमाणं ।

अवान्तर भेदोंके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है । यहाँ पूर्वोक्त सब मार्गणाओंमें मनुष्यायुके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है ।

५ जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे तीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—तीन आयु आदिका एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव बन्ध नहीं करते । असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय आदिमें भी प्रारम्भकी नौ प्रकृतियोंका असंज्ञी और संज्ञी जीव कदाचित् बन्ध करते हैं और अन्तकी तीन प्रकृतियोंमें आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत आदि दो गुणस्थानवाले तथा तीर्थङ्करप्रकृतिका असंयतसम्यग्दृष्टि आदि पाँच गुणस्थानवाले जीव कदाचित् और कोई-कोई बन्ध करते हैं । यदि उक्त प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले इन सब जीवोंके क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक प्राप्त नहीं होता, इसलिए यहाँ ओघसे उक्त सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । तथा शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं और अजघन्य प्रदेशबन्ध यथायोग्य सब जीवोंके सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण कहा है । यहाँ मूलमें कही गई सामान्य तिर्यञ्च आदि मार्गणाओंमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान क्षेत्र प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है । मात्र जिन मार्गणाओंमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव है, उसे ध्यानमें रखकर ही ओघप्ररूपणाके अनुसार वहाँ क्षेत्रप्ररूपणा घटित करनी चाहिए ।

६ शेष सब संख्यात और असंख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यायुका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० ओघभंगो। तेसिं चेव बादराणं [बादरपज्जत्ताणं] एइंदियसंजुत्ताणं जह० लोगस्स असंखें०। अज० सव्वलो०। तससंजुत्ताणं जह० अजह० लोगस्स असंखें०। एवं बादरपुढविअपज्जत्तादि०४। सव्ववणप्फदि-णियोदाणं सव्वे चेव भंगो सव्वलोगे०। बादरपज्जत्तपत्ते० बादरपुढविभंगो। एवं एदेण बीजेण णेदव्वं।

एवं खेत्तं समत्तं

का क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अर्थात् एकेन्द्रियोंके समान सब सूक्ष्म जीवोंमें क्षेत्रप्ररूपणा जाननी चाहिए।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक आदि पाँचको छोड़कर अन्य जितनी असंख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ हैं और संख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ हैं उनका क्षेत्र ही लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए उनमें सब प्रकृतियोंके दोनों पदवाले जीवोंका क्षेत्र उक्तप्रमाण जाननेकी सूचना की है। तथा एकेन्द्रियोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें मनुष्यायुको छोड़कर सब प्रकृतियोंके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण कहा है। इनमें मनुष्यायुके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है,यह स्पष्ट ही है। सब सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव भी सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनमें एकेन्द्रियोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे उसे उनके समान जाननेकी सूचना की है।

७. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। उन्हींके बादरों व बादर पर्याप्तकोंमें एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है। तथा त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदि चारोंमें जानना चाहिए। सब वनस्पतिकायिक और सब निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंके दोनों पदवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है। बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक आदि चारों मार्गणाओंका क्षेत्र सब लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके दोनों पदवालोंका क्षेत्र ओघके समान जाननेकी सूचना की है। इन चारोंके बादरोंमें एकेन्द्रियजातिसंयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है और अजघन्य प्रदेशबन्ध मारणान्तिक और उपपादपदके समय भी सम्भव है, इसलिए इनमें एकेन्द्रियजातिसंयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण कहा है। इनमें त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका बन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके दोनों पदवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदि चारमें भी इसी प्रकार अर्थात् बादर पृथिवीकायिक आदि चारके समान क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए। सब वनस्पति-कायिक और सब निगोद जीवोंमें सब लोक क्षेत्र कहनेका कारण स्पष्ट ही है। तथा बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है,यह भी स्पष्ट है। यहाँ जिन मार्गणाओंका क्षेत्र नहीं कहा है, उसे जाननेके लिए इसी प्रकार इस बीजपदके अनुसार ले जाना चाहिए यह सूचना की है। यहाँ बादर वायुकायिक व उनके अपर्याप्तकोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं कहा यह विचारणीय है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि चारका क्षेत्र बिलकुल नहीं कहा। शायद इसीके लिए अन्तमें 'एवं एदेण बीजेण' इत्यादि सूचना की है। पहले कह आये हैं कि जघन्य प्रदेशबन्ध वायुकायिक जीव तद्भवस्थके प्रथम समयमें जघन्य योग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फोसणपरूवणा

८. फोसणाणुगमेण दुविहं–जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-मणुसग०-चदुजादि-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-मणुसाणु०-तस-बादर-जस०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० पदे०बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अणु० सव्वलोगो। थीणगिद्धि०३-असादा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ-णीचा० उक्क० लोगस्स असंखे० अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा। अणु० सव्वलोगो। णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४-छण्णोक०-तिरिक्खाउ०-आदाव० उक्क० लोगस्स असंखे० अट्ठचोद्दस०। अणु० सव्वलो०। पच्चक्खाण०४-समचदु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदे० उक्क० छ०। अणु० सव्वलो०। दोआउ०-आहार०२ उक्क० अणु० खेत्तभंगो। मणुसाउ० उक्क० अट्ठचो०। अणु० सव्वलो०। दोगदि०-दोआणु० उक्क० अणु०

सहितके होता है, किन्तु ऐसे जीव असंख्यात होते हुए भी बहुत कम होते हैं जो लोकके असंख्यातवें भागमें ही पाये जाते हैं, अतः लोकका संख्यातवाँ भाग नहीं कहा। पृथिवीकायिक आदि चारों स्थावरोंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान कहा। तथा बादर सामान्य व बादर अपर्याप्तमें जो विशेषता थी, वह अलगसे खोल दी गयी है।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

स्पर्शनानुगम

८. स्पर्शनानुगम दो प्रकारका है–जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका-संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, छह नोकषाय, तिर्यञ्चायु और आतपका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और आहारकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छच्चोंदस०। तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-सुहुम-अपज्ज०-पत्ते०-साधा०-अथिर-असुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलोगो वा। अणु० सव्वलोगो। उज्जो० उक्क० अट्ठ-णव०। अणु० सव्वलो०। इत्थि०-चदुसंठा०-पंचसंघ० उक्क० अट्ठ-बारह०। अणु० सव्वलो०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० बारह०। तित्थं० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठचों०।

त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, चार संस्थान और पाँच संहननका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होता है। चार संज्वलन और पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नौवें गुणस्थानमें होता है। तथा मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्यगतिके मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त जीवके होता है। यतः इन सब जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इन सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इसका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। इसी प्रकार नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिक-शरीर, आहारकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्करप्रकृतिको छोड़कर अन्य सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी एकेन्द्रिय आदि जीव करते हैं, इसलिए उनकी अपेक्षा भी सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध चारों गतिके संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीव करते हैं। असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध चारों गतिके संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं। तथा परघात आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तीन गतिके संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। यतः इन जीवोंके इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध स्वस्थानस्वस्थानमें, विहारवत्स्वस्थानके समय और मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। निद्रा, प्रचला और छह नोकषायका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशबन्ध चारों गतिके पर्याप्तक सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं। अप्रत्याख्यानावरण चारका चारों गतिके असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। तिर्यञ्चायुका चारों गतिके संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। तथा आतपका तीन गतिके संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। यतः इन जीवोंके इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध स्वस्थान-स्वस्थानके समय और विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, अतः इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका दो गतिके संयतासंयत जीव, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, और सुभग आदि तीनका दो गतिके संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव तथा अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका दो गतिके संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं। यतः इन जीवोंके स्वस्थानस्वस्थानके समय और मारणान्तिक समुद्धातके समय उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो सकता है, अतः इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने-वाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि अप्रशस्तविहायोगति और दुःस्वरका नीचे मारणान्तिक समुद्धात कराते समय तथा शेष प्रकृतियोंका ऊपर मारणान्तिक समुद्धात कराते समय उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कहना चाहिए। तथा मूलमें स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन नहीं कहा है, फिर भी वह सम्भव है, इसलिए विशेषार्थमें हमने उसका निर्देश कर दिया है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, इसलिए इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नरकगतिद्विक और देवगतिद्विकका दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध क्रमसे नारकियोंमें और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी तिर्यञ्चगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है। स्वस्थानमें तो यह सम्भव है ही, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। देव विहारवत्स्वस्थानके समय और एकेन्द्रियोंमें ऊपर मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय तथा नारकियों और देवोंके तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी वैक्रियिकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मनुष्य करते हैं, इसलिए इसका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इसे क्षेत्रके समान कहा है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इस अपेक्षासे इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है।

९. नारकियोंमें छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोआउ०-मणुसगदिदुग-तित्थ०-उच्चा० उक्क० अणु० खेत्तभंगो। सेसाणं सव्वपगदीणं उक्क० अणु० छच्चोंद्दस०। एवं सव्वणेरइयाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

१०. तिरिक्खेसु पंचणा०-थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-[हुंड-] वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-[1] अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलोगो वा। अणु० सव्वलो०। छदंस०-बारसक०-सत्तणोक०-समचदु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० उक्क० छच्चोंद्दस०। अणु० सव्वलो०। इत्थि० उक्क० दिवड्ढचोंद्दस०। अणु० सव्वलो०।

त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगतिद्विक, तीर्थङ्करप्रकृति और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब नारकियोंका अपना-अपना स्पर्शन ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकमें छह दर्शनावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध पर्याप्त सम्यग्दृष्टि ही करते हैं, इसलिए इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे क्षेत्रके समान कहा है। यद्यपि छठेसे लेकर प्रथम नरक तकके सम्यग्दृष्टि नारकी मरकर मनुष्य होते हैं और इनके मारणान्तिक समुद्घातके समय उक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, पर ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, इतना यहाँ स्पष्ट जानना चाहिए। दो आयुका प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता। मनुष्यगतिद्विक आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव होनेपर भी स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके दोनों पदोंकी अपेक्षा भी स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। अब रहे प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव और शेष सब प्रकृतियोंके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव सो मारणान्तिक समुद्घातके समय शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तथा मारणान्तिक समुद्घात और उपपादके समय इन सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। प्रथमादि पृथिवियोंमें यह स्पर्शन इसी प्रकार घटित होनेसे उसे सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र सामान्य नारकियोंका जहाँ कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है वहाँ अपना-अपना स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

१०. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय, समचतुरस्रसंस्थान, दोविहायोगति, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदका

१ ता० आ० प्रत्योः 'दूभग दुस्सर अणादे०' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

दोआउ० खेत्तभंगो। तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-चदुसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा० [तस-] बादर० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०। दोगादि-दोआणु० उक्क० अणु० छच्चोद्दस०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० बारह०। उज्जो०-जस० उक्क० सत्तचोद्दस०। अणु० सव्वलो०।

११. पंचिंदि०तिरिक्ख०३ पंचणा०-थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-

---

उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयुओंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, त्रस और बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादि सबके यथासम्भव बँधनेवाली प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है, इसलिए इस स्पर्शनका यहाँ व आगे हम अलग-अलग स्पष्टीकरण नहीं करेंगे। जहाँ विशेषता होगी उसका खुलासा अवश्य करेंगे। पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके स्वस्थानके समान मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय छह दर्शनावरण आदिका तथा नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यञ्चोंके स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव होनेसे इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नरकायु और देवायुका प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तिर्यञ्चायुका प्रदेशबन्ध तो मारणान्तिक समुद्घातके समय होता ही नहीं। शेषका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है; फिर भी यह स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, इसलिए इसका भंग क्षेत्रके समान कहा है। दो गति और दो आनुपूर्वीकी अपेक्षा स्पर्शन तथा वैक्रियिकद्विककी अपेक्षा स्पर्शन जिस प्रकार ओघ प्ररूपणाके समय घटित करके बतलाया है, उसी प्रकार यहाँपर भी घटित कर लेना चाहिए। जो ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके भी उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है।

११. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवुंस०-णीचा-पंचंत० उक्क० अणु० लोग० असंखें० सव्वलो० । छदंस०-बारसक०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दु० उक्क० छचोंद्दस० । अणु० लोग० असंखें० सव्वलो० । इत्थि० उक्क० अणु० दिवड्ढचोंद्दस० । पुरिस०-दोगदि-समचदु०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० उक्क० अणु० छचोंद्द० । चदुआउ०-मणुसग०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा० उक्क० अणु० लोग० असं० । तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० उक्क० अणु० लोगस्स असं० सव्वलो० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० बारह० । पंचिंदि०-तस० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० बारहचोंद्दस० । उज्जो०-जस० उक्क० अणु० सत्तचों० । बादर० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० तेरह० ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, दो गति, समचतुरस्रसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरप्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—उक्त तीन प्रकारके तिर्यञ्च स्वस्थान और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय दोनों अवस्थाओंमें पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इन दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। छह दर्शनावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध ऊपर आनत कल्पतकके देवोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० पंचणा०–णवदंस०-दोवेद०–मिच्छ०-सोलसक०–सत्तणोक०-तिरिक्ख०–[एइंदि०-]ओरालि०–तेजा०-क०–हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त–पत्ते०–साधार०-थिराथिर–सुभासुभ-दूभग–अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० लोगस्स असंखें० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०–[मणुस०-] चदुजा०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० उक्क० अणु० खेत्तभंगो। उज्जो०-जस० उक्क० अणु० सत्तचों०। बादर० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० सत्तचोंदस०। एवं सव्वअपज्जत्तयाणं

मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए यहाँ इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन जैसा पाँच ज्ञानावरणादिकी अपेक्षा घटित करके बतला आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा आगे तिर्यञ्चगति आदि प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी यह स्पर्शन कहा है सो वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय स्त्रीवेदके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए यहाँ स्त्रीवेदके दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। ऊपर आनत कल्पतक के देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके पुरुषवेद आदिके दोनों पद सम्भव होनेसे इनकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। चार आयु आदिके दोनों पदवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि चार आयुओंका बन्ध स्वस्थानमें ही होता है और शेष प्रकृतियोंका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय होते हुए भी स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। वैक्रियिकद्विककी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन ओघप्ररूपणामें घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा इसी प्रकार यह स्पर्शन पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसप्रकृतिके अनुत्कृष्ट पदकी अपेक्षा भी घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके उद्योत और यशःकीर्तिके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदवालोंका त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। बादरप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह भी स्पष्ट है। तथा नीचे छह राजू और ऊपर सात राजू क्षेत्रके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके बादर प्रकृतिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है।

१२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तसाणं सव्वविगलिंदियाणं च बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०पज्जत्तयाणं च ।

१३. मणुस०३ पंचणा०-छदंस०-सादा०-बारसक०-छण्णोक०-पंचंत० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० लोगस्स असंखे० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-असादा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग०-अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा० उक्क० अणु० लोग० असंखे० सव्वलो० । उज्जो० उक्क० अणु० सत्तचों० । बादर०-जस० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० सत्तचों० । सेसाणं उक्क० अणु० खेत्तभंगो ।

स्पर्शन किया है । बादर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय तथा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ये पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव स्वस्थान और मारणान्तिक समुद्घात दोनों अवस्थाओंमें पाँच ज्ञानावरणादिके दोनों पदोंका बन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । स्त्रीवेद आदिका यथासम्भव एकेन्द्रिय आदिमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय बन्ध नहीं होता । दूसरे दो आयुओंका तो मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध होता ही नहीं, इसलिए यहाँ इन स्त्रीवेद आदिके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । उद्योत और यशःकीर्तिका स्पष्टीकरण पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकको प्ररूपणाके समय कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए । उद्योतके समान ही बादरका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है । यहाँपर अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है ।

१३. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, छह नोकषाय और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । उद्योतका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादर और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. देवेसु पंचणा०-थीणगि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जो०-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-जस०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० अट्ठ-णव०। छदंस०-बारसक०-छण्णोक० उक्क० अट्ठचों०। अणु० अट्ठ-णव०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचिंदि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदें०-तित्थ० उक्क० अणु० अट्ठचों०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व यथायोग्य गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंके बन जाता है और इन जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इन कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मनुष्यत्रिकमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी इन कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिक आदि प्रकृतियोंका भी दोनों प्रकारका बन्ध इसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय बन जाता है, इसलिए इनका दोनों प्रकारका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण कहा है। उद्योतकी अपेक्षा दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पहले पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। मात्र वहाँ यशःकीर्ति प्रकृतिको उद्योतके साथ गिनाकर स्पर्शन कहा है। पर मनुष्यत्रिकमें इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध गुणस्थान प्रतिपन्न जीव करते हैं, इसलिए इनमें इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है। बादर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भी इतना ही स्पर्शन बनता है, इसलिए यहाँपर यशःकीर्तिको बादर प्रकृतिके साथ सम्मिलित कर इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका एक साथ स्पर्शन कहा है। तथा इन दोनों प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी होता है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। यहाँ गिनाई गई इन प्रकृतियोंके सिवा अन्य जितनी प्रकृतियाँ बचती हैं, उनके दोनों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे उसे क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है।

१४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और छह नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आंगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक० अणु० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-चदुजादि-पंचसंठा० ओरा०अंगो०-छस्संघड०-दोविहा०-तस-बादर-सुभग-दोसर-आदें० उक० लोगस्स संखेंज्जदिभागो[1]। अणु० सव्वलोगो। एवं तिरिक्खाउ०। मणुसाउ० उक० खेत्त-भंगो। अणु० लोगस्स असंखें० सव्वलोगो वा। मणुसगादिदुग-उच्चा० उक० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०। उज्जो०-जस० उक० सत्तचों०। अणु० सव्वलो०। सेसाणं उक० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०।

करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपना-अपना स्पर्शन ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध विहारवत्स्वस्थानके समय और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय बन जाता है, उनका उन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन कहा है और जिनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं बनता, उनका उन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। इन्हीं विशेषताओंको और अपने स्पर्शनको ध्यानमें रखकर देवोंके सब अवान्तर भेदोंमें स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

१५. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहयोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार तिर्यञ्चायुकी अपेक्षा स्पर्शन जानना चाहिए। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें बादर पर्याप्त जीव ही सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते

१ ता० आ० प्रत्योः 'असंखेज्जदिभागो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. बादर-पज्जत्तापज्जत्ताणं[1] एइंदियसंजुत्ताणं उक्क० अणु० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिरिक्खाउ०-चदुजादि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-आदाव-दोविहा०-तस- [बादर-] सुभग-दोसर-आदें० उक्क० अणु० लोगस्स संखेंज्जदिभागो। मणुसाउ०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० अणु० लोगस्स असंखें०। सव्वसुहुमाणं

हैं,पर अन्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी ये जीव पाँच ज्ञानावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं और इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सब एकेन्द्रियोंके होता है, इसलिए इनके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्रीवेद आदि छब्बीसका, मनुष्यगति आदि तीनका, उद्योत आदि दोका और जिन प्रकृतियोंका यहाँ नाम निर्देश नहीं किया है,उनका भी सब एकेन्द्रिय जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं , इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा स्त्रीवेद आदि छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियोंमें बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीव करते हुए भी इनका सब प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। इनमें तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्त्रीवेद आदिके समान घटित हो जानेसे यह उनके समान कहा है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है,यह स्पष्ट ही है। तथा इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध यद्यपि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंको छोड़कर सब एकेन्द्रिय जीव करते हैं, पर ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण बन जानेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। एक साथ एकेन्द्रिय जीव यदि मनुष्यायुका बन्ध करें तो असंख्यात जीव करेंगे और उस समय यदि इनका क्षेत्रस्पर्शन देखा जाय तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होगा, इसलिए तो यह उक्त प्रमाण कहा है और इस तरह यदि अतीत कालीन सब स्पर्शनका योग किया जाय तो वह सर्व लोकगत हो जानेसे उक्त प्रमाण कहा है,यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यों तो सब एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त जीव उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर सकते हैं, पर ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। हाँ,जो एकेन्द्रिय ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं,उनके भी इन दो कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है; इसलिए यहाँ इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। यहाँ शेष प्रकृतियोंमें आतप प्रकृति बचती है सो उसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है,यह स्पष्ट ही है।

१६. बादर एकेन्द्रिय और उसके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें एकेन्द्रिय संयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तिर्यञ्चायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर और आदेयका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी

---

१ ता०प्रतौ 'बादरपज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वपगदीणं उक्क० अणु० सव्वलो० । णवरि मणुसाउ० उक्क० अणु० लो० असंखें० सव्वलो० ।

१७. पुढवि०-आउ०-तेउ० एइंदियपगदीणं उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलोगो । अणु० सव्वलो० । सेसाणं तसपगदीणं आदावं च उक्क० लोगस्स असंखें० । अणु० सव्वलो० । दोआउ० [एइंदिय] ओघं । एवं बादरपुढवि०-आउ०-तेउ० । बादरपुढवि[2]०-आउ०-तेउ०पज्जत्तयाणं एइंदियसंजुत्ताणं उक्क० अणु० सव्वलो० । तससंजुत्ताणं आदावं च उक्क० अणु० लोगस्स असंखें० । एवं वाउकाइयाणं पि । णवरि यम्हि लोगस्स असंखें० तम्हि लोगस्स संखेंज्जदिभागो कादव्वो ।

विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंमें एकेन्द्रियजाति संयुक्त प्रकृतियोंका दो प्रकारका प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनमें स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करनेवाले जीवोंके नहीं होता। आतपका होकर भी वह बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें समुद्घात करनेवाले जीवोंके ही होता है और तिर्यञ्चायुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इन कर्मोंके दोनों पदवालोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा मनुष्यायु और मनुष्यगति आदि तीनका वायुकायिक जीव बन्ध नहीं करते, इसलिए यहाँ मनुष्यायु आदि चार कर्मोंके दोनों पदवालोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। सब सूक्ष्म जीव सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुके बिना सब प्रकृतियोंके दोनों पदवालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनमें मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, पर अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण बन जानेसे यह वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण कहा है।

१७ पृथिवीकायिक, जलकायिक और अग्निकायिक जीवोंमें एकेन्द्रिय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष त्रसप्रकृतियोंका और आतपका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयुओंकी अपेक्षा स्पर्शन सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें एकेन्द्रिय संयुक्त सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका और आतपका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँपर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँपर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन करना चाहिए।

१ आ०प्रतौ 'लोगस्स असंखे० । अणु०' इति पाठः । २ 'तेउ० ओघं पदं । बादरपुढवि०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. वणप्फदि-णियोदेसु एइंदियभंगो। णवरि यम्हि लोगस्स संखेंज्जदिभागो तम्हि लोगस्स असंखेंज्जदिभागो कादव्वो। बादरवणप्फदि-बादरणियोदाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं एइंदियपगदीणं उक्क० अणु० सव्वलो०। तससंजुत्ताणं उक्क० अणु० खेंत्तभंगो। उज्जो०-जस० उक्क० अणु० सत्तचों० सव्वबादराणं च। बादर० उक्क० खेंत्तभंगो। अणु० जसगित्तिभंगो। बादरवणप्फदिपत्ते० बादरपुढवि०भंगो।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक आदि तीनमें भी बादर पर्याप्त जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए इनमें एकेन्द्रिय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। साथ ही यह बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन भी कहा है। इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है, यह स्पष्ट ही है। इनमें आतपसहित शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं होता, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यद्यपि आतपका एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, पर ऐसे जीव बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोंमें ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, इसलिए इस अपेक्षासे भी उक्त स्पर्शनके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध पृथिवीकायिक आदि सब करते हैं, इसलिए इनके इस पदवालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। दो आयुओंकी अपेक्षा जो प्ररूपणा एकेन्द्रियोंमें कर आये हैं वह यहाँ भी बन जाती है, इसलिए इसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। बादर पृथिवीकायिक आदि तीनमें सब प्ररूपणा पृथिवीकायिक आदि तीनके समान घटित हो जाती है, इसलिए इसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि तीनोंमें एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियोंके दोनों पद मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा त्रससंयुक्त और आतपका बन्ध करनेवाले उक्त जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक स्पर्शन किसी भी अवस्थामें सम्भव नहीं है, इसलिए यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। वायुकायिक और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंमें सब स्पर्शन पृथिवीकायिक और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंके समान बन जानेसे इसी प्रकार वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए, यह कहा है। मात्र उनसे इनमें जितनी विशेषता है, उसका अलगसे उल्लेख किया है।

१८ वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहना चाहिए। बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें एकेन्द्रिय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब बादरोंमें उद्योत और यशःकीर्तिका भङ्ग इसी प्रकार जानना चाहिए। बादर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन यशःकीर्तिके समान है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि० पंचणाणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-[जस०-] पंचंत० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठचों० सव्वलोगो वा। थीणगिद्धि०३-असादा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ०-णीचा० उक्क० अणु० अट्ठचों० सव्वलो०। णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४-छण्णोक० उक्क० अट्ठचोंद्दस०। अणु० अट्ठचोंद्दस० सव्वलो०[1]। पच्चक्खाण०४ उक्क० छचोंद्दस० अणु० अट्ठचोंद्दस० सव्वलो०। इत्थिवे०-चदुसंठा०-पंचसंघ० उक्क० अणु० अट्ठ-बारह०। पुरिस०-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-तस० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठ-

---

विशेषार्थ—वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है। मात्र एकेन्द्रियोंमें वायुकायिक जीव भी आ जाते हैं जो कि इनसे अलग कायवाले हैं, इसलिए एकेन्द्रियोंमें जहाँ लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है वहाँ इन जीवोंमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन जाननेकी सूचना की है। बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी एकेन्द्रिय प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव होनेसे इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। ये जीव त्रस प्रकृतियोंका बन्ध करते समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते, इसलिए इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। अब रहीं उद्योत, यशःकीर्ति और बादर ये तीन प्रकृतियाँ सो इनके दोनों प्रकारके स्पर्शनका पहले अनेक बार खुलासा कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। इनमेंसे उद्योत और यशःकीर्ति इन दो प्रकृतियोंका अन्य सब बादरोंमें यह स्पर्शन घटित हो जाता है, इसलिए उसे अन्तमें इनके समान जाननेकी सूचना की है। बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंका भङ्ग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है।

१६. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, यशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नपुंसकवेद, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और नीचगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और छह नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, चार संस्थान और पाँच संहननका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन और त्रसका

१ ता० आ० प्रत्योः 'उक्क० अट्ठचोद्दस सव्वलो०' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

बारह० । दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारदुगं उक्क० अणु० खेत्तभंगो । दोआउ०-आदाव० उक्क० अणु० अट्ठचोंद्दस० । दोगदि-दोआणु० उक्क० अणु० छचोंद्दस० । तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण४—तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-पत्ते०—अथिर-असुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । अणु० अट्ठ० सव्वलो० । मणुस०-मणुसाणु०-तित्थं०[1] उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० अट्ठचों० । एवं उच्चा० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० [उक्क०] अणु० बारह० । समचदु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें० उ० छचों०[2] । अणु० अट्ठ-बारह० । उज्जो०-बादर० उक्क० अट्ठ-णवचोंद्दस० । अणु० अट्ठ-तेरह० । णवरि बादर० उक्क० खेंत्तभंगो । [सुहुम०-अपज्ज०-साधार० पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो ।] एवं चक्खु०-सण्णि त्ति । कायजोगि० ओघं ।

उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दो आयु और आतपका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो गति और दो आनुपूर्वीका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार उच्चगोत्रके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । समचतुरस्रसंस्थान, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । उद्योत और बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतनी विशेषता है कि बादर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । तथा काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

१ ता० प्रतौ 'मणुस० मणुपु (?) तित्थ०' आ०प्रतौ 'मणुस० मणपज्ज० तित्थ०' इति पाठः ।
२ ता० प्रतौ आ० उ० (दे) छचों०' आ०प्रतौ 'आदें० छचों०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका ही स्पर्शन किया है। इनका क्षेत्र भी इतना ही है, इसलिए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा विहारवत्स्वस्थान और मारणान्तिकके समय भी इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदि प्रकृतियोंके दोनों पदोंका स्पर्शन ज्ञानावरणादिके अनुत्कृष्ट पदके समान घटित हो जानेसे वह भी त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोक प्रमाण कहा है। निद्रा आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, इस लिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। निद्रादिकके अनुत्कृष्टके समान प्रत्याख्यानावरण चतुष्क और तिर्यञ्चगति आदि इक्कीस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका भी उक्त प्रमाण स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे यहाँ इस स्पर्शनका हम अलगसे स्पष्टीकरण नहीं करेंगे। अच्युत कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव भी प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, इसलिए यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके मारणान्तिक समुद्घातके समय भी स्त्रीवेद आदि दस प्रकृतियोंके दोनों पदोंका बन्ध सम्भव है, इसलिए यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। पुरुषवेदका अनिवृत्तिकरणमें और पञ्चेन्द्रियजाति आदि पच्चीस नाम प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला दो गतिका जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है, इसलिए इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जो त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है सो यह स्त्रीवेद आदिका स्पर्शन घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। दो आयु आदि सात प्रकृतियोंके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और आतपके दोनों पदोंका बन्ध देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी दो गति और दो आनुपूर्वीके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी तिर्यञ्चगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यगतिद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन स्वामित्वको देखते हुए लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तथा देवोंके स्वस्थानविहारके समय भी इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। उच्चगोत्रके दोनों पदवालोंका स्पर्शन मनुष्यगति आदिके समान ही बन जानेसे वह उस प्रकार कहा है। नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी वैक्रियिकद्विकके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इस अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदिका देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय और अप्रशस्त विहायोगति तथा दुःस्वरका नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय और सासादन जीवोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. ओरालि० पंचणाणावरणदंडओ ओघं। थीणगिद्धि०३-असादा०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलो०। अणु० सव्वलो०। णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४-छण्णोक० उक्क० छच्चों०। अणु० सव्वलो०। एवं पच्चक्खाण०४-[समचदु०-सुभग-दोसर-आदें०]। इत्थि[1]० उक्क० दिवड्ढचोंद्दस०। अणु० सव्वलो०। पुरिस०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-चदुसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव०-दोविहा०-तस-बादर० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०। दोगदि-दोआणु० उक्क० अणु० छच्चों०। तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण० ४-तिरि-

मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव होनेसे इस अपेक्षासे त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और देवोंके एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके मारणान्तिक समुद्घातके समय इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। बादर-प्रकृतिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन उद्योतके अनुत्कृष्टके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा इसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। सूक्ष्म आदिका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है, यह भी स्पष्ट है। चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंमें उक्त प्रकारसे स्पर्शन घटित हो जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा काययोग एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव होनेसे इसमें ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, अतः ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

२०. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और छह नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, दो स्वर और आदेयकी अपेक्षा स्पर्शन जानना चाहिए। स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस और बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्च-

१ ता० आ० प्रत्योः 'पच्चक्खाण० ४ इत्थि०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखाणु०-अगु०४—थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त—पत्ते०—साधार०—थिराथिर-सुभासुभ—दूभग अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । अणु० सव्वलो० । [वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० बारहचोंद्दस० ।] तिण्णिआउ० तिरिक्खोघं । आहारदुगं तित्थ० खेत्तभंगो । उज्जो० उक्क० सत्तचोंद्दस०[1] । अणु० सव्वलो० । जस० पुरिस०भंगो ।

गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तीन आयुओंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है । उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । यशःकीर्तिका भङ्ग पुरुषवेदके समान है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिके दोनों पदवालोंका स्पर्शन ओघके समान यहाँ घटित हो जानेसे वह ओघके समान कहा है । स्त्यानगृद्धि तीन आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव स्वस्थानके समान मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उसका बन्ध करते हैं, इसलिए इस अपेक्षासे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । तथा औदारिककाययोगका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण होनेसे इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है । ऊपर आनतकल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी निद्रा आदि बारह प्रकृतियोंका और चार प्रत्याख्यानावरणका दोनों प्रकारका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके दोनों पदोंका त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके इस पदवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । तथा एकेन्द्रियादि सब जीव इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर सकते हैं, अतः इसके इस पदवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । आगे भी जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका यह स्पर्शन कहा हो, वह इसी प्रकार जानना चाहिए । यहाँ पुरुषवेद आदिके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंके स्वामित्वको देखते हुए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए यह क्षेत्रके समान कहा है । दो गति और दो आनुपूर्वीके दोनों पदवालोंका त्रसनालीके छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनका पहले अनेक बार स्पष्टीकरण कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए । और इसे दूना कर देनेपर वैक्रियिकद्विककी अपेक्षा दोनों पदवालोंका स्पर्शन हो जाता है । स्वस्थानके समान एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी तिर्यञ्चगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट पदवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है । तीन आयुका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान और आहारकद्विक व तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है । ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके इस पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे

१ आ०प्रतौ 'उज्जो० सत्तचोद्दस०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. ओरालियमि० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि० - तिण्णिसरीर-हुंड० - वण्ण०४-तिरिक्खाणु० - अगु०४-थावर-सुहुम- पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० लोगस्स असंखे०। अणु० सव्वलो०। सेसाणं उक्क० अणु० खेत्तभंगो।

२२. वेउव्वियका० पंचणा०-थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु० ४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० अट्ठ-तेरह०। छदंस०-बारसक०-छण्णोक० उक्क० अट्ठचो०। अणु० अट्ठ-तेरह०। इत्थि०-पुरिस०-पंचिंदि०-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदे० उक्क० अणु० अट्ठ-बारह०। णवरि पुरिस० उक्क० अट्ठ०। दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदाव-तित्थ०-उच्चा०

चौदह भागप्रमाण कहा है। पुरुषवेदकी अपेक्षा जो स्पर्शन कहा है उसी प्रकार यशःकीर्तिकी अपेक्षा भी स्पर्शन बन जाता है, इसलिए इसका भङ्ग पुरुषवेदके समान कहा है।

२१. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके एक समय पूर्व करते हैं, इसलिए इनके इस पदवालोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा औदारिकमिश्रकाययोगका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन होनेसे इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशवालोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके एक समय पूर्व संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही करते हैं, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है और इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशवाले जीवोंका जिसका जो क्षेत्र कह आये हैं वह यहाँ स्पर्शन घटित हो जानेसे वह भी क्षेत्रके समान कहा है।

२२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और छह नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० अणु० अट्ठचोद्दस० । तिरिक्ख०–तिण्णिसरीर–हुंड०-वण्ण०४–तिरिक्खाणु०–अगु०४–उज्जो०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०–थिरादितिण्णियु०–दूभग–अणादें०-णिमि० उक्क० अट्ठ-णव० । अणु० अट्ठ-तेरह० । एइंदि०–थावर० उक्क० अणु० अट्ठ-णव० ।

२३. वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०–सुहुमसंप० उक्क० अणु० खेत्तभंगो ।

२४. कम्मइ० पंचणाणा०-थीणगिद्धि०३–दोवेद०–मिच्छ०–अणंताणु०४–णवुंस०-णीचा०-पंचंत० उक्क० बारह० । णवरि मिच्छ०पगदीणं उक्क० एक्कारह० ।

करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तिर्यञ्चगति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगमें विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है । मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन है । एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेपर त्रसनाली के कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है । तथा नारकियोंका तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें व देवोंका तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेपर मिलाकर त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है, इसलिए यहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जो स्पर्शन कहा है, वह पूर्वोक्त स्पर्शनको देखकर अपने-अपने स्वामित्वके अनुसार घटित कर लेना चाहिए । अन्य विशेषता न होनेसे यहाँ हमने उसे अलग-अलग घटित करके नहीं बतलाया है ।

२३. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणाओंमें अपना-अपना स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, इसलिए यहाँ अपनी-अपनी प्रकृतियोंके दोनों पदवालोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण प्राप्त होनेसे क्षेत्रके समान कहा है, क्योंकि यहाँ क्षेत्र भी इतना ही है ।

२४. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० सव्वलो० । छदंस०–बारसक०–सत्तणोक०-उच्चा० उक्क० छचों० । अणु० सव्वलो० । इत्थि०-चदुसंठा०–पंचसंघ०-अप्पसत्थ०–दुस्सर० उक्क० बारह० । अणु० सव्वलो० । दोगदि-पंचजादि-तिण्णिसरीर-हुंड०–ओरालि०अंगो०–असंप०–वण्ण०४–दोआणु०-[अगु०-उप०-] तस-थावरादिसत्त-अथिरादिपंच–णिमि० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० सव्वलो० । देवगदिपंचग० उक्क० अणु० खेत्तभंगो । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० उक्क० छचों० । अणु० सव्वलो० । पर०-उस्सा०-पज०-थिर–सुभ-जस० उक्क० छचोंद्द० । अणु० सव्वलो० । एवं आदाउज्जो० ।

ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । छह दर्शनावरण बारह कषाय, सात नोकषाय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण-क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो गति, पाँच जाति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग,असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस और स्थावर आदि सात, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोक-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेश-बन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार आतप और उद्योतके दोनों पदवाले जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है वह कार्मण काययोगके उक्त प्रमाण स्पर्शनको देखकर घटित कर लेना चाहिए । शेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—चारों गतिके कार्मणकाययोगी संज्ञी जीव पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर सकते हैं । यतः इन जीवोंका स्पर्शन नीचे छह और ऊपर छह इस प्रकार कुल कुछकम बारह राजूप्रमाण प्राप्त होता है, अतः यहाँ यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । मात्र जो मिथ्यादृष्टि जीव स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद और नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं, उनका ऊपर कुछ कम पाच राजूप्रमाण ही स्पर्शन बन सकता है, क्योंकि न तो ऐसे जीव आनतादिकमें उत्पन्न होते हैं और न आनतादिकसे आकर मनुष्यगतिमें ही उत्पन्न होते हैं। अतः यहाँ मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । छह दर्शनावरण आदिका सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी ही उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं और ऐसे जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. इत्थिवेदेसु पंचणा०-थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस[1]०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० अट्ठ० सव्वलो०। णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४-छण्णोक० उक्क० अट्ठ०। अणु० अट्ठ० सव्वलो०। चदुदंसणा०-चदुसंज० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठचों० सव्वलो०। पच्चक्खाण०४ उक्क० छच्चों०। अणु० अट्ठ० सव्वलो०। इत्थि[2]०-दोआउ०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-आदावुज्जो० उक्क[3]० अणु० अट्ठ०। पुरिस-मणुस०-ओरालि०अंगो०-असंप०-मणुसाणु० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठचों०। दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारदुग-तित्थ० खेत्तभंगो। दोगदि-दोआणु० उक्क०

अतः यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन अपने-अपने स्वामित्वको जानकर पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंके समान ही घटित कर लेना चाहिए। दो गति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जो क्षेत्र कहा है वही यहाँ पर स्पर्शन प्राप्त है, इसलिए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ देवगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि जीव ही करते हैं, इसलिए इनके दोनों पदवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है, क्योंकि इन जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक स्पर्शन नहीं प्राप्त होता। सुभगादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव ऊपर त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार परघात आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने स्वामित्वके अनुसार त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण घटित कर लेना चाहिए।

२५. स्त्रीवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और छह नोकषायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, दो आयु, चार संस्थान, पाँच संहनन, आतप और उद्योतका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके दोनों पदवालोंका स्पर्शन

---

१ ता० प्रतौ 'मिच्छ० मिच्छ० (?) अणंताणु० णपुं०' इति पाठः। २ आ०प्रतौ 'अट्ठ०। इत्थि०' इति पाठः। ३ आ० प्रतौ 'आदाउज्जो० उक्क०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० छच्चों० । तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-पत्ते०-अथिर-असुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । अणु० अट्ठ० सव्वलो० । पंचिंदि०-तस० उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० अट्ठ-बारह० । [वेउव्वि०-वेउवि०अंगो० उ० अणु० बारहचोंद्दस० ।] समचदु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें० उक्क० छ० । अणु० अट्ठचों० । पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ० उक्क० अणु० अट्ठचों० सव्वलो० । उज्जो० उक्क० अणु० अट्ठ-णव० । बादर० उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० अट्ठ-तेरह० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० अणु० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । जस० उक्क० ओघं । अणु० अट्ठ-णवचोंद्दस० । एवं पुरिसवेदे वि । णवरि तित्थ० उक्क० खेंत्तभंगो[1] । अणु० अट्ठचों० ।

क्षेत्रके समान है । दो गति और दो आनुपूर्वीका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । समचतुरस्रसंस्थान, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । उद्योतका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ओघके समान है । तथा इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदियोंमें जहाँ त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन

१ ता० प्रतौ 'उ० अ० खेंत्तभंगो' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. णवुंसगे० पंचणा०–थीणगिद्धि०३–दोवेद०–मिच्छ०–अणंताणु०४–

कहा है वहाँ देवोंके स्वस्थान विहारकी मुख्यतासे जानना चाहिए। अन्य स्पर्शन इसीमें गर्भित हो जाता है। जहाँ सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है वहाँ एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कराकर यह प्राप्त किया गया है। कहीं उपपादपदकी अपेक्षा भी यह स्पर्शन प्राप्त हो सकता है सो विचार कर लगा लेना चाहिए। जहाँ पूर्वोक्त दोनों प्रकारका स्पर्शन कहा है, वहाँ इन दोनों विवक्षाओंको ध्यानमें रखकर वह ले आना चाहिए। त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन देवोंमें और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करानेसे प्राप्त होता है सो स्वामित्वको देखकर जहाँ जो सम्भव हो वहाँ वह घटित कर लेना चाहिए। पुरुषवेद आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहनेका कारण यह है कि पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तो अनिवृत्तिकरणमें होता है तथा मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले संज्ञी मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य गतिके जीव करते हैं। दो आयु आदि आठ प्रकृतियोंके दोनों पदवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है,यह पहले अनेक बार स्पष्ट कर आये हैं। तिर्यञ्चगति आदि इक्कीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले दो गतिके संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानमें और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय इन दोनों अवस्थाओंमें करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी मनुष्यगतिके ही समान है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इन दोनों प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और नारकियों व देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी सम्भव है, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय वैक्रियिकद्धिकके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदवालोंका त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी मनुष्य और तिर्यञ्च समचतुरस्रसंस्थान आदिका और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। सूक्ष्म आदि तीन प्रकृतियोंका दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्योंके स्वस्थानमें व एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव है, इसलिए इनके दोनों पदवालोंका लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्रीवेदियोंमें शेष जिस स्पर्शनका यहाँ स्पष्टीकरण नहीं किया है उसका पहले अनेकबार स्पष्टीकरण कर आये हैं, इसलिए उसे वहाँसे जान लेना चाहिए। यशःकीर्तिके उत्कृष्ट पदवालोंका स्पर्शन ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। तथा देवियोंके विहारके समय और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके इस पदवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। पुरुषवेदी जीवोंमें यह स्पर्शन अविकल घटित हो जाता है इसलिए उनमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र देवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भी बन्ध होता है, इसलिए पुरुषवेदियोंमें इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण बन जानेसे इसकी अलगसे सूचना की है।

२६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्यञ्चगति संयुक्त प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तिरिक्खगदिसंजुत्ताणं [णीचा०-पंचंत०] उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । अणु० सव्वलो० । णिद्दा-पयला-अट्ठक०-सत्तणोक०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० उक्क० छ० । अणु० सव्वलो० । चदुदंस०-चदुसंज०-पुरिस० उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० सव्वलो० । [दोआउ०] वेउव्वियछक्कं आहारदुगं ओघं । [तिरिक्खाउ०-मणुसाउ०-सुहुम-अपज्ज०-साधा० तिरिक्खोघं ।] मणुस०-चदुजादि-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-मणुसाणु०-आदाव०-जस० उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० सव्वलो० । [पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ० उक्क० लोग० असंखें० सव्वलो० । अणु० सव्वलो० ।] उज्जो० उक्क० सत्तचों० । अणु० सव्वलो० । [तित्थ० खेंत्तभंगो।] कोधादि० ४ ओघं ।

प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, सात नोकषाय, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दोस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी जीव स्वस्थानमें तो करते ही हैं, पर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनके वह सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सब जीवोंके सम्भव है, अतः यह स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। आगे भी जिन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनवाले जीवोंका यह स्पर्शन कहा है, वह इसी प्रकार जानना चाहिए। निद्रादिकके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामी अलग-अलग जीव बतलाये हैं। उनका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण बन जानेसे यहाँ वह उक्त प्रमाण कहा है। चार दर्शनावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संयत जीवोंमें अलग-

१. आ० प्रतौ उक्क अणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. मदि-सुद० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अट्ठ० सव्वलो०। अणु० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-चदुसंठा०-पंचसंघ० उक्क० अट्ठ-बारह०। अणु० सव्वलो०। दोआउ० खेत्तभंगो। तिरिक्ख-मणुसाउ०-णिरय०-णिरयाणु०-[आदाव] ओघं। तिरिक्खगदिदंडओ ओघं। मणुसगदि-चदुजादि-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-मणुसाणु०-तस-बादर० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० सव्वलो०। देवगदि–समचदु०–देवाणुपु०–दोविहा०–सुभग–दोसर–आदें० उक्क० पंचचों०। अणु० सव्वलो०। णवरि देवगदि-देवाणु० अणु० पंचचों०। अप्पसत्थ०-

अलग गुणस्थानोंमें होता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विकके दोनों पदवालोंका जो स्पर्शन ओघमें कहा है, वह यहाँ अविकल घटित हो जाता है, इसलिए इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। तिर्यञ्चायु आदिका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह पहले अनेक बार लिख आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। परघात आदिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जैसा सामान्य तिर्यञ्चोंमें घटित करके बतलाया है, उसीप्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है और ऐसे जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण होता है, इसलिए यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। क्रोधादि चार कषायवालोंमें ओघ स्वामित्वसे बहुत ही कम अन्तर है। जो अन्तर है उससे स्पर्शनमें फरक नहीं पड़ता, इसलिए इनमें ओघके समान स्पर्शनके जाननेकी सूचना की है।

२७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान और पाँच संहननका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयुओंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और आतपका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, चार जाति, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस और बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि देवगति

१. ता० प्रतौ 'तिरिक्ख मणुसाउ० ओघं। णिरय० णिरयाणु०' आ० प्रतौ 'तिरिक्ख मणुसाउ० णिरयाणु०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० छच्चों० । अणु० सव्वलो० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० ऍक्कारह० । पर०-उस्सा०-पज्जत्त०-थिर-सुभ० ओघं । उज्जो-जस० उक्क० अट्ठ-णव० । अणु० सव्वलो० । [उच्चा० उक्क० अट्ठचों० । अणु० सव्वलो० ।] एवं अब्भव०-मिच्छादिट्ठि त्ति ।

और देवगत्यानुपूर्वीका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभका भङ्ग ओघके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है। तथा एकेन्द्रियादि सब जीव इनका बन्ध करते हैं, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्वलोकप्रमाण स्पर्शन कहा है, वह उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। देवोंमें स्वस्थानविहारके समय और तिर्यञ्चों व मनुष्योंमें नीचे छह व ऊपर छह इस प्रकार कुछ कम बारह राजू क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवालोंका त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नरकायु और देवायुका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार शेष दो आयु, नरकगति और तिर्यञ्चगतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान घटित कर लेना चाहिए, क्योंकि स्वामित्वकी अपेक्षा ओघसे यहाँ कोई अन्तर नहीं आता, इसलिए ओघप्ररूपणा बन जाती है। मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह पहले अनेक बार उल्लेख कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। ऊपर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी देवगति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके इस पदवाले जीवोंका त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। एकेन्द्रियादिसे लेकर नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके व चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके व नारकियों और देवोंके देवगतिद्विकका बन्ध नहीं होता, इसलिए देवगतिद्विकका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भी त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। नीचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. विभंगे० पंचणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-पर०-उस्सा०-पज्जत्त०-थिर-सुभ-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० अट्ठचों० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-चदुसंठा०पंचसंघ० उक्क० अणु० अट्ठ-बारह० । दोआउ०-तिण्णिजादि० उक्क० अणु० खेत्तभंगो । दोआउ०-आदाव०-उच्चा० उक्क० अणु० अट्ठचों० । णिरयगदि-दुगं ओघं । तिरिक्खगदिदंडओ उक्क० ओघो । अणु० अट्ठचों० सव्वलो० । मणुसगदि-दुगं उक्क० खेत्तभंगो । अणु० अट्ठ० । देवगदिदुगं उक्क० अणु० पंचचों० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-असंपत्त०-तस० उक्क० खेत्तभंगो । अणु अट्ठ-बारह० ।

नारकियोंमें और ऊपर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके वैक्रियिकद्विकका दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध होता है, इसलिए इनके दोनों पदवालोंका स्पर्शन त्रसनाली का कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। परघात आदि प्रकृतियोंकी अपेक्षा जो स्पर्शन ओघमें कह आये हैं वह यहाँ बन जाता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय और देवोंके ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें विहारादिके समय भी उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इसके इस पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। यह प्ररूपणा अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इनमें मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है।

२८ विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, शुभ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान और पाँच संहनन का उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और तीन जातिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु, आतप और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगतिद्विकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति दण्डकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है देवगतिद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन और त्रसका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध

१. ता० प्रतौ 'आउ [दो] व०' आ० प्रतौ 'आउव' इति पाठः ।
२. आ० प्रतौ 'तस० खेत्तभंगो ।' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० एक्कारहचोॅद्दस० । समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० उक्क० पंचचो० । अणु० अट्ठ-बारह० । उज्जो०-जस० उक्क० अट्ठ-णवचो० । अणु० अट्ठ-तेरह० । अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० छचोॅद्द० । अणु० अट्ठ-बारह० । बादर० उक्क० खेॅत्तभंगो । अणु० अट्ठ-तेरहचो० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० अणु० लो० असंखें०[1] सव्वलो० ।

करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रशस्त विहायोगति और दुस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । बादर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी पाँच ज्ञानावरणादिके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय तथा नीचे छह और ऊपर छह इस प्रकार कुछ कम बारह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी स्त्रीवेद आदिके दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । नरकायु, देवायु और तीन जातिका दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य ही करते हैं । तथा दो आयुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता और तीन जातियोंका केवल विकलेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी बन्ध हो सकता है, इसलिए इनकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है । इन प्रकृतियोंके विषयमें यह अर्थपद आगे व पीछे सर्वत्र लगाकर वहाँ-वहाँका स्पर्शन जान लेना चाहिए । दो आयु आदि चार प्रकृतियोंका दोनों प्रकारका प्रदेशबन्ध देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । नरकगतिद्विकका जो ओघमें स्पर्शन बतलाया

1 मा० प्रतौ 'अणु० असं०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है,वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। तिर्यञ्चगतिदण्डकके उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका ओघसे लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन बतला आये हैं। वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थान और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। मनुष्यगतिद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं। तथा इनके मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी यह सम्भव है। पर इस प्रकारके जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, इसलिए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धमें देवोंके विहारवत्स्वस्थानकी मुख्यता है, इसलिए इनके इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देव और नारकी मारणान्तिक समुद्घातके समय यद्यपि इन दो प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं,पर इस प्रकार प्राप्त होनेवाला स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः विहारवत्स्वस्थानसे प्राप्त होनेवाला स्पर्शन ही यहाँ मुख्यरूपसे विवक्षित किया गया है। ऊपर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगतिद्विकके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। यद्यपि मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और विभङ्गज्ञान नौवें ग्रैवेयकतक सम्भव हैं, इसलिए यह प्रश्न हो सकता है कि देवगतिद्विकका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच राजूके स्थानमें कुछ कम छह राजू होना चाहिए। पर इसका समाधान यह है कि सहस्रार कल्पके ऊपर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए उक्त स्पर्शनमें विशेष अन्तर नहीं पड़ता। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध संज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं। तथा द्वीन्द्रियादिकमें यथायोग्य मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है,पर ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक न होनेके कारण इस प्ररूपणाको क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है। तथा इनका देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और यथायोग्य नीचे व ऊपर छह-छह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नारकियोंमें और ऊपरके सहस्रार कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी वैक्रियिकद्विकके दोनों पदोंका बन्ध सम्भव है, इसलिए इन दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवगतिद्विककी अपेक्षा जो शंका-समाधान किया गया है,वह यहाँ भी जान लेना चाहिए। सहस्रारकल्पतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय समचतुरस्रसंस्थान आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जो त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है सो इसका खुलासा पञ्चेन्द्रियजातिका स्पर्शन बतलाते समय कर आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और नीचे छह व ऊपर सात इस प्रकार कुछ कम तेरह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उक्त दो प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. आभिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठचों०। णिद्दा-पयला-असादा०-अपच्चक्खाण०४-छण्णोक०-मणुसाउ०-मणुसगदिपंचग० उक्क० अणु० अट्ठचों०। पच्चक्खाण०४ उक्क० छचों०। अणु० अट्ठचों०। देवाउ०-आहारदुगं खेत्तभंगो। देवग०४ उक्क०[1] अणु० छचों०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-अजस०-णिमि० उक्क० छचों०। अणु० अट्ठचों०। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-

कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और नीचे छह राजू और ऊपर छह राजू इस प्रकार कुछ कम बारह राजूके भीतर यथायोग्य पदके रहते हुए भी इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। बादरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है,यह स्पष्ट ही है। तथा इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जो त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है सो इसका स्पष्टीकरण उद्योतके अनुत्कृष्टके समान कर लेना चाहिए। सूक्ष्मादिका स्वस्थानमें और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी दो प्रकारका प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है।

२६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातवेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, छह नोकषाय, मनुष्यायु और मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है। देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि

१ आ० प्रतौ 'खेत्तभंगो। उक्क०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवसम० । णवरि खइग० देवगदि०४ खेत्तभंगो ।

३०. संजदासंजदेसु देवाउ०-तित्थ० खेत्तभंगो। सेसाणं उक्क० अणु० छच्चों०।

३१. असंजदेसु मदि०भंगो । णवरि छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० उक्क० अट्ठचों० । अणु० सव्वलो० । वेउव्वियछक्क-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० ओघभंगो । अचक्खु० ओघं ।

और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें देवगतिचतुष्कका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गईं प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध यथायोग्य दसवें, नौवें और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य करते हैं। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट या दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय संयतासंयत जीवोंके प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे पञ्चेन्द्रियजाति आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका यह स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ संयतासंयत ऐसा नहीं करना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है। यहाँ अवधिदर्शनी आदिमें इसी प्रकार जाननेकी सूचना कर जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें विशेषता कही है, उसका कारण यह है कि क्षायिकसम्यग्दर्शन मनुष्य ही उत्पन्न करते हैं, अतः ऐसे मनुष्य और ये यदि भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं तो वहाँ उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य देवगतिचतुष्कका बन्ध करते हैं। ऐसे जीवोंका यदि देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन लिया जाता है तो वह भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें देवगतिचतुष्कका दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है।

३०. संयतासंयतोंमें देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंके देवायुके सिवा सब प्रकृतियोंका देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा देवायुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता और तीर्थङ्कर प्रकृतिका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध होकर भी मनुष्य ही इसका बन्ध करते हैं, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है।

३१. असंयतोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकषट्क, समचतुरस्रसंस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. तिण्णिले० पंचणा०—थीणगिद्धि०३—दोवेद०—मिच्छ०—अणंताणु०४—णवुंस०—तिरिक्ख०—एइंदियसंजुत्ताणं णीचा०-पंचंतरा० उक्क० लोग० असंखें० सव्वलो० । अणु० सव्वलो० । छदंस०-बारसक०—सत्तणोक०—तिरिक्खाउ०—मणुस०-चदुजादि०-समचदु०-ओरालि०अंगो—असंपत्त०—मणुसाणु०—आदाव—पसत्थ०—[तस०-बादर—] सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० सव्वलो० । इत्थि०-चदुसंठा०-पंचसंघ-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० छच्चत्तारि-बेच्चोंद्दस० । अणु० सव्वलो० । दोआउ० खेत्तभंगो । मणुसाउ० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । णिरयगदिदुगं वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० अणु० छच्चत्तारि-बे

प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका भङ्ग ओघके समान है । अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—असंयतोंमें एकेन्द्रियोंसे लेकर चतुर्थगुणस्थान तकके जीव गर्भित हो जाते हैं; इसलिए जिन प्रकृतियोंका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है और जिनका एकेन्द्रियादि जीव भी बन्ध करते हैं, उनकी अपेक्षा यहाँ मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग बन जाता है । मात्र जिन प्रकृतियोंके स्पर्शनमें विशेषता है उनका अलगसे निर्देश किया है । यथा—असंयतोंमें छह दर्शनावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध असंतसम्यग्दृष्टि जीव करते हैं और इनका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंका उक्त पदकी अपेक्षा उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा । तथा इनका एकेन्द्रिय जीवोंके भी बन्ध सम्भव है, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । इसी प्रकार वैक्रियिकषट्क आदिका अपनी-अपनी विशेषता जानकर ओघके समान यहाँ स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ।

३२. तीन लेश्याओंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद और तिर्यञ्चगति आदि एकेन्द्रियसंयुक्त प्रकृतियाँ तथा नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने क्रमसे त्रसनालीका कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयुओंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । नरकगतिद्विक, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दस०[1]। देवगदिदुगं तित्थ० खेत्तभंगो। पर०-उस्सा०-पज्ज०-थिर-सुभ० ओघं। उज्जो०-जस० उक्क० सत्तचो०। अणु० सव्वलो०।

३३. तेउए पंचणा०-थीणगि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदियसंजुत्ताणं णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० अट्ठ-णव०। छदंस०-

देवगतिद्विक तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर और शुभका भङ्ग ओघके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तीन लेश्यावाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव स्वस्थानमें और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध कर सकते हैं, अतः इनका इस पदकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहाँ छह दर्शनावरण आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहनेका कारण यह है कि इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते समय लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्शन देखा जाता है। कारणका विचार अलग-अलग स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। कृष्णादि लेश्याओंका स्पर्शन क्रमसे त्रसनालीका कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह भागप्रमाण उपलब्ध होता है। मारणान्तिक समुद्घातके समय इतने क्षेत्रका स्पर्शन करते समय इनमें स्त्रीवेद आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंका उक्त पदकी अपेक्षा उक्त-प्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार नरकगतिद्विक और वैक्रियिकद्विकके दोनों पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। दो आयुओंका दोनों पदोंकी अपेक्षा और मनुष्यायुका उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इनका स्वस्थानमें ही बन्ध होता है और नरकायु व देवायुका चतुरिन्द्रिय तकके जीव बन्ध नहीं करते। मनुष्यायुका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियादि जीव भी करते हैं पर ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण प्राप्त होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ देवगतिद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान कहनेका कारण यह है कि देवगतिद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध भवनत्रिकमें यदि मारणान्तिक समुद्घातके समय भी करें तो यह स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। तथा इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक तो मनुष्य करते हैं। दूसरे नरकमें यद्यपि इसका बन्ध होता है और मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इसका बन्ध सम्भव है, फिर भी ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं प्राप्त होता। यहाँ परघात आदिके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन ओघके समान बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। यहाँ ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, अतः इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है।

३३. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति संयुक्त प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच

१ ता० प्रतौ 'वेउ० अंगो०''''''छच्चत्तारि-बेचो०' इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अपचक्खाण०४-छण्णोक० उक्क० [अट्ठ । अणुक्क०] अट्ठ-णव० । पच्चक्खाण०४ उक्क० दिवड्ढचों० । अणु० अट्ठ-णव० । चदुसंज० उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० अट्ठ-णव० । इत्थि०-पुरिस०-चदुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर०-[उच्चा०] उक्क० अणु० अट्ठचों० । एवं मणुसगदिदुगं । दोआउ० उक्क० अणु० अट्ठचों० । देवाउ०-आहारदुगं उक्क० अणु० खेंत्तभंगो । देवगदि०४ उक्क० अणु० दिवड्ढचों० । पंचिंदि०-समचदु०-पसत्थ०-तस-सुभगादितिण्णि० उक्क० दिवड्ढचों० । अणु० अट्ठचों० । तित्थ० उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० अट्ठचों० । एवं पम्माए । णवरि सगफोसणं णादूण णेदव्वं । एवं सुक्काए वि । णवरि पंचणाणावरणादिपढमदंडओ उक्क० खेंत्तभंगो । अणु० छचोंद्द० । सेसाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं । भवसि० ओघो ।

अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और छह नोकषायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्यगतिद्विककी अपेक्षा स्पर्शन जानना चाहिए। दो आयुका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।। देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस और सुभग आदि तीनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपना स्पर्शन जानकर ले जाना चाहिए। तथा इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथमदण्डकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. सासणे० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-सोलसक०[1]-अट्ठणोक०-तिरिक्ख०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० अट्ठ-बारह० । णवरि दोवेद० संठाणं संघडणं अप्पसत्थ० उक्क० अणु० अट्ठ०-ऍक्कारह० । दोआउ० मणुसगदिदुगं उच्चा० उक्क० अणु० अट्ठचों० । देवाउ० खेत्तभंगो । देवगदि०४ दोपदा पंचचो० । पंचिंदियादिअट्ठावीसं० उ०

है। शेष प्रकृतियोंका अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए। तथा भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन प्रकृतियोंका देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, उनका उस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग-प्रमाण स्पर्शन कहा है। जिनका देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और देवोंके ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, उनका उस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा जिनका मनुष्य और तिर्यञ्च या केवल मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं उनका उस पदकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। यहाँ चार संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवायुका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता और आहारकद्विकका अप्रमत्तादि जीव बन्ध करते हैं, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मनुष्य करते हैं, इसलिए इसका भी उक्त पदकी अपेक्षा क्षेत्रके समान स्पर्शन कहा है। पीतलेश्यामें यह जो स्पर्शन कहा है वह पद्मलेश्यामें भी बन जाता है। मात्र यहाँ कुछ कम डेढ़ राजूके स्थानमें कुछ कम पाँच राजू स्पर्शन कहना चाहिए। तथा त्रसनालीका कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन नहीं कहना चाहिए। शुक्ललेश्यामें भी इसी प्रकार अपना स्पर्शन जान कर घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसमें पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी ओघके समान होनेसे इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है।

३४ सासादनसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, सोलह कषाय, तिर्यञ्चगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि दो वेद, संस्थान, संहनन, और अप्रशस्त विहायोगतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रासनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भङ्ग क्षेत्रके समान है। देवगति चतुष्कके दो पदवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने

१ आ० प्रतौ 'दोवेद० सादा० अट्ठणोक०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचचों० । अणु० अट्ठ-बारह० । णवरि पंचिंदि०-[समचदु०-] पसत्थ०-तस-सुभग-सुस्सर-आदें० [उ०] पंचचों० । अणु० अट्ठ-ऍक्कारह० ।

३५. सम्मामि० पंचणाणावरणादिधुवियाणं पढमदंडओ दोवेद०-चउणो-कसाय० उक्क० अणु० अट्ठचों० । देवगदि०४ खेत्तभंगो । पंचिंदियादिअट्ठावीसं उक्क० खेत्तभंगो । अणु० अट्ठचों० ।

त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्त्वका स्वस्थानविहारकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है। यहाँ प्रथम दण्डककी अपेक्षा दोनों पदोंका यह स्पर्शन बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र दो वेद, चार संस्थान, पाँच संहनन और अप्रशस्त विहायोगतिका बन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं होता, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी दो आयु आदिके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग-प्रमाण स्पर्शन कहा है। देवायुका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। देवगति चतुष्कका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं जो कि देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, अतः इन प्रकृतियोंका दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ पाँच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देवोंके स्वस्थानमें तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ व कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र पञ्चेन्द्रियजाति आदि निर्दिष्ट कुछ प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है।

३५ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डककी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका तथा दो वेदनीय और चार नोकषायका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति-चतुष्कका भङ्ग क्षेत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय भी पाँच ज्ञानावरणादिके दोनों पद

१ ता० आ० प्रत्योः 'पढमदंडओ एगुणतीसाए उक्क०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. सण्णि० पंचिंदियभंगो। असण्णीसु[1] पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्खगदि-एइंदि०संजुत्ताणं याव णीचा०-पंचंत० उक्क० लोगस्स असंखें० सव्वलो०। [अणु० सव्वलो०।] सेसाणं उक्क० अणु० खेत्तभंगो। णवरि उज्जो०-जस० उक्क० सत्तचों०। अणु० सव्वलो०।

३७. आहार० ओघं। अणाहारगेसु पंचणा०-थीणगिद्धि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-णवुंस०-पर०-उस्सा०-पज्जत्त०-थिर-सुभ-णीचा०-पंचंत० उ० बारह०[2]।

और पञ्चेन्द्रियजाति आदिका अनुत्कृष्ट पद सम्भव है, इसलिए इनका उक्त पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ प्रथम दण्डककी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगतिपञ्चक, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय। तथा इनमें दो वेदनीय और चार नोकषाय भी सम्मिलित कर लेनी चाहिए, क्योंकि इन सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध देवोंके भी सम्भव है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि प्रकृतियाँ ये हैं—पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस आदि चार, स्थिर आदि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण।

३६. संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति और एकेन्द्रियजाति संयुक्त प्रकृतियोंसे लेकर नीचगोत्र और और पाँच अन्तरायतककी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—स्पर्शन प्ररूपणामें जो पञ्चेन्द्रियोंमें स्पर्शन कह आये हैं वह संज्ञियोंमें अविकल बन जाता है, इसलिए संज्ञियोंमें पञ्चेन्द्रिय जीव ही पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते हैं और उनका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका एकेन्द्रियादि सब जीव बन्ध करते हैं, इसलिए इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके सिवा शेष जितनी प्रकृतियाँ हैं, इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, ऐसा कहनेका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकृतिका दोनों पदोंकी अपेक्षा जो क्षेत्र बतलाया है वह यहाँ स्पर्शन जानना चाहिए। मात्र उद्योत व यशःकीर्तिके स्पर्शनमें क्षेत्रसे विशेषता है, इसलिए इसका उल्लेख अलगसे किया है।

३७. आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अनाहारक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, शुभ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका

१. ता० प्रतौ 'सण्णि [यास······य भंगो। अ] सण्णीसु' इति पाठः।

२. आ० प्रतौ 'पंचंत० बारह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० सव्वलोगो। छदंस०-बारसक०-सत्तणोक०-[उच्चा०]। उक्क० छच्चों०। अणु०[1] सव्वलो०। सेसाणं उ० खेत्तभंगो[2]। अणु० सव्वलो०। णवरि इत्थि०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० ऍक्कारह०। अणु० सव्वलो०। उज्जो०-जस० उक्क० छच्चों०। अणु० सव्वलो०। देवगदिपंच० उक्क० अणु० खेत्तभंगो।

३८. जह० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० दोआउ०-आहार०२ जह०

कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिपञ्चकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध चारों गतिके संज्ञी जीव करते हैं, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। इस स्पर्शनमें हमें कार्मणकाययोगी जीवोंमें कहे गये स्पर्शनसे दो विशेषताएँ दिखलाई दे रही हैं—एक तो वहाँ 'णवरि' कहकर मिथ्यात्वसम्बन्धी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है जो यहाँ नहीं कहा है। दूसरे वहाँ परघात, पर्याप्त, स्थिर और शुभ इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करने वाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है जो यहाँ त्रसनाली का कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। इन दो विशेषताओंका क्या कारण हो सकता है, यही यहाँ देखना है। यहाँ ऐसा मालूम पड़ता है कि कार्मणकाययोगमें स्पर्शन कहते समय मिथ्यात्व आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका ऊपर कुछ कम पाँच राजू स्पर्शन विवक्षित रहता है और यहाँ वह कुछ कम छह राजू विवक्षित कर लिया गया है। तथा स्वामित्व प्ररूपणामें परघात आदिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तीन गतिका संज्ञी जीव करता है, इस अभिप्रायको ध्यानमें रखकर कार्मणकाययोगमें इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, यह कहा है और यहाँपर इनके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामी चारों गतिका जीव होता है, ऐसा मानकर स्पर्शन कहा है। इन पाँच ज्ञानावरणादिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। शेष स्पर्शनका स्पष्टीकरण जैसे कार्मणकाययोगके समय किया है, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। तथा समचतुरस्र संस्थान आदिके सम्बन्धमें जो विशेषता कही है, उसे भी जान लेनी चाहिए।

३८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे दो

१. ता० प्रतौ 'सत्तणोक० उ० छच्चो० अणु०' आ० प्रतौ 'सत्तणोक० अणु०' इति पाठः।

२. आ० प्रतौ 'सेसाणं खेत्तभंगो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजह० केवडियं खेंत्तं फोसिदं ? खेंत्तभंगो । मणुसाउ० जह० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । अजह० अट्ठचों० सव्वलो० । दोगदि-दोआणु० जह० खेंत्तभंगो । अजह० छच्चोद्दं० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० जह० खेंत्तभंगो । अजह० बारह० । तित्थ० जह० खेंत्तभंगो । अजह० अट्ठचों० । सेसाणं सव्वपगदीणं जह० अजह० सव्वलो० । एवं ओघभंगो कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-आहारग त्ति णेदव्वं । णवरि णवुंस० तित्थ० खेंत्तभंगो । मदि-सुद० वेउव्वियछ० जह० खेंत्तभंगो । अजह० पगदिभंगो । एवं अभवसि०-मिच्छा० ।

आयु और आहारक द्विकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इनका भङ्ग क्षेत्रके समान है । मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अजघन्य प्रदेश-बन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो गति और दो आनुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, नपुंसक-वेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंमें ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तथा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें वैक्रियिकषट्कका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग प्रकृतिबन्धके समान है । इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नरकायु और देवायुका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता । तथा आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत आदि जीव करते हैं, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवों-का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण बन जानेसे यह उक्त प्रमाण कहा है । तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और एकेन्द्रियोंके भी सम्भव है, इसलिए इसका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । नरकगतिद्विक और देवगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध क्रमसे असंज्ञी जीव और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ मनुष्य योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं । यतः इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः क्षेत्रके समान कहा है । तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध क्रमसे नरकमें और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है; अतः इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. णेरइएसु दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ०-उच्चा० जह० अजह० खेत्तभंगो। सेसाणं जह० खेत्तभंगो। अजह० छच्चो०। एवं सव्वणेरइगाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

४०. तिरिक्खेसु ओघं। पंचिंदियतिरिक्ख०३ पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिण्णिसरीर-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि०णीचा०-पंचंत० जह० खेत्तभंगो। अजह० लोग० असंखें०

चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। वैक्रियिकद्विकके जघन्य प्रदेशबन्धका स्वामी देवगतिद्विकके समान है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ देव और नारकी जीव करते हैं, पर ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं, अतः इसका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तथा इसका अजघन्य प्रदेशबन्ध देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, इसलिए इसका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। इस ओघप्ररूपणाके समान काययोगी आदि अन्य मार्गणाओंमें भी स्पर्शन बन जाता है, इसलिए इनमें ओघके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है। मात्र देव नपुंसक नहीं होते, इसलिए नपुंसकवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान प्राप्त होनेसे उसकी सूचना अलगसे की है। तथा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें वैक्रियिकषट्कका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवालोंका स्पर्शन भी ओघके समान नहीं बनता, इसलिए उसे प्रकृतिबन्धके समान जाननेकी सूचना की है। तथा अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें भी मत्यज्ञानीके समान ही स्पर्शन प्राप्त होता है, इसलिए इनमें भी मत्यज्ञानियोंके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है।

३९. नारकियोंमें दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें अपना-अपना स्पर्शन ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ दो आयु आदिके दोनों पदोंकी अपेक्षा और शेष प्रकृतियोंके जघन्य पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहने का कारण स्पष्ट है। तथा शेष प्रकृतियोंका अजघन्य पद मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, अतः इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार प्रथमादि सब नरकोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानकर वह घटित कर लेना चाहिए।

४०. तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तीन शरीर, हुंडसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वलो० । इत्थि० जह० खेत्तं । अजह० दिवड्डचों० । पुरिस०-दोगदि-सम०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० ज० खेत्तं । अज० छच्चों० । चदुआउ०-मणुस०-तिण्णिजादिणाम-चदुसं०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० ज० अज० खेत्तभंगो । पंचिं०-वेउ०-वेउ०अंगो०-तस० ज० खेत्तभंगो । अज० बारह० । उज्जो०-जस० जह० खेत्तभं० । अजह० सत्तचों० । बादर० जह० खेत्तभंगो । अजह० तेरह० ।

तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, दो गति, समचतुरस्रसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्ग और त्रसका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व ओघके समान है। तथा इन प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका ओघसे जो स्पर्शन कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र मनुष्यायुका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जो ओघसे त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है सो यहाँ यह स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण ही जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व यथायोग्य असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवके होता है और ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। यतः इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें क्षेत्र भी इतना ही होता है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है। अब रहा सब प्रकृतियोंका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंके स्पर्शनका स्पष्टीकरण सो वह इस प्रकार है—इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है। इनके इन दोनों अवस्थाओंमें पाँच ज्ञानावरणादिका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले उक्त तिर्यञ्चोंका लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय स्त्रीवेदका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। ऊपर कुछ कम छह राजू क्षेत्रके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय यथायोग्य पुरुषवेद आदि प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव है, अतः इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. पंचिंदि०तिरिक्खअपज्ज० पंचणा०–णवदंस०–दोवेद०–मिच्छ०–सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०–एइंदि०–तिण्णिसरीर–हुंड०-वण्ण०४–तिरिक्खाणु०-अगु०४–थावर–सुहुम – पज्जत्तापज्जत्त–पत्ते० – साधार०–थिराथिर – सुभासुभ–दूभग–अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०–पंचंत० जह० खेत्तभंगो । अजह० लोगस्स असंखें० सव्वलो० । उज्जो०–बादर–जस० जह० खेत्तभंगो । अज० सत्तचों० । सेसाणं सव्वपगदीणं जह० अजह० खेत्तभंगो । एवं सव्वअपज्जत्तयाणं सव्वविगलिंदियाणं बादरपुढवि०–आउ०-तेउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्जत्तयाणं च ।

चार आयु आदिका बन्ध करनेवाले उक्त तिर्यञ्च लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका ही स्पर्शन करते हैं, इसलिए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीव मारणान्तिक समुद्घातके समय ऊपर कुछ कम छह और नीचे कुछ कम छह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन कर सकते हैं, इसलिए यह स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय उद्योत और यशःकीर्तिका बन्ध सम्भव है, अतः इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। नीचे कुछ कम छह राजू और ऊपर कुछ कम सात राजू क्षेत्रके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय बादर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, अतः इसका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है।

४१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जो स्वामी बतलाया है, उसे देखते हुए इस अपेक्षासे स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तथा पाँच ज्ञानावरणादिका बन्ध स्वस्थानके समान मारणान्तिक समुद्घात आदिके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है। उद्योत आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी सम्भव है, इसलिए इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा पूर्वोक्त सब प्रकृतियोंके सिवा जो स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और छह संहनन आदि प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, इनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. मणुस०३ पढमदंडओ पंचिंदियतिरिक्खभंगो। सेसाणं पि पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि केसिं चि वि रज्जू णत्थि। णवरि उज्जो०-बादर०-जसगि० अजह० सत्तचोद्द०।

४३. देवेसु पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिण्णिसरीर-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिरादितिण्णियुग०-दूभग-अणादें०-णिमि०-णीचा०-पंचत० जह० खेत्तभंगो। अजह० अट्ठ-णव०। सेसाणं जह० खेत्तभंगो०। अजह० अट्ठ०। दोआउ० जह० अजह० अट्ठचो०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

बन्ध यथासम्भव स्वस्थानमें और नारकियों व देवोंके सिवा शेष त्रसोंमें मारणान्तिक समुद्घात आदि के समय ही सम्भव है। यतः इस प्रकार प्राप्त होनेवाला स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन भी क्षेत्रके समान कहा है।

४२. मनुष्यत्रिकमें प्रथम दण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि किन्हीं भी प्रकृतियोंका स्पर्शन रज्जुओंमें नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य देवों और नारकियोंमें जाते नहीं और गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं, इसलिए मनुष्योंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, चार आयु, तीन गति, चार जाति, दो शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, आतप, सुभग, दो स्वर, त्रस, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन राजुओंमें प्राप्त न होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले उक्त मनुष्योंका स्पर्शन राजुओंमें प्राप्त हो सकता है, इसलिए इसका अलगसे विधान किया है। शेष कथन सुगम है।

४३. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तीन शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयुओं का जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंका अपना-अपना स्पर्शन ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें दो आयुओंको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें अपनी-अपनी योग्य सामग्रीके सद्भावमें होता है, इसलिए इनका उक्त पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा पाँच ज्ञानावरणादिका बन्ध विहारवत्स्वस्थान और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात आदिके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका अजघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. एइंदि०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद-सव्वबादराणं च सव्वपगदीणं जह० अजह० सव्वलो०। णवरि बादरएइंदिय-पज्जत्तापज्ज० जह० लोगस्स संखेंज्ज०। अजह० सव्वलो०। तससंजुत्ताणं जह० अजह० लोगस्स संखेंज्ज०। मणुसाउ० सव्वाणं जह० ओघं। अजह० लोगस्स असंखें० सव्वलो०। मणुसगदि-तिगं च जह० अजह० लोगस्स असंखें०। एवं बादरवाऊणं बादरवाउ०अपज्जत्तयाणं च। णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्ज। एवं बादरपुढविकाइगादीणं एइंदियसंजुत्ताणं जह० लोगस्स असंखें०। अजह० सव्वलो०। तससंजुत्ताणं जह० अजह० खेत्तभंगो। सव्वबादराणं उज्जो०-बादर०-जस० जह० खेत्तभंगो। अजह० सत्तचों०। सव्वसुहुमाणं सव्वपगदीणं जह० अजह० सव्वलो०। णवरि मणुसाउ० जह० अजह० लोगस्स असंखें० सव्वलो०।

प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम नौबटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा शेष प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात आदिके समय सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका तथा दो आयुओंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। शेष देवोंमें इसीप्रकार अपना-अपना स्पर्शन जानकर वह घटित कर लेना चाहिए। विशेषता न होनेसे उसका अलग-अलग निर्देश नहीं किया है।

४४. एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और सब बादर जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंमें जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका सब जीवोंमें जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगतित्रिकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर कहना चाहिए। इसीप्रकार बादर पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें एकेन्द्रिय संयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। त्रससंयुक्त प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सब बादर जीवोंमें उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. पंचिंदि०-तस०२ सव्वपगदीणं जह० खेँत्तभंगो । अजह० पगदिफोसणं कादव्वं ।

४६. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०—णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक० - तिरिक्ख०--एइंदि०—ओरा०सरीर[1]—हुंड०-वण्ण०४—तिरिक्खाणु०--अगु०४—थावर-पज्जत्त-पत्ते०—थिराथिर-सुभासुभ-दूभग—अणादेँ०-अजस०-णिमि०—णीचा०-पंचंत० जह० अट्ठ० । अजह० लोगस्स असंखेँ० अट्ठचोँ० सव्वलोगो वा । इत्थि०-पुरिस०-[पचिंदि०-] पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०—दोविहा०-तस-सुभग-दोसर—आदेँ० जह० अट्ठ० । अजह० अट्ठ-बारह० । दोआउ०-तिण्णिजादि—आहार०२ जह० अज० खेँत्तभंगो । दोआउ०—मणुस०—मणुसाणु०—आदाव—तित्थ०—उच्चा० जह० अजह०

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रियादि उक्त मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व और अपना-अपना स्पर्शन आदि जानकर सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन मूलमें कहे अनुसार घटित कर लेना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ उसका अलग-अलग स्पष्टीकरण नहीं किया है।

४५. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन प्रकृतिबन्धके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—चार आयुओंका बन्ध मारणान्तिक समुद्घात आदिके समय सम्भव नहीं और शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध भवके प्रथम समयमें अपनी-अपनी योग्य सामग्रीके सद्भावमें होता है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तथा सब प्रकृतियोंका प्रकृतिबन्धके समय जो स्पर्शन प्राप्त होता है, वह यहाँ उनका अजघन्य प्रदेशबन्धकी अपेक्षा बन जाता है, इसलिए उसे प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान जाननेकी सूचना की है।

४६. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीका कुछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर अङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारहबटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका

---

१ ता० आ० प्रत्योः एइंदि० तिण्णिसरीर इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठचों० । दोगदि-दोआणु० जह० खेत्तभंगो । अजह० छचों० । वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० जह० खेत्तभंगो । अजह० बारह० । तेजा०-क० जह० खेत्तभंगो । अजह० लोगस्स असंखे० अट्ठ० सव्वलो० । उज्जो०-बादर०-जस० जह० अट्ठ । अजह० अट्ठ-तेरह० । सुहुम-अपज०साधार० जह० खेत्तभंगो । अजह० लोगस्स असंखे० सव्वलो० ।

स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर अङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तैजसशरीर और कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीका कुछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—उक्त योगोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य प्रदेशबन्ध देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव है, अतः इस अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनका लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। विहारवत्स्वस्थानके समय स्त्रीवेद आदिका भी जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका यह स्पर्शन कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा विहारवत्स्वस्थानके समय तो इन स्त्रीवेद आदिका अजघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है ही। साथ ही नारकियों और देवोंके तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। दो आयु आदिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय भी तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु आदि प्रकृतियोंके दोनों पद सम्भव हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। नरकगतिद्विक और देवगतिद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनका क्रमसे नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके अजघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। वैक्रियिकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. वचि०-असच्च०वचि० पंचणाणावरणादिपढमदंडओ मणजोगिभंगो । णवरि तेजा०-क० सह तेण जहण्णं खेत्तभंगो । अजह० अट्ठ० सव्वलो० । विदिय-दंडओ मणजोगिभंगो । जह० खेत्तभंगो । अजह० अट्ठ-बारह० । तदियदंडओ चउत्थ-दंडओ मणजोगिभंगो । जह० खेत्तभंगो । अजह० अट्ठचों० । [पंचम-छट्ठदंडओ मणजोगिभंगो] । उज्जो०-बादर-जस० जह० खेत्तभंगो । अजह० अट्ठ-तेरह० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० जह० खेत्तभंगो । अजह० लोगस्स असंखे० सव्वलो० । तित्थ०

भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है । तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध देवोंमें और नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । तैजसशरीर और कार्मण शरीरका जघन्य प्रदेशबन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, इसलिए इनके जघन्य पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । तथा स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है । देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय उद्योत आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय और नारकियोंमें व एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है । सूक्ष्म आदिका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुबन्धके समय ही सम्भव है, इसलिए ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है । तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध स्वस्थानके समान एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनका इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है ।

४७. वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डकका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डकको तैजस-शरीर और कार्मणशरीरके साथ कहना चाहिए, इसलिए इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनाली-का कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । द्वितीय दण्डक भी मनोयोगी जीवोंके समान लेना चाहिए । किन्तु इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तृतीय दण्डक और चतुर्थदण्डकका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है । मात्र जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पञ्चम दण्डक और षष्ठ दण्डक मनोयोगी जीवोंके समान है । उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनाली-का कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० अजह० अट्ठचो० ।

४८. ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारग त्ति ओघं । वेउ-व्वियका० सव्वपगदीणं० जह० खेत्तभंगो । अजह० अप्पप्पणो पगदिफोसणं णेदव्वं । दोआउ० जह० अजह० अट्ठचो० । वेउव्वि०मि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० खेत्तभंगो । इत्थि०-पुरिस० जह० खेत्तभंगो । अजह० अप्पप्पणो पगदिफोसणं कादव्वं ।

४९. विभंगे पंचणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिण्णिसरीर-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-पज्जत्त-पत्ते०-थिरादिदोयुग०-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० जह० अट्ठ० । अजह० अट्ठ० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-पंचिंदि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-

---

तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—इन दोनों योगोंमें पाँच ज्ञानावरणादि जिन प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व द्वीन्द्रिय जीवोंके होता है उन सब प्रकृतियोंका जघन्य पदकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है । शेष स्पर्शन मनोयोगी जीवोंके समान ही है ।

४८. औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान ले जाना चाहिए । दो आयुओंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धि संयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है । स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें जघन्यका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए ।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणाओंमें जहाँ जिसके समान स्पर्शन कहा है उसे देख कर वह घटित कर लेना चाहिए ।

४९. विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, तीन शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि दो युगल, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर

---

१ आ० प्रतौ 'संजद० संजदासंजद सामाइ०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदें० जह० अट्ठ० । अजह० अट्ठ-बारह० । दोआउ०-तिण्णिजादि० जह० अज० खेत्तभंगो । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदाव-उच्चागोद० जह० अज० अट्ठचों० । णिरय०-णिरयाणु० जह० खेत्तभंगो । अजह० छचोंद्द० । देवगदि-देवाणु० जह० खेत्तभंगो । अजह० पंचचो० । वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० जह० खेत्तभंगो । अजह० एक्कारह० । उज्जो०-बादर-जस० जह० अट्ठ० । अजह० अट्ठ-तेरह० । सुहुम-अपज्ज०-साधार० जह० खेत्तभंगो । अजह० लोगस्स असंखें० सव्वलो० ।

५०. आभिणि०-सुद०-ओधि० मणुसाउ०[1] जह० अजह० अट्ठचों० । सेसाणं

आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और तीन जातिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रस-नालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति और नरक-गत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेश-बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—मनोयोगी जीवोंमें पहले स्पर्शनका स्पष्टीकरण कर आये हैं। उसीके प्रकाशमें यहाँ भी स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विकका बन्ध करनेवाले जीव यहाँ ऊपर पाँच राजूके भीतर स्पर्शन करते हैं, इसलिए यहाँ देवगतिद्विकका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है और वैक्रियिकद्विकका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है।

५०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यायुका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका

१ ता० आ० प्रत्योः 'मणुसाणु०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह०[1] खेत्तभंगो। अजह० अप्पप्पणो पगदिफोसणं कादव्वं। एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०।

५१. संजदासंजदेसु असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० अजह० छच्चों०। देवाउ०-तित्थ० ज० अजह० खेत्तभंगो। सेसाणं जह० खेत्तभंगो। अजह० छच्चों०।

५२. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। किण्ण०-णील०-काउ० तिरिक्खोघं। णवरि वेउव्वियछक्कं तित्थ० जह० खेत्तभंगो। अजह० पगदिफोसणं कादव्वं। तेउ-पम्म-सुकाए सव्वपगदीणं आउगवज्जाणं च खेत्तभंगो। अजह० अप्पप्पणो पगदिफोसणं कादव्वं। दोआउ० जह० अजह० अट्ठ० सुकाए छच्चों०।

स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियों का जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें विहारवत्स्वस्थानके समय भी मनुष्यायुका दोनों प्रकारका बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ मनुष्यायुका दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५१. संयतासंयत जीवोंमें असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—असातावेदनीय आदिका देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी दोनों प्रकारका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनका दोनों पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनका जघन्य प्रदेशबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इनका जघन्य पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका दोनों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है।

५२. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कपोतलेश्यामें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकषट्क और तीर्थङ्करप्रकृतिका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए। पीतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यामें आयुके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए। दो आयुओंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने पीत और पद्मलेश्यामें त्रसनालीका कुछ कम

---

१ आ० प्रतौ 'अछच्चो० । जह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. उवसम० देवगदिपंचगं आहारदुगं जह० अजह० खेँत्तभंगो। सेसाणं जह खेँत्तभंगो। अजह० अट्ठ०। सासणे सव्वपगदीणं जह० खेँत्तभंगो। अजह० अप्पप्पणो पगदिफोसणं कादव्वं। दोआउ० देवभंगो। सम्मामि० देवगदि०४ जह० अजह० खेँत्तभंगो। सेसाणं जह० अजह० अट्ठचों०।

५४. सण्णीसु सव्वपगदीणं जह० खेँत्तभंगो। अजह० अप्पप्पणो पगदिफोसणं कादव्वं। असण्णीसु सव्वपगदीणं जह० खेँत्तभंगो। अजह०पगदिफोसणं णेदव्वं।

एवं फोसणं समत्तं।

आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका तथा शुक्ललेश्यामें त्रसनालीका कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र अपने-अपने स्पर्शनको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए। जहाँ जो विशेषता कही है, उसे स्वामित्व देखकर जान लेनी चाहिए।

५३. उपशमसम्यक्त्वमें देवगतिपञ्चक और आहारकद्विकका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सासादनसम्यक्त्वमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें देवगति चतुष्कका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंने त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्वमें देवगति चतुष्कका प्रदेशबन्ध भी मनुष्य ही करते हैं, इसलिए देवगतिपञ्चक और आहारकद्विकका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें देवगतिचतुष्कके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहनेका यही कारण है। शेष स्पर्शन स्पष्ट ही है।

५४ संज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए। असंज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—संज्ञी और असंज्ञी इन दोनों मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धका जो स्वामित्व बतलाया है उसे देखते हुए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। तथा सब प्रकृतियोंका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन उनके प्रकृतिबन्धके स्पर्शनके समान होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि प्रकृतिबन्ध जघन्य या अजघन्य प्रदेशबन्धको छोड़कर नहीं हो सकता। उसमें भी जघन्य प्रदेशबन्ध नियत सामग्रीके सद्भावमें ही होता है, अन्यत्र तो अजघन्य प्रदेशबन्ध अधिक सम्भव होनेसे दोनोंका स्पर्शन एक समान जाननेकी सूचना की है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालपरूवणा

५५. कालं दुविहं–जह० उक्क० च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०-ओघे०आदे० । ओघे० पंचणा०–चदुदंस०–सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-आहारदुग-जस०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० उक्कस्सपदेसबंधकालो केव०? जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम० । अणु० पदे० बं० केव० ? सव्वद्धा । सेसाणं सव्वपगदीणं उक्क० पदे० बं० केव० ? जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । अणु० सव्वद्धा । तिण्णिआउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । अणु० पदे० बं० ज० ए०, उक्क० पलि० असंखें० । एवं ओघभंगो पंचिंदि०-तस०२–पंचमण०-पंचवचि०–कायजोगि–ओरालि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०–कोधादि०४–आभिणि०-सुद०-ओधि०–चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-भवसि०–सम्मा०-खइग०–उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति । णवरि विसेसो जाणिय वत्तव्वं । तेसिं ओघभंगो चेव । णवरि इत्थि०-पुरिस० चदुदंस०-चदुसंज०–पुरिस०-आहारदुग–जस०–तित्थ० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जस० । अणु० सव्वदा । सेसाणं उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । अणु० सव्वदा । एवं णवुंस०-कोधादि०३ ।

कालप्ररूपणा

५५ काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, आहारकद्विक, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है । शेष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है । तीन आयुओंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इस प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जिस मार्गणामें जो विशेषता हो उसे जानकर कहना चाहिए । यद्यपि उनमें ओघके समान ही भङ्ग है, फिर भी स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, आहारकद्विक, यशःकीर्ति और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है । शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी और क्रोधादि तीन कषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. णिरएसु सव्वाणं उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० । अणु० सव्वदा । तिरिक्खाउ० उक्क० णाणावरणभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखे० । मणुसाउ० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतोमु० । एवं सत्तसु पुढवीसु ।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध श्रेणिप्रतिपन्न जीव अपनी-अपनी योग्य सामग्रीके सद्भावमें करते हैं और श्रेणि आरोहणका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, इसलिए यहाँ इन पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है; तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एकेन्द्रियादि सब जीव करते हैं। यद्यपि आहारकद्विक और तीर्थङ्करका एकेन्द्रियादि जीवोंके बन्ध नहीं होता, फिर भी इनका भी बन्ध करनेवाले जीव निरन्तर पाये जाते हैं, अतः इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा कहा है। तीन आयुओंको छोड़कर अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो उनका कम-से-कम एक समय तक और अधिक-से-अधिक असंख्यात समय तक उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्भव है, इसलिए उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीन आयुओंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र तीन आयुओंका निरन्तर सर्वदा बन्ध सम्भव नहीं है। हां, इनका एक जीवकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है और शेष प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सर्वदा सम्भव होनेसे वह सर्वदा कहा है। यह ओघप्ररूपणा पञ्चेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें बन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र तीनों वेदवाले और क्रोधादि तीन कषायवाले जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व बदल जाता है, इसलिए इनमें इन दस प्रकृतियोंको शेष प्रकृतियोंके साथ गिना है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५६. नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल ज्ञानावरणके समान है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब पृथिवियोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकी असंख्यात होते हैं। उनमें यह सम्भव है कि सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध एक समय तक हो और द्वितीयादि समयोंमें उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाला एक भी जीव न हो। तथा यह भी सम्भव है कि लगातार नाना जीव सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करते रहें तो असंख्यात समय तक ही कर सकते हैं, इसलिए यहाँ मनुष्यायुके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

५७. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । अणु० सव्वद्धा । चदुण्णमाउगाणं ओघं । एवं सव्वाणं अणंतरासीणं । एसिं असंखेंज्जरासी तेसिं णिरयभंगो । एसिं संखेंज्जरासी तेसिं आहारसरीरभंगो । णवरि एइंदिएसु सव्वविगप्पा सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वदा । दोआउ० ओघं । एवं वणप्फदि–णिगोद–सव्वसुहुमाणं बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदि–पत्ते०अपज्जत्तयाणं च । पुढवि०-आउ०-तेउ०वाउ० तेसीए बादरा तिरिक्खओघं[1] । तेसिं बादरपज्जत्तगाणं पंचिंदियतिरिक्ख०अपज्जत्तभंगो ।

काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनमें मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले अधिकसे अधिक संख्यात जीव ही हो सकते हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। अब रहा अनुत्कृष्टका विचार सो तिर्यञ्चायुका बन्ध एक साथ और लगातार असंख्यात जीव कर सकते हैं और एक जीवकी अपेक्षा इसके अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले नाना जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि असंख्यात अन्तर्मुहूर्तोंके कालका योग पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। तथा मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले संख्यात जीव ही हो सकते हैं, इसलिए इसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । इन दो प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है। सातों पृथिवियोंमें इसी प्रकार काल बन जानेसे उनमें सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है।

५७. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। चार आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सब अनन्त राशियोंमें जानना चाहिए। जिन मार्गणाओंकी असंख्यात राशि है उनमें नारकियोंके समान भङ्ग है, तथा जिन मार्गणाओंकी संख्यात राशि है उनमें आहारकशरीरके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंके सब भेदोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार वनस्पति, निगोद और सब सूक्ष्म जीवोंमें तथा बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और उनके बादरोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। तथा उनके बादर पर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके जो जीव स्वामी बतलाये हैं वे कमसे कम एक समय तक उनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करें, यह भी सम्भव है और लगातार अनेक जीव क्रमसे यदि उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करें, तो असंख्यात समय तक ही कर सकते हैं। इसके बाद नियमसे अन्तर काल आ जाता है, इसलिए इनका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है। चार आयुओंका उत्कृष्ट

१. ता० आ० प्रत्योः 'बादरा ओघं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० दोआउ० जह० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अजह० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखे०। मणुसाउ० जह० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अजह० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे०। णिरयगदि—णिरयाणु० जह० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अजह० सव्वदा। देवगदि०४—आहार०२—तित्थ० जह० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जस०। अजह० सव्वदा। सेसाणं सव्वपगदीणं जह० अजह० सव्वदा। एवं ओघभंगो कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०—असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०—अ भवसि०-मिच्छा०-असण्णि—आहार०—अणाहारग त्ति। णवरि मदि—सुद०—अ भवसि०—मिच्छा०—असण्णि० देवगदि०४ णिरयगदिभंगो।

और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जो काल ओघसे घटित करके बतला आये हैं वह तिर्यञ्चोंमें भी बन जाता है, इसलिए यहाँ उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। आगे अनन्त संख्यावाली अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं, जिनमें ओघ प्ररूपणा नहीं बनती, उनमें तिर्यञ्चोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे उसे इनके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र एकेन्द्रियोंमें और उनके सब भेदोंमें सात कर्मोंके दोनों पदवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए उनमें इनका काल सर्वदा कहा है। वनस्पति आदि आगे और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी एकेन्द्रियोंके समान काल बन जाता है, इसलिए एकेन्द्रियोंके समान जाननेकी सूचना की है। तथा असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओं और बादर पृथिवी कायिक पर्याप्त आदि चारोंमें नारकियोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ यद्यपि पृथिवीकायिक आदिमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है, पर उसका अभिप्राय पूर्वोक्त ही है। शेष कथन सुगम है।

५८ जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे दो आयुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्करका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र-काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें देवगतिचतुष्क का भङ्ग नरकगतिके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. सेसाणं उक्कस्सभंगो। णवरि परिमाणे यम्हि असंखेज्जा रासी तम्हि आवलि० असंखेज्जदिभागो। यम्हि संखेज्जरासी तम्हि संखेज्जसमयं। यम्हि अणंतरासी तम्हि सव्वदा। बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपत्तेयपज्जत्तयाणं च उक्कस्सभंगो। सेसा विगप्पा सव्वदा।

एवं कालं समत्तं।

अंतरपरूवणा

६०. अंतरं दुविहं-जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपदीणं उक्कस्सपदेसबंधंतरं केवचिरं०? जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखे०। अणु० पगदिअंतरं कादव्वं। एस भंगो याव अणाहारग त्ति। णवरि सव्वएइंदियाणं मणुसाउ० ओघं। सेसाणं उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। एवं वणप्फदि-णियोदाणं

विशेषार्थ—नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशबन्ध आयुबन्धके मध्यमें भी हो सकता है, इसलिए इनका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय प्राप्त होनेसे वह एक समय कहा है। पर मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशबन्ध त्रिभागके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इसका अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष काल जैसा उत्कृष्टके समय घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार अपने-अपने स्वामित्वको देखकर यहाँ पर भी घटित कर लेना चाहिए। मत्यज्ञानी आदि चार मार्गणाओंमें देवगतिचतुष्क का भङ्ग नरकगतिके समान कहनेका कारण यह है कि इनमें इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले लगातार असंख्यात जीव सम्भव हैं, इसलिए इनमें इनका जघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण नरकगतिके समान बन जाता है।

५९. शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जिनमें परिमाण असंख्यात है, उनमें जघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है और जिनका परिमाण संख्यात है, उनमें जघन्य प्रदेशबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा जिनका परिमाण अनन्त है, उनमें सर्वदा काल है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है। शेष विकल्पोंमें सर्वदा काल है।

विशेषार्थ—यहाँ स्वामित्व को देखकर मूलमें कहे अनुसार काल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

६० अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कितना अन्तर है? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान करना चाहिए। यह भङ्ग अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सब एकेन्द्रियोंमें मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वसुहुमाणं । पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादराणं पत्तेग० ओघं। तेसिं च बादरअपज्ज०-पत्तेगअपज्ज० एइंदियभंगो ।

६१. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ०-वेउव्वियछक्क-आहारदुग-तित्थ० जह० अजह० उक्कस्सभंगो। सेसाणं जह० अजह० णत्थि अंतरं । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि०-ओरालि०मि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति । सेसाणं अप्पप्पणो उक्कस्संतरं कादव्वं ।

एवं अंतरं समत्तं ।

अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक, निगोद और सब सूक्ष्म जीवोंमें जानना चाहिए । पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इन चारोंके बादर तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इनके बादर अपर्याप्तक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध जिस योगसे होता है, वह एक समयके अन्तर से भी हो सकता है और सब योगस्थानोंके क्रमसे हो जाने पर भी हो सकता है, इसलिए यहाँ ओघसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । तथा इनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर जिस प्रकृतिबन्ध का जो अन्तर है उतना है यह स्पष्ट ही है । इस प्रकार यह अन्तर कथन अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए । किन्तु एकेन्द्रियादि कुछ मार्गणाओंमें फरक है जो अलगसे कहा है ।

६१ जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर उत्कृष्टके समान है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल नहीं है । इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । शेष मार्गणाओंमें अपने-अपने उत्कृष्टके समान अन्तर करना चाहिए ।

विशेषार्थ—तीन आयु आदिका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध यथायोग्य असंख्यात और संख्यात जीव ही करते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्टके समान भङ्ग बन जाता है । पर शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध अनन्त जीव करते हैं, इसलिए इनके दोनों पदोंका अन्तर काल नहीं बननेसे उसका निषेध किया है । यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है । इनके सिवा शेष जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें अपने-अपने उत्कृष्टके समान प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उसे उत्कृष्टके समान जाननेकी सूचना की है ।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावपरूवणा

६२. भावं दुविहं–जहण्णयं उकस्सयं च। उक्क० पगदं। दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्सपदेसबंधग त्ति को भावो? ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

६३. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे०–सव्वपगदीणं जह० अजह० पदेसबंधग त्ति को भावो? ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

एवं भावो समत्तो।

अप्पाबहुगपरूवणा

६४. अप्पाबहुगं दुविहं–सत्थाणप्पाबहुगं चेव परत्थाणप्पाबहुगं चेव। सत्थाणप्पाबहुगं दुविहं–जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० सव्वत्थोवा केवलणाणावरणीयस्स यं पदेसग्गं। मणपज्ज० उक्क० पदे० अणंतगुणं। ओधिणाणा० उक्क० पदे० विसे०। सुद० उक्क० पदे० विसे०। आभिणि० उक्क० पदे० विसे०।

६५. सव्वत्थोवा पयला० उक्क० पदे०। णिद्दाए[1] उक्क० पदे० विसे०।

भावप्ररूपणा

६२. भाव दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कौन भाव है? औदयिक भाव है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए।

६३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध करनेवाले जीवोंका कौन भाव है? औदयिक भाव है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

६४. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थानअल्पबहुत्व और परस्थानअल्पबहुत्व। स्वस्थान अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे केवलज्ञानावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे मनःपर्ययज्ञानावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे अवधिज्ञानावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे श्रुतज्ञानावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

६५. प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष

---

१ आ० प्रतौ 'पदे० विसे०। णिद्दाए' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयलापयला उक्क० पदे० विसे० । णिद्दाणिद्दाए[1] उक्क० पदे विसे० । थीणगिद्धि० उक्क० पदे० विसे० । केवलदं० उक्क० पदे० विसे० । ओधिदं० उक्क० पदे० अणंतगुणं । अचक्खुदं० उक्क० पदे० विसे० । चक्खुदं० उक्क० पदे० विसे० ।

६६. सव्वत्थोवा असाद० उक्क० पदे० । साद० उक्क० पदे० विसे० ।

६७. सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणमाणे उक्क० पदे० । कोधे० उक्क० पदे० विसे० । माया० उक्क० पदे० विसे० । लोभे० उक्क० पदे० विसे० । पच्चक्खाणमाणे उक्क० पदे० विसे० । कोधे० उक्क० पदे० विसे० । माया० उक्क० पदे० विसे० । लोभे० उक्क० पदे० विसे० । अणंताणु०माणे० उक्क० पदे० विसे० । कोधे० उक्क० पदे० विसे० । माया० उक्क० पदे० विसे० । लोभे० उक्क० पदे० विसे० । मिच्छ० उक्क० पदे० विसे० । दुगुं० उक्क० पदे० अणंतगु० । भय० उक्क० पदे० विसे० । हस्स-सोगे उक्क० पदे० विसे० । रदि०-अरदि उक्क० पदे० विसे० । इत्थि०-णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० संखेंज्जगुणं० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० विसे० । माया० उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० ।

अधिक है । उससे प्रचलाप्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्त्यानगृद्धिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

६६. असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

६७. अप्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अप्रत्याख्यानावरणक्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरणमायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रत्याख्यानावरणमानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रत्याख्यानावरणमायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रत्याख्यानावरणलोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अनन्तानुबन्धी मानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अनन्तानुबन्धी मायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अनन्तानुबन्धी लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य-शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति-अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक

---

१ आ० प्रतौ 'विसे० । णिद्दाए' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. चदुण्णं आउगाणं उक्कस्सपदेसग्गं सरिसं० ।

६९. सव्वत्थोवा णिरयगदि-देवगदि० उक्क० पदे० । मणुस० उक्क० पदे० विसे० । तिरिक्ख० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा[1] चदुण्णं जादिणामाणं उक्क० पदे० । एइंदि० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा आहार० उक्क० पदे० । वेउव्वि० उक्क० पदे० विसे० । ओरा० उक्क० पदे० विसे० । तेजा० उक्क० पदे० विसे० । कम्मइ० उक्क० पदे० विसे० । आहार०-तेजाक० उक्क० पदे० विसे० । आहार०-कम्मइ० उक्क० पदे० विसे० । आहार-तेजा०-क० उक्क० पदे० विसे० । वेउव्वि०-तेजाक० उक्क० पदे० विसे० । वेउव्वि०-कम्मइ० उक्क० पदे० विसे० । वेउव्विय०-तेजा०-क० उक्क० पदे० विसे० । ओरालि०-तेजाक० उक्क० पदे० विसे० । ओरालिय-कम्मइ० उक्क० पदे० विसे० । ओरालिय०-तेजा०-क० उक्क० पदे० विसे० । तेजा०-कम्मइ० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा चदुसंठा० उक्क० पदे० । समचदु० उक्क० पदे० विसे० । हुंड० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा आहारंगो० उक्क० पदे० । वेउ०अंगो० उक्क० पदे० विसे० । ओरा०अंगो० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा

है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ।

६८. चार आयुओंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्परमें समान है ।

६९. नरकगति-देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । चार जातियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे एकेन्द्रिय जातिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आहारक—तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आहारक-कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आहारक-तैजस-कार्मण शरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिक-तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिक-कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिक-तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिक-कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे-तैजस-कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । चार संस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे समचतुरस्रसंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हुण्डसंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । पाँच संहननका उत्कृष्ट

---

१ ता० प्रतौ 'णिरयग० । देवगदि० उ० प० मणुस० उ० प० मणुस० उ० प० (?) विसे० । सव्वत्थोवा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसंघ० उक्क० पदे० । असंप० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा णील०उक्क०[1] पदे० । किण्ण० उक्क० पदे० विसे० । रुहिर० उक्क० पदे० विसे० । हालिह० उक्क० पदे० विसे० । सुकिलणामा० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा दुगंधणामाए उक्क० पदे० । सुगंधणामाए उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा[2] कडुक० उक्क० पदे० । तित्थणामा० उक्क० पदे० विसे० । कसिय०[3] उक्क० पदे० विसे० । अंबिल० उक्क० पदे० विसे० । मधुर० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा मउग-लहुगणामाए उक्क० पदे० । कक्कड-गरुगणामाए उक्क० पदे० विसे० । सीद-लुक्खणा[4]० उक्क० पदे० विसे० । णिद्ध-उसुणणा० उक्क० पदे० विसे० । यथा गदी तथा आणुपुव्वी । सव्वत्थोवा परघादुस्सा० उक्क० पदे० । अगुरुगलहुग-उवघाद० उक्क० पदे० विसे० । आदाउज्जो० उक्क० पदे० सरिसं । दोविहा० उक्क० पदे० सरिसं । सव्वत्थोवा तस-पज्जत्त० उक्क० पदे० । थावर०-अपज्ज० उक्क० पदे० विसे० । बादर-सुहुम-पत्ते०-साधार० उक्क० पदे० सरिसं । सव्वत्थोवा थिर-सुभ-सुभग-आदें० उक्क० पदे० । अथिर-असुभ-दूभग-अणादें० उक्क० पदे० विसे० । सुस्सर-दुस्सर० उक्क० पदे० सरिसं० । सव्वत्थोवा अजस० उक्क०

प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । नील नामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे कृष्णनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रुधिरवर्ण नामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हारिद्रवर्ण नामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे शुक्लवर्ण नामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । दुर्गन्धनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे सुगन्धनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । कटुकरसनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे तिक्तरस नामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कषायरसनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अम्लरसनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मधुररसनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । मृदु-लघुस्पर्शनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे कर्कश-गुरुस्पर्शनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे शीत-रूक्षस्पर्शनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्निग्धउष्णस्पर्शनामकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । जिस प्रकार गतियोंका अल्पबहुत्व है, उसी प्रकार आनुपूर्वियोंका अल्पबहुत्व है । परघात और उच्छ्वासका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । अगुरुलघु और उपघातका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । आतप और उद्योतका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्पर समान है । दो विहायोगतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्पर समान है । त्रस और पर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । स्थावर और अपर्याप्त का उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्पर समान है । स्थिर, शुभ, सुभग, और आदेयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । अस्थिर, अशुभ, दुर्भग और अनादेयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । सुस्वर

१. ता० आ० प्रत्योः 'सव्वत्थोवा णिमि० उक्क०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'विसे० विसे० (?) । सव्वत्थोवा' इति पाठः । ३. ता० प्रतौ 'उक्क० [विसे०] । कसिय०' इति पाठः । ४. ता० प्रतौ 'कक्कडगुरुग० णामाए उक्क्वी (उक्क० विसे०) । सीदलुक्खणा०' इति पाठः । ५. ता० प्रतौ 'णिध (द्ध) उसुणा णा०' आ० प्रतौ णीदउसुणणा०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदे० । जस० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० ।

७०. सव्वत्थोवा णीचा० उक्क० पदे० । उच्चा० उक्क० पदे० विसे० ।

७१. सव्वत्थोवा दाणंत० उक्क० पदे० । लाभंत० उक्क० पदे० विसे० । भोगंत० उक्क० पदे० विसे० । परिभोगंत० उक्क० पदे० विसे० । विरियंत० उक्क० पदे० विसे० ।

७२. णिरएसु पंचणा०–णवदंस०–पंचंत० ओघं । सव्वत्थोवा अपच्चक्खाण-माणे उक्क० पदे० । कोधे० उक्क० पदे० विसे० । माया० उक्क० पदे० विसे० । लोभे० उक्क० पदे० विसे० । एवं पच्चक्खाण०४–अणंताणु०४ । मिच्छ०[1] उक्क० पदे० विसे० । भय० उक्क० पदे० अणंतगु० । दुगुं० उक्क० पदे० विसे० । हस्स-सोगे उक्क० पदे० विसे० । रदि-अरदि० उक्क० पदे० विसे० । इत्थि०-णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० विसे० । माणसंज०[2] उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उ० पदे० विसे० । मायाए उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० प० विसे० ।

७३. दोगदी तुल्ला । सव्वत्थोवा ओरा० उक्क० प० । तेजाक० उक्क० पदे०

और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्परमें समान है । अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ।

७०. नीच गोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

७१. दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

७२. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका भङ्ग ओघके समान है । अप्रत्याख्यानावरण मानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । आगे प्रत्याख्यानावरण चतुष्क और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका इसी प्रकार अल्पबहुत्व जानना चाहिए । अनन्तानुबन्धी लोभके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य-शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति-अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मान संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभ संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

७३. दो गतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्परमें तुल्य है । औदारिक शरीरका उत्कृष्ट

---

१. ता० प्रतौ 'एवं पच्चक्खाण०४ अणंताणु०४ मिच्छ०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'उक्क० [विसे०] । माणसंज०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसे० । कम्म० उक्क० पदे० विसे० । संठाण–संघडण-वण्ण०४–दोआणु०[1]-दोविहा०-थिरादिछयुग० तुल्ला । दोआउ०-दोगोदाणं उक्क० पदे० विसे० । एवं सत्तसु पुढवीसु ।

७४. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णामाणं ओघभंगो । णवरि सव्वत्थोवा जस० उक्क० । अज० उक्क० विसे० । एवं सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तगेसु सत्तण्णं क० णिरयभंगो । णवरि मोहे० अण्णदरवेदे उ० प० विसे० । सव्वत्थोवा मणुसग० । तिरि० उ० विसे० । एवं णामाणं ओघं । णवरि सव्वत्थोवा जस० । अज० उ० विसे० । एवं सव्वअपज्जत्तयाणं सव्वएइंदि० पंचकायाणं । मणुसाणं ओघं ।

७५. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णामाणं ओघो । णवरि देवगदि–[2] पाओग्गाओ णादव्वाओ । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति[3] णिरयभंगो । णामाणं वण्ण-गंध-रस-फासाणं ओघं । सरीरं णारग–

प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। छह संस्थान, छह संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति और स्थिर आदि छह युगलका अलग-अलग उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्परमें तुल्य है। दो आयु और दो गोत्रोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए।

७४. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीयकर्ममें अन्यतर वेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इस प्रकार नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, सब एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है।

७५. देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिमें बन्धको प्राप्त होने योग्य प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श इन प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शरीरका भङ्ग

१. ता० प्रतौ 'वण्ण० दोआणु०' इति पाठः। २. आ० प्रतौ 'एवं सत्तसु पुढवीसु। तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो। णामाणं ओघो। णवरि देवगदि' इति पाठः। ३. ता० प्रतौ 'उवरिम केवेज्जात्ति' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो। सेसाणं तुल्ला। अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति णेरइगभंगो। णवरि णामाणं वण्ण-गंध-रस-फासाणं ओघं। सेसाणं तुल्ला।

७६. पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो। ओरालि०मि० सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो। णामाणं ओघं। णवरि सव्वत्थोवा जस० उक्क० पदे०। अजस० उक्क० पदे० विसे०। वेउव्वि०-वेउव्वि०मि० देवोघं।

७७. आहार-आहारमि० पंचणा०-छदंसणा०-दोवेद०-पंचंत० ओघं। सव्वत्थोवा दुगुं० उक्क० पदे०। भय० उक्क० पदे० विसे०[1]। हस्स-सोगे उक्क० पदे० विसे०। रदि-अरदि० उक्क० पदे० विसे०। पुरिस० उक्क० पदे० विसे०। माणसंज० उक्क० पदे० विसे०। कोधसंज० उक्क० पदे० विसे०। मायासंज० उक्क० पदे० विसे०। लोभसंज० उ० पदे० विसे०। वण्ण-गंध-रस-फासाणं तुल्ला०। कम्मइग० सत्तण्णं क० णिरयभंगो। णामाणं ओघभंगो।

७८. इत्थि-पुरिस-णवुंसगवेदेसु छण्णं कम्माणं णिरयभंगो। मोहो ओघो

नारकियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र तुल्य है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नामकर्मकी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र तुल्य है।

७६ पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है।

७७. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, दो वेदनीय और पाँच अन्तरायका भङ्ग ओघके समान है। जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हास्य-शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे रति-अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे माया-संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र परस्परमें तुल्य है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

७८. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें छह कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके

---

१. ता० प्रतौ 'भय० [उ०] विसे०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याव इत्थि० । णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० विसे० । मायासं०-लोभसंज० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । णामाणं ओघं ।

७९. अवगदवेदेसु पंचणा०-पंचंत० ओघं । सव्वत्थोवा केवलदं० उक्क० पदे० । ओधिदं० उक्क० पदे० अणंतगु० । अचक्खु० उक्क० पदे० विसे० । चक्खु० उक्क० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा कोधसंज० उक्क० पदे० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० । मायासंज० उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज०[1] उक्क० पदे० संखेंज्जगु० ।

८०. कोधकसाइसु ओघं । णवरि मोहे जाव इत्थि० । णवुंस० उक्क०[2] पदे० विसे० । माणसं० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । कोधसंज० उ० पदे० विसे० । मायासंज० उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० विसे० ।

८१. माणकसाइसु ओघं । णवरि मोहे याव इत्थि० । णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० ।

समान है । मोहनीय कर्मका भङ्ग स्त्रीवेदके अल्पबहुत्वके प्राप्त होने तक ओघके समान है । स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

७९. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायका भङ्ग ओघके समान है । केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ।

८०. क्रोधकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्ममें स्त्रीवेदका अल्पबहुत्व प्राप्त होनेतक ही ओघके समान भङ्ग जानना चाहिये । स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

८१. मानकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मोहनीयकर्ममें स्त्रीवेदके अल्पबहुत्वके प्राप्त होनेतक ही ओघके समान भङ्ग जानना चाहिए । आगे स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

---

१. ता० प्रतौ 'मायसंज० उ० विसे । * मायसंज० उ० विसे० * [चित्रान्तर्गतपाठः पुनरुक्तः] लोभसंज०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'मोहे जोग [याव] इत्थि० णपुं० उक्क०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मायासंज० उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उ० पदे० विसे० ।

८२. मायाए ओघो । णवरि मोहे याव इत्थि० । णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० विसे० । मायाए उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० पदे० विसे० । लोभक० ओघं ।

८३. मदि[1]-सुद-विभंग०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि० तिरिक्खोघं । णवरि अण्णदरवेदे० विसे० ।

८४. आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं क० ओघभंगो । सव्वत्थोवा मणुसग० उक्क० पदे० । देवग० उक्क० पदे० विसे० । एवं आणु० । सव्वत्थोवा आहार० उक्क० पदे० । ओरा० उक्क० पदे० विसे० । वेउव्वि० उक्क० प० विसे० । तेजाक० उक्क० पदे० विसे० । कम्म० उक्क० प० विसे० । सव्वत्थोवा आहारंगो० उक्क० पदे० । ओरा०अंगो० उक्क० पदे० विसे० । वेउ०अंगो० उक्क० पदे० विसे० । [2]वण्ण-गंध-रस-

उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

८२. मायाकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मोहनीय-कर्ममें स्त्रीवेदके अल्पबहुत्वके प्राप्त होनेतक ही ओघके समान भङ्ग जानना चाहिए। आगे स्त्रीवेदके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रसे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। लोभकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

८३. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें अन्यतर वेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

८४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार आनुपूर्वियोंका अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए। आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे औदारिक शरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। वर्ण,

१. आ० प्रतौ 'विसे० । मदि' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'वेउ०अंगो०-उक्क० विसे० । वेउ०अंगो० उक्क० [?] वण्ण' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फासाणं ओघो[1]। सेसाणं सरिसं पदेसग्गं। एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-उवसम०। मणपज्ज० सत्तण्णं क० ओघं। णामाणं आहारकायजोगिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। संजदासंजद०[2] आहारकायजोगिभंगो सुहुमसंप० चोद्दसण्णं ओघं।

८५. असंजद०-तिण्णिले० सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो। णामाणं तिरिक्खोघं। तेउ-पम्माणं सत्तण्णं क० देवभंगो। णामाणं ओघं। णवरि तेऊए सव्वत्थोवा अप्पसत्थ-विहायगदि[3]-दुस्सर उक्कस्सं०। पसत्थविहायगदि-सुस्सर० उक्कस्स० पदे० विसेसाहियं। पम्माए सव्वत्थोवा दोगदि०। देवगदि० उक्क० पदे० विसे०। एवं आणु०। सव्वत्थोवा आहार० उक्क० पदे०। ओरालि० उक्क० पदे० विसे०। वेउव्वि० उक्क० पदे० विसे०। तेजाक० उक्क० पदे० विसे०। कम्म० उक्क० पदे० विसे०। सव्वत्थोवा पंचसंठा० उक्क० पदे०। समचदु० उक्क० प० विसे०। अंगोवं० सरीरभंगो। सव्वत्थोवा अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० उक्क० पदे०। तप्पडिपक्खाणं उक्क० पदे० विसे०। सुक्काए ओघं। णवरि सव्वत्थोवा मणुसग० उक्क० पदे०। देवग० उक्क० पदे० विसे०। एवं आणु०।

गन्ध, रस और स्पर्शका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका समान प्रदेशाग्र है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग आहारककाययोगी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें चौदह प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

८५. असंयत और कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पीतलेश्यामें अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे प्रशस्त विहायोगति और सुस्वरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। पद्मलेश्यामें दो गतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार आनुपूर्वियोंके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे औदारिक शरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिक शरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। पाँच संस्थानोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे समचतुरस्रसंस्थानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आङ्गोपाङ्गोंका भङ्ग शरीरोंके समान है। अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। शुक्ललेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार आनुपूर्वियोंके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

१. ता० प्रतौ० 'ओघं' इति पाठः। २. 'परिहार० संजदासंजद०' इति पाठः। ३. ता० प्रतौ 'अप्पसत्थवि [हा] यगदि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. वेदगस० सव्वट्ठ०भंगो। णवरि सव्वत्थोवा मणुसगदि० उक्कस्सओ पदेसबंधो। देवगदि० उक्क० पदे० विसे०। एवं आणु०।

८७. सासणसम्मादिट्ठीसु सत्तण्णं कम्माणं मदि०भंगो। णवरि मिच्छ०-णवुंस० वज्ज। णामाणं सव्वत्थोवा तिरिक्खग०-मणुसग० उ० पदे०। देवगदि० उक्क० पदे० विसे०। वण्ण०४ ओघं। सेसं सरिसं।

८८. सम्मामि० सत्तण्णं क० सव्वट्ठ०भंगो। सव्वत्थोवा मणुसग० उक्क० पदे०। [देवगदि० उक्क० विसे०]। एवं आणु०। वण्ण०४ ओघं[1]। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उक्कस्सं समत्तं।

८९. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० णाणावरणीयाणं [दंसणावरणीयाणं] यथा उक्कस्सं सत्थाणअप्पाबहुगं तथा जहण्णं पि कादव्वं। सादासादाणं दोण्णं पि जहण्णयं पदेसग्गं तुल्लं।

९०. सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणमाणे जह० पदे०। कोधे० जह० पदे० विसे०। माया[2]० जह० पदे० विसे०। लोभ० जह० पदे० विसे०। एवं पच्च–

८६. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार आनुपूर्वियोंके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए।

८७. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व और नपुंसकवेद इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर अल्पबहुत्व जानना चाहिए। नामकर्ममें तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। वर्णचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व समान है।

८८. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान है। मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार दो आनुपूर्वियोंके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए। वर्णचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

८९. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीयका जिस प्रकार उत्कृष्ट स्वस्थान अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार जघन्य भी करना चाहिए। सातावेदनीय और असातावेदनीय दोनोंका ही जघन्य प्रदेशाग्र तुल्य है।

९०. अप्रत्याख्यानावरणमानका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य

१. ता० प्रतौ 'एवं। आणु० वण्ण०४ ओघं' इति पाठः। २. ता० प्रतौ 'माणो ज० पदे०। [कोधे०] ज० प० विसे०। माया०' आ० प्रतौ '–माणे जह० पदे०। माया०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खाण०४ । एवं चेव अणंताणु०४ । मिच्छ० जह० पदे० विसे० । दुगुं० जह० पदे० अणंतगु० । भय० जह० प० विसे० । हस्स-सोगे जह० पदे० विसे० । रदि-अरदि० जह० पदे० विसे० । अण्णदरवेदे जह० पदे० विसे० । माणसंज० जह० पदे० विसे० । कोधसंज० जह० पदे० विसे० । मायासंज० जह० पदे० विसे० । लोभसंज० जह० पदे० विसे० ।

९१. सव्वत्थोवा तिरिक्ख-मणुसाऊणं जह० पदे० । णिरय-देवाऊणं जह० पदे० असंखेंज्जगु० ।

९२. सव्वत्थोवा तिरिक्ख० जह० पदे० । मणुस० जह० पदे० विसे० । देवगदि० जह० पदे० असंखेंज्जगु० । णिरय० जह० पदे० असं०गु० । सव्वत्थोवा चदुण्णं जादीणं जह० पदे० । एइंदि० जह० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा ओरा० जह० पदे० । तेजा० जह० पदे० विसे० । कम्म० जह० पदे० विसे० । वेउव्वि० जह० पदे० असं०गु० । आहार० जह० पदे० असं०गु० । छण्णं संठाणाणं जह० पदे० तुल्लं । सव्वत्थोवा ओरा०अंगो० जह० पदे० । वेउव्वि०अंगो० जह० पदे० असं०गु० । आहार०अंगो० जह० पदे० असं०गु० । छण्णं संघडणाणं जह० पदे० तुल्लं० । वण्ण-

---

प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । अनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य प्रदेशाग्रसे मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे भयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य-शोकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति-अरतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर वेदका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है उससे मानसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

९१. तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ।

९२. तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । चार जातियोंका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे एकेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । औदारिक शरीरका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । छह संस्थानोंका जघन्य प्रदेशाग्र तुल्य है । औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे आहारकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । छह संहननोंका जघन्य प्रदेशाग्र परस्परमें तुल्य है । वर्ण, गन्ध,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंध-रस-फासाणं पंचअंतराइगाणं च उक्कस्सभंगो। यथा गदी तथा आणुपुव्वी। सव्वत्थोवा तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेगाणं जह० पदे०। थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० जह० पदे० विसे०। सेसाणं पगदीणं जहण्णयं पदेसग्गं तुल्लं०। णीचुच्चागोद० जह० पदे० तुल्लं०।

९३. णिरयेसु सत्तण्णं क० ओघभंगो। सव्वत्थोवा तिरिक्ख० जह० पदे०। मणुस० जह० पदे० विसे०। एवं आणु०। वण्ण०४ उक्कस्सभंगो। सेसाणं णामाणं जहण्णयं पदेसग्गं तुल्लं०। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए सव्वत्थोवा तिरिक्ख०[1]। मणुस० जह० पदे० असं०गु०। एवं आणु०-दोगोद०।

९४. तिरिक्खेसु ओघभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खाणं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियजोणिणीसु। [णवरि जोणिणीसु] सव्वत्थोवा तिरिक्ख० जह० पदे०। मणुस० जह० पदे० विसे०। णिरय-देवगदि० जह० पदे० असं०गु०। सव्वत्थोवा चदुण्णं जादीणं [जह० पदे०।] एइंदि० जह० पदे० विसे०। सव्वत्थोवा ओरालि० जह[2]० पदे०। तेजा० जह० पदे० विसे०। कम्म० जह० पदे० विसे०। वेउव्वि० जह० पदे० असं०गु०। सव्वत्थो० ओरालि०अंगो० जह० पदे०। वेउ०अंगो० जह०

रस, स्पर्श और पाँच अन्तरायोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। जिस प्रकार चार गतियोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार चार आनुपूर्वियोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशाग्र तुल्य है। तथा नीचगोत्र और उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र परस्परमें तुल्य है।

९३. नारकियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार दोनों आनुपूर्वियोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। वर्णचतुष्कका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशाग्र तुल्य है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार दो आनुपूर्वी और दोनों गोत्रोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

९४. तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे नरकगति और देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। चार जातियोंका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे एकेन्द्रियजातिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक

---

१. आ० प्रतौ 'सव्वद्धा तिरिक्ख' इति पाठः। २. आ० प्रतौ 'पदे०। सव्वत्थोवा जह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदे० असं०गु० । सेसाणं ओघभंगो । पंचिंदि०तिरिक्खअपज्ज० सव्वपगदीणं ओघं । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं च ।

९५. मणुसेसु ओघभंगो । देवाणं णिरयभंगो । एवं भवण-वाणवेंतर-जोदिसिय० । सोधम्मीसाण याव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि दोगदि० सरिसं पदेसग्गं । एवं सव्वदेवाणं ।

९६. पंचिंदि०-तस०२-कायजोगि०-ओरा०-ओरा०मिस्स०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-छल्लेस्सा०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति ओघभंगो । णवरि मदि-सुद०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि० वेउव्वियछक्कं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो ।

९७. पंचमण०-तिण्णिवचि० सत्तण्णं क० णिरयभंगो । सव्वत्थोवा तिरिक्ख०-मणुस० जह० पदे० । देवग० जह० पदे० विसे० । णिरयग०[1] जह० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा वेउ० जह० पदे० । तेजा० जह० पदे० विसे० । कम्म० जह० पदे० विसे० । आहार० जह० पदे० विसे० । ओरा० जह० पदे० विसे० । एवं अंगो० ।

है । उससे वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार सब अपर्याप्तक सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए ।

९५. मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है । देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए । सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि दो गतियोंका सदृश प्रदेशाग्र करना चाहिए । इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए ।

९६. पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, काययोगी, औदारिककाययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छह लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंके समान है ।

९७. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आहारक शरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी

१. ता० प्रतौ 'ज० मिस्से० [विसे०] । णिरय०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसाणं ओघो । दोवचिजोगीसु एवं चेव । णवरि बीइंदिया सामि० । वेउ०-वेउ०मि० देवोघं ।

९८. आहार०-आहार०मि० पंचणा०-छदंस०-पंचंत० ओघं । सव्वत्थोवा साद० जह० पदे० । असाद० जह० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा दुगुं० जह० पदे० । भय० जह० पदे० विसे० । हस्स० जह० पदे० विसे० । रदि० जह० पदे० विसे० । पुरिस० जह० पदे० विसे० । सोग० जह० पदे० विसे० । अरदि० जह० पदे० विसे० । माणसंज जह० प० विसे० । कोधसंज० जह० पदे० विसे० । मायासंज० जह० प० विसे० । लोभसंज० जह० पदे० विसे० । वण्ण०४ ओघभंगो । सव्वत्थोवा थिर-सुभ-जस० जह० पदे० । अथिर-असुभ-अजस० जह० पदे० विसे० । एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० ।

९९. इत्थिवे० पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो । पुरिसवेदे पंचिंदियतिरिक्खभंगो । अवगदवे० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० उक्कस्सभंगो । सव्वत्थोवा माणसंज जह०

प्रकार अङ्गोपाङ्गोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । दो वचनयोगी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि द्वीन्द्रिय जीव स्वामी हैं । वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है ।

९८. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका भङ्ग ओघके समान है । सातावेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे भयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्यका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे शोकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अरतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । वर्णचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए ।

९९. स्त्रीवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंके समान भङ्ग है । पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । मानसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक

१. ता० प्रतौ 'से [साणं ओघो] । दोवचिजोगीसु' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'सामि० (?) वेउ०' इति पाठः । ३. ता० प्रतौ 'ज० प० ।...[अथिरअसुभअ] जस०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदे० । कोधसंज० जह० पदे० विसे० । मायासंज० जह० पदे० विसे० । लोभ-संज० जह० पदे० विसे० ।

१०१. विभंगे सत्तण्णं कम्माणं ओघभंगो। सव्वत्थोवा तिरिक्ख० जह० पदे० । मणुस० जह० पदे० विसे० । णिरयगदि-देवगदि० जह० पदे० विसे० । सव्वत्थोवा ओरालि० जह० पदे० । तेजा० जह० पदे० विसे० । कम्म० जह० पदे० विसे० । वेउ० जह[१]० पदे० विसे० । एवं [वेउ०] अंगोवंग० । आणुपु० गदिभंगो । एवं सेसाणं ओघभंगो ।

१०२. आभिणि-सुद-ओधि० सत्तण्णं कम्माणं ओघभंगो । सव्वत्थोवा मणुसग० जह० पदे० । देवगदि० जह० पदे० विसे० । एवं आणु० । वण्ण०४ ओघभंगो । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम० । सासणे सव्वत्थोवा तिरिक्ख० जह० पदे० । मणुस० जह० पदे० विसे० । देवगदि० जह० असं०गु० । एवं आणु० । सव्वत्थोवा ओरा० जह० पदे० । तेजा० जह० पदे० विसे० । कम्म० जह० पदे० विसे० । वेउ० जह० पदे० असं०गु० । सम्मामि० सत्तण्णं कम्माणं

है । उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

१०१. विभङ्गज्ञानमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे नरकगति और देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार दो आङ्गोपाङ्गोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । आनुपूर्वियोंका भङ्ग चारों गतियोंके समान है । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

१०२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार दो आनुपूर्वियोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । वर्णचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इसी प्रकार तीन आनुपूर्वियोंके जघन्य प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिक शरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ।

---

१. ता० प्रतौ 'कम्म० [जह० पदे० विसे०] । ...[वेउव्वि०] उ० ज०' आ० प्रतौ कम्म० जह० पदे० विसे० । उ० जह० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

णिरयभंगो । सव्वत्थोवा मणुस० जह० पदे० । देवग० जह० पदे० विसे० ।

एवं सत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं ।

१०३. परत्थाणप्पाबहुगं दुविधं–जह० उक० च । उक०पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणमाणे उक० पदेसग्गं । कोधे० उक० पदे० विसे० । माया० उक० पदे० विसे० । लोभे० उक० पदे० विसे० । एवं पच्चक्खाण०४-अणंताणु०४ । मिच्छ०[1] उक० पदे० विसे० । केवलणा० उक० पदे० विसे० । पयला० उक० पदे० विसे० । णिद्दा० उक० पदे० विसे० । पयलापयला०[2] उक० पदे० विसे० । णिद्दाणिद्दा० उक० पदे० विसे० । थीणगिद्धि० उक० पदे० विसे० । केवलदं० उ० पदे० विसे० । आहार० उक० पदे० अणंतगु० । वेउ० उक० पदे० विसे० । ओरा० उक० पदे० विसे० । तेजा० उक० पदे० विसे० । कम्म० उक० पदे० विसे० । णिरयग० उक० संखेंज्जगु० । [देवग० उक० विसे०] । मणुस० उक० पदे० विसे० । तिरिक्ख० उक० पदे० विसे० । अज० उक० पदे० विसे० । दुगुं० उक० पदे० संगु० । भय० उक० पदे० विसे० । हस्स-सोग० उक० पदे० विसे० ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

१०३. परस्थान अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे अप्रत्याख्यानावरण मानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्क और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आगे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे प्रचलाप्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे निद्रानिद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे स्त्यानगृद्धिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे नरकगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हास्य-शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक

---

१. ता–प्रतौ 'पच्चक्खाण०४ । अणंताणु०४ मिच्छ० उ०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'विसे० । पयला०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रदि-अरदि०उक्क० पदे० विसे० । इत्थि०-णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । दाणंत० उक्क० पदे० संखेंॱगु० । लाभंत० उक्क० पदे० विसे० । भोगंत० उक्क० पदे० विसे० । परिभोगंत० उक्क० पदे० विसे० । विरियंत० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० विसे० । मणपज्ज० उक्क० पदे० विसे० । ओधिणा० उक्क० पदे० विसे० । सुदणा० उक्क० पदे० विसे० । आभिणि० उक्क० पदे० विसे० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० । ओधिदं० उक्क० पदे० विसे० । अचक्खु० उक्क० पदे० विसे० । चक्खुदं० उ० विसे० । पुरिस०[1] उक्क० पदे० विसे० । मायासंज० उ० पदे० विसे० । अण्णदरे आउगे उक्क० पदे० विसे० । णीचा० उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० पदे० विसे० । असादा० उ० पदे० विसे० । जस०-उच्चा० उक्क० पदे० विसे० । सादा० उ० पदे० विसे० ।

१०४. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणमाणे उक्क० पदे० । कोधे० उक्क० पदे० विसे० । माया० उ० प० विसे० । लोभ० उ० प० विसे० । एवं मूलोघं याव केवलदंसणावरणीयस्स उक्कस्सपदेसग्गं । ओरा० उक्क० पदे० अणंतगु० । तेजा०

है । उससे रति-अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे नीचगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभ-संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

१०४. आदेशसे नारकियोंमें अप्रत्याख्यानावरण मानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इस प्रकार केवलदर्शनावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । आगे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र

---

१. आ० प्रतौ 'अचक्खु० चक्खु० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० पदे० विसे० । कम्म० उक्क० पदे० विसे० । तिरिक्खग०-मणुसग० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । जस०-अजस० उक्क० पदे० विसे० । दुगुं० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । भय० उक्क० पदे० विसे० । हस्स-सोगे उक्क० पदे० विसे० । रदि-अरदि० उक्क० पदे० विसे० । इत्थि०-णवुंस० उक्क० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० विसे० । माण-संज० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० विसे० । मायासंज० उक्क० पदे० विसे० । लोभसंज० उक्क० पदे० विसे० । दाणंत० उक्क० पदे० विसे० । लाभंत० उक्क० पदे० विसे० । भोगंत० उक्क० पदे० विसे० । परिभोगंत० उक्क० पदे० विसे० । विरियंत० उक्क० पदे० विसे० । मणपज्जे० उक्क० पदे० विसे० । ओधिणा० उक्क० पदे० विसे० । सुद० उक्क० पदे० विसे० । आभिणि० उक्क० पदे० विसे० । ओधिदं० उक्क० पदे० विसे० । अचक्खु० उक्क० पदे० विसे० । चक्खुदं० उक्क० पदे० विसे० । अण्णदरे आउगे० उक्क० पदे० संखेंज्जगु० । अण्णदरे गोदे० उक्क० पदे० विसे० । अण्णदरे वेदणीए० उक्क० पदे० विसे० । एवं सत्तसु पुढवीसु ।

१०५. तिरिक्खेसु मूलोघं याव केवलदंसणावरणीयस्स उक्क० पदे० विसे० ।

अनन्तगुणा है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य और शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति और अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे माया-संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अचक्षु-दर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे अन्यतर गोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर वेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए ।

१०५. तिर्यञ्चोंमें केवलदर्शनावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इस स्थानके

---

१. आ० प्रतौ 'परिभोगंत० उक्क० पदे० विसे० । मणपज०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'अचक्खु० उ० विसे० । अचक्खु० उ० विसे० (?) चक्खुदं०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउ० उक्क० पदे० अणंतगु० । ओरा० उक्क० पदे० विसे० । तेजा० उक्क० पदे० विसे० । कम्म० उक्क० पदे० विसे० । णिरयगदि-देवग० उक्क० पदे० संखेँज्जगु० । मणुस० उक्क० पदे० विसे० । जस० उक्क० पदे० विसे० । तिरिक्ख० उक्क० पदे० विसे० । अजस० उक्क० पदे० विसे० । सेसाणं पगदीणं णिरयभंगो । एवं पंचिंदि०-तिरिक्ख०३ । पंचिंदि०तिरिक्खअपज्जत्त० णिरयभंगो याव कम्मइयसरीर त्ति । मणुस० उक्क० पदे० संखेँज्जगु० । जस० उक्क० पदे० विसे० । तिरिक्ख० उक्क० पदे० विसे० । अजस० उक्क० पदे० विसे० । दुगुं० उक्क० संखेँज्जगु० । भय० उक्क० विसे० । हस्स-सोगे० उक्क० पदे० वि० । रदि-अरदि० उक्क० पदे० विसे० । अण्णदर-वेदे० उक्क० पदे० विसे० । सेसाणं पगदीणं णिरयभंगो । एवं सव्वअपज्जत्तयाणं तसाणं थावराणं च सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं । णवरि मणुसाउ०-मणुस०-मणुसाणु०- उच्चा० चत्तारि एदाणि तेउ०-वाऊणं वज्ज ।

१०६. मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि० मूलोघं । देवेसु णिरयभंगो याव कम्मइयसरीर त्ति । तदो मणुस० उक्क० पदे० संखेँज्जगु० । तिरिक्ख० उक्क० पदे० विसे० । जस०-अजस० दो वि तुल्ला उक्क०

प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । आगे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे नरकगति और देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें कार्मणशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक नारकियोंके समान भङ्ग है । आगे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य और शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति और अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर वेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तक, सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र इन चार प्रकृतियोंको छोड़कर अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

१०६. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है । देवोंमें कार्मणशरीरके उत्कृष्ट प्रदेशाग्रका अल्पबहुत्व प्राप्त होनेतक नारकियोंके समान भङ्ग है । उसके आगे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र दोनोंका परस्पर तुल्य होते हुए भी विशेष अधिक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदे० विसे० । दुगुं० उक्क० पदे० संखेँज्जगु० । सेसाणं णिरयभंगो । एवं भवण०-वाण०-जोदिसि० सोधम्मीसाणेसु । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो । एवं चेव आणद याव णवगेवज्जा त्ति । णवरि विसेसो तिरिक्खगदिचदुण्णं का० ।

१०७. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणमाणे० उक्क० पदे० । कोधे० उक्क० पदे० विसे० । माया० उक्क० पदे० विसे० । लोभे० उक्क० पदे० विसे० । एवं पच्चक्खाण०४ । केवलणा० उक्क० प० विसे० । पयला० उ० प० विसे० । णिद्दा० उ० प० विसे० । केवलदं० उ० प० विसे० । ओरा० उ० प० अणंतगु० । तेजा० उ० प० विसे० । कम्म० उ० प० विसे० । मणुस० उ० प० संखेँज्जगु० । जस०-अजस० उ० प० विसे० । दुगुं० उक्क० पदे० संखेँज्जगु० । भय० उक्क० पदे० विसे० । हस्स-सोगे० उक्क० पदे० विसे० । रदि-अरदि० उ० पदे० विसे० । पुरिस० उक्क० पदे० विसे० । माणसंज० उक्क० पदे० विसे० । कोधसंज० उक्क० पदे० विसे० । मायासं० उक्क० पदे० विसे० । लोभसं० उ० प० विसे० । दाणंत० उ० प० विसे० । लाभंत० उ० प० विसे० । भोगंत० उ० प० विसे० । परिभोगंत० उ० प० विसे० । विरियंत उ० प० विसे० । मणपज्ज० उ०

उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म और ऐशान कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयकतकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिचतुष्कको छोड़कर अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

१०७. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अप्रत्याख्यानावरण मानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका अल्पबहुत्व जानना चाहिए । आगे केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य और शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति और अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प० विसे० । ओधिणा० उ० प० विसे० । सुद० उ० प० विसे० । आभिणि० उ० प० विसे० । ओधिदं० उ० प० विसे० । अचक्खु० उ० प० विसे० । चक्खुदं० उक्क० प० विसे० । मणुसाउ० उ०[1] पदे० संखेंज्जगु० । उच्चा० उक्क० पदे० विसे० । सादासाद० उक्क० पदे० विसे० ।

१०८. ओरालियमि० ओघं याव केवलदंसणावरणीय त्ति उ० प० विसे० । दो आउ० अणंतगु० । वेउव्वि० उ० प० असं०गु० । ओरा० उ० प० विसे० । तेजाक० उ० प० विसे० । क० उ० पदे० विसे० । देवगदि[2]० उ० संखेंज्जगु० । मणुस० उ० प० विसे० । जस० उ० प० विसे० । तिरिक्ख० उ० प० विसे० । अजस० उ० प० विसे० । दुगुं० उ० प० संखेंज्जगु० । भय० उ० प० विसे० । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो ।

१०९. वेउव्वियका० देवोघं । एवं वेउव्वियमिस्सगे वि । णवरि आउ० णत्थि । आहार०-आहारमि० सव्वत्थोवा केवलणा० उक्क० पदे० । पयला० उ० प० विसे० । णिद्दा० उ० प० विसे० । केवलदं० उ० प० विसे० । वेउव्वि० उ० प० अणंतगु० ।

विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यायुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे सातावेदनीय और असातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

१०८. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है–इस स्थानके प्राप्त होनेतक ओघके समान भङ्ग है । आगे दो आयुओंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है ।

१०९. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

---

१. आ० प्रतौ 'मणुसाणु० उ०' इति पाठः । २. आ० प्रतौ 'तेजाक० उ० प० विसे० । देवगदि०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजा० उ० प० विसे० । कम्म० उ० पदे० विसे० । देवग० उ० प० संखेंज्जगु० । जस०-अजस० उ० प० विसे० । दुगुं० उ० प० संखेंज्जगु० । सेसाणं यथा अणुदिस-देवाणं । णवरि यम्हि मणुसाउ० तम्हि देवाउ० भणिदव्वं

११०. कम्मइयकायजोगीसु याव केवलदंसणावरणीयं ताव मूलोघो । वेउ० उ० पदे० अणंतगु० । ओरा० उ० प० विसे० । तेजा० उ० प० विसे० । कम्म० उ० प० विसे० । देवगदि० उ० प० संखेंज्जगु० । मणुस उ० प० विसे० । जस० उ० प० विसे० । तिरिक्ख० उ० प० विसे० । अजस० उ० प० विसे० । दुगुं० उ० प० संखेंज्जगु० । सेसाणं यथा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु तथा णेदव्वं ।

१११. इत्थि-पुरिस-णवुंसगेसु मूलोघं याव इत्थि०-णवुंस० उ० प० विसे० । माणसंज० उ० प० विसे० । कोधसंज० उ० प० विसे० । मायासंज० उ० प० विसे० । लोभसं० उ० प० विसे० । दाणंत० उ० प० विसे० । लाभंत० उ० प० विसे० । भोगंत० उ० प० विसे० । परिभोगंत० उ० प० विसे० । विरियंत० उ० प० विसे० । मणपज्ज० उ० प० विसे० । ओधिणा० उ० प० विसे० । सुद० उ० प०

उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग जिस प्रकार अनुदिशके देवोंके बतलाया है, उस प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहाँपर मनुष्यायु कही है, वहाँपर देवायु कहनी चाहिए ।

११०. कार्मणकाययोगी जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । आगे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । शेष प्रकृतियोंका जिस प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व कहा है, उस प्रकार यहाँ जानना चाहिए ।

१११. स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले और नपुंसकवेदवाले जीवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होनेतक मूलोघके समान भङ्ग है । आगे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसे० । आभिणि० उ० प० विसे० । ओधिदं० उ० प० विसे० । अचक्खु० उ० प० विसे० । चक्खुदं०-पुरिस० उ० प० विसे० । अण्णदरे आउगे० उ० प० विसे० । अण्णदरगोदे जस० उ० प० विसे० । अण्णदरवेदणीए उ० प० विसे० ।

११२. अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा केवलणा० उ० पदे० । केवलदं० उक० पदे० विसे० । दाणंत० उ० प० अणंतगु० । सेसाणं यथासंखं उक० पदे० विसे० । कोधसं० उ० प० विसे० । मणपज्ज० उ० प० विसे० । ओधिणा० उ० प० विसे० । सुद० उ० प० विसे० । आभिणि० उ० प० विसे० । माणसं० उ० प० विसे० । ओधिदं० उ० प० विसे० । अचक्खुदं० उ० प० विसे० । चक्खुदं० उ० प० विसे० । मायासं० उ० प० विसे० । लोभसं० उ० प० संखेज्जगु० । जस०-उचा० उक० प० विसे० । सादा० उ० प० विसे० ।

११३. कोधकसाइसु मूलोघं याव इत्थि० उ० प० विसे० । दाणंत० उ० प० विसे० । लाभंत० उ० प० विसे० । भोगंत० उ० प० विसे० । परिभोगंत० उ० प० विसे० । विरियंत० उ० प० विसे० । मणपज्ज० उ० प० विसे० । ओधिणा०

प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरण और पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर गोत्र और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर वेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

११२. अपगतवेदवाले जीवोंमें केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । शेष अन्तरायकी प्रकृतियोंका क्रमसे उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । आगे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

११३. क्रोधकषायवाले जीवोंमें स्त्रीवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । आगे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ० प० वि० । सुद० उ० वि० । आभिणि० उ० वि० । माणसं० उ० वि० । कोधसं० उ० वि० । मायसं० उ० वि० । लोभसं० उ० वि० । ओघिदं० उ० वि० । अचक्खुदं० उ० वि० । चक्खुदं० उ० वि० । पुरि० उ० वि० । अण्णदरआउ० उ० वि० । अण्णदरे गोदे जस० उ० वि० । अण्णदरे वेदणी० उ० वि० । माणकसाइसु कोधकसाइभंगो याव आभिणि० उ० वि० । कोधसंज० उ० वि० । ओधिदं० उ० वि० । अचक्खु० उ० वि० । चक्खु० उ० वि० । माणसंज० उ० विसे० । मायसंज० उ० विसे० । लोभसंज० उ० वि० । पुरि० उ० वि० । णवरि कोधकसाइभंगो । मायकसाइ० माणकसाइभंगो याव माणसंजल० उ० वि० । पुरि० उ० वि० । मायसंजल० उ० वि० । लोभसं० उ० वि० । अण्णदरे आउगे उ० विसे० । णवरि कोधकसाइभंगो । लोभे मूलोघं ।

११४. मदि-सुद-विभंग० पंचि०तिरि०पज्जत्तभंगो याव अण्णदरवेदणी० उ०

अधिक है। उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मान संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे क्रोधसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर गोत्र और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर वेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। मानकषायवाले जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है इस स्थानके प्राप्त होनेतक क्रोध कषायवाले जीवोंके समान भङ्ग है। आगे क्रोध संज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायवाले जीवोंके समान भङ्ग है। मायाकषायवाले जीवोंमें मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है इस स्थानके प्राप्त होने तक मानकषायवाले जीवोंके समान भङ्ग है। आगे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर आयुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इतनी विशेषता है कि आगे क्रोधकषायवाले जीवोंके समान भङ्ग है। लोभकषायवाले जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है।

११४. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभङ्गज्ञानी जीवोंमें अन्यतर वेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है इस स्थानके प्राप्त होनेतक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० । आभिणि-सुद-ओधि० अणुत्तरविमाणवासियदेवभंगो याव केवलदंसणावरणीयं० त्ति । तदो आहार० उ० अणंतगु० । ओरा० उ० प० विसे० । वेउ० उ० प० विसे० । तेजा० उ० प० विसे० । कम्म० उ० प० विसे० । मणुस० उ० प० संखेंज्जगु० । देवगदि० उ० प० विसे० । अजस० उ० प० विसे० । दुगुं० उ० प० संखेंज्जगु० । भय० उ० प० विसे० । हस्स-सोगे० उ० प० विसे० । रदि-अरदि० उ० प० विसे० । दाणंत० उ० प० संखेंज्जगु० । लाभंत० उ० प० विसे० । भोगंत० उ० प० विसे० । परिभोगंत० उ० प० विसे० । विरियंत उ० प० विसे० । उवरि ओघं । णवरि णिरयाउगं तिरिक्खाउगं णीचा० णत्थि ।

११५. मणपज्ज० सव्वत्थोवा केवलणा० उ० प० । पयला० उ० प० विसे० । णिद्दा० उ० प० विसे० । केवलदं० उ० प० विसे० । आहार० उ० प० अणंतगु० । वेउ० उ० प० विसे० । कम्म० उ० प० विसे० । देवगदि० उ० प० संखेंज्जगु० । अजस० उ० प० विसे० । दुगुं० उ० प० संखेंज्जगु० । उवरि ओधिणाणिभंगो । णवरि मणुसाउ० णत्थि । एवं संजदा० । सामाइ०-छेदो० मणपज्जव-

---

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें केवलदर्शनावरणके अल्पबहुत्वके प्राप्त होनेतक अनुत्तरविमानवासी देवोंके समान भङ्ग है । उससे आगे आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे औदारिक शरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे भयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य और शोकका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति और अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आगेका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि यहाँ नरकायु, तिर्यञ्चायु और नीचगोत्रका बन्ध नहीं होता ।

११५. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे आगे अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायु नहीं है । इसी प्रकार संयत जीवोंमें जानना चाहिए । सामायिकसंयत और

---

१. ता० प्रतौ 'एवं संजदा० सामा०' इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

भंगो याव रदि-अरदि० उ० प० विसे०। दाणंत० उ० प० विसे०। उवरिं माणकसाइ-भंगो याव माणसंज० उ० प० विसे०। पुरिस० उ० प० विसे०। मायासंज० उ० प० विसे०। देवाउ० उ० प० विसे०। उच्चा०-जस० उ० प० विसे०। लोभसं० उ० प० विसे०। अण्णदरवेदणी० उ० प० विसे०।

११६. परिहारे० सव्वत्थोवा केवलणा० उ० पदे०। पयला० उ० प० विसे०। णिद्दा० उ० प० विसे०। केवलदं उ० प० विसे०। आहार० उ० प० अणंतगु०। वेउ० उ० प० विसे०। तेजा० उ० प० विसे०। कम्म० उ० प० विसे०। उवरि आहारकायजोगिभंगो।

११७. सुहुमसंप० सव्वत्थोवा केवलणा० उ० पदे०। केवलदं० उ० प० विसे०। दाणंत० उ० प० अणंतगु०। लाभंत० उ० प० विसे०। भोगंत० उ० प० विसे०। परिभोगंत० उ० प० विसे०। विरियंत० उ० प० विसे०। मणपज्जव० उ० प० विसे०। ओधिणा० उ० प० विसे०। सुद० उ० प० विसे०। आभिणि० उ० प० विसे०। ओधिदं उ० प० विसे०। अचक्खु० उ० प० विसे०। चक्खु० उ०

छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें रति और अरतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होनेतक मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। आगे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आगे मानसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होनेतक मानकषायवाले जीवोंके समान भङ्ग है। आगे पुरुषवेदका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे देवायुका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे उच्चगोत्र और यशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर वेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

११६. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उसके आगे आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

११७. सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे दानान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे लाभान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे भोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे परिभोगान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे श्रुतज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अचक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे

१. ता० प्रतौ 'मणपजवभंगो। याव' इति पाठः। २. ता० प्रतौ 'भंगो। याव' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प० विसे० । जस०-उच्चा० उ० प० संखेँज्जगु० । सादा० उक्क० प० विसे० ।

११८. संजदासंजदेसु सव्वत्थोवा पच्चक्खाणमाणे० उ० पदे० । कोधे० उ० प० विसे० । माया० उ० प० विसे० । लोभे० उ० प० विसे० । केवलणा० उ० प० विसे० । पयला० उ० प० विसे० । णिद्दा० उ० प० विसे० । केवलदं० उ० प० विसे० । वेउ० उ० प० अणंतगु० । उवरिं आहारकायजोगिभंगो ।

११९. असंजदेसु पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो । चक्खुदं०-अचक्खुदं० ओघो । ओधिदं० ओधिणाणिभंगो । किण्ण-णील-काऊणं असंजदभंगो । तेऊए ओघं याव केवलदंसणावरणीय[1] त्ति । तदो आहार० उ० प० अणंतगु० । वेउ० उ० प० विसे० । ओरा० उ० प० विसे० । तेजा० उ० प० विसे० । कम्म० उ० प० विसे० । मणुस० उ० प० संखेँज्जगु० । देवग० उ० प० विसे० । तिरिक्ख० उ० प० विसे० । जस०-अजस० उ० प० विसे० । उवरिं आहारकायजोगिभंगो । णवरि तिरिक्खाउ०-मणुसाउ० अत्थि[2] ।

चक्षुदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे सातावेदनीयका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

११८. संयतासंयत जीवोंमें प्रत्याख्यानावरण मानका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलज्ञानावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रचलाका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्राका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलदर्शनावरणका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे आगे आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

११९. असंयत जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है । चक्षुदर्शनवाले और अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अवधिदर्शनवाले जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें असंयतोंके समान भङ्ग है । पीतलेश्यावाले जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होनेतक ओघके समान भङ्ग है । उससे आगे आहारकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आगे आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि यहाँपर तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु हैं । अर्थात् आहारक काययोगमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बन्ध नहीं था, किन्तु पीतलेश्यामें इन दोनों आयुओंका बन्ध होता है ।

---

१ ता०आ०प्रत्योः 'केवलणाणावरणीय' इति पाठः । २ ता०आ०प्रत्योः 'णवरि णिरयाउ तिरिक्खाउ० णत्थि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२०. पम्माए तेउ०भंगो। णवरि आहारसरीरादो ओरा० उ० प० विसे०। वेउ० उ० प० विसे०। तेजा० उ० प० विसे०। कम्म० उ० प० विसे०। तिरिक्ख-मणुसगदि० दो वि सरिसा संखेंज्जगु०। देवग० उ० प० विसे०। एवं सुक्काए याव कम्मइगसरीर त्ति। तदो मणुसग० उक्क० पदे० संखेंज्जगु०। देवग० उ० प० विसे०। अजस० उ० प० विसे०। उवरि ओघो।

१२१. सासणे ओघं याव केवलदंस०। णवरि मिच्छ० णत्थि। तदो ओरा० उ० प० अणंतगु०। वेउ० उ० प० विसे०। तेजा० उ० प० विसे०। कम्म० उ० प० विसे०। तिरिक्ख-मणुसग० उ० प० संखेंज्जगु०। देवग० उ० प० विसे०।। जस०-अजस० उ० प० विसे०। दुगुं० उ० प० संखेंज्जगु०। उवरि मदि०भंगो। णवरि णवुंस० णत्थि।

१२२. सम्मामि० वेदगभंगो। णवरि आउ० आहार० णत्थि। मिच्छा०-असण्णि० मदि०भंगो। सण्णि०-आहार० मूलोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उक्कस्सपरत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं।

---

१२०. पद्मलेश्यामें पीतलेश्याके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकशरीरसे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति इन दोनोंका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र आपसमें समान होकर संख्यातगुणा है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। शुक्ललेश्यामें कार्मणशरीरका अल्पबहुत्व प्राप्त होनेतक इसीप्रकार जानना चाहिए। उससे आगे मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आगे ओघके समान भङ्ग है।

१२१. सासादनसम्यक्त्वमें केवलदर्शनावरणका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वप्रकृति नहीं है। आगे औदारिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे वैक्रियिकशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे देवगतिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे आगे मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेद नहीं है।

१२२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आयु और आहारकशरीर नहीं है। मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी और आहारक जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सव्वत्थोवा अपच्च-क्खाणमाणे जहण्णयं पदेसग्गं । कोध० ज० प० विसे० । माया ज० प० विसे० । लोभे० जह० प० विसे० । एवं पच्चक्खाण०४–अणंताणु०४ । मिच्छ०[2] ज० प० विसे० । केवलणा० ज० प० विसे० । पयला० ज० प० विसे० । णिद्दा० ज० प० विसे० । पयलापयला० जह० प० विसे० । णिद्दाणिद्दा० ज प० विसे० । थीणगि० ज० प० विसे० । केवलदं० ज० प० विसे० । ओरा० ज० प० अणंतगु० । तेजा० ज० प० विसे० । कम्म० ज० प० विसे० । तिरिक्ख० ज० प० संखेंज्जगु० । जस-अजस० ज० प० विसे० । मणुस० ज० प० विसे० । दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु० । भय० ज० प० विसे० । हस्स-सोग० ज० प० विसे० । रदि-अरदि० ज० प० विसे० । अण्णदरवेद० ज० प० विसे० । माणसंज० ज० प० विसे० । कोधसं० ज० प० विसे० । मायासं० ज० प० विसे० । लोभसं० ज० प० विसे० । दाणंत० ज० प० विसे० । लाभंत० ज० प० विसे० । भोगंत० ज० प० विसे० । परिभोगंत० ज० प० विसे० । विरियंत० ज०

१२३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश । ओघसे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चतुष्क और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मुख्यतासे अल्पबहुत्व जानना चाहिए । आगे मिथ्यात्वका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रचलाका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्राका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे प्रचलाप्रचलाका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे निद्रानिद्राका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे स्त्यानगृद्धिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे केवलदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे भयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे हास्य और शोकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे रति और अरतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर वेदका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मानसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दानान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे लाभान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे भोगान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष

१. ता०प्रतौ 'कोह [ध०] ज०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'अणंताणु०४ मिच्छ०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प० विसे० । मणपज्ज० ज० प० विसे० । ओधिणा० ज० प० विसे० । सुदणा० ज० प० विसे० । आभिणि० ज० प० विसे० । ओधिदं० ज० प० विसे० । अचक्खुदं० ज० प० वि० । चक्खुदं० ज० प० विसे० । अण्णदरगोदे ज० प० संखेंज्जगु० । अण्णदरवेदणी० ज० प० विसे० । वेउव्वि० ज० प० असंखेंज्जगु० । देवगदि० ज० प० संखेंज्जगु० । तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० असंखेज्जगु० । णिरयगदि० ज० प० असंखेज्जगु० । णिरय-देवाऊणं ज० प० संखेंज्जगु० । आहार० जह० पदे० असंखेंज्जगुणं ।

१२४. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु मूलोघं याव अण्णदरवेदणी० ज० प० विसे० । तदो तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० असंखेंज्जगु० । एवं छसु पुढवीसु । सत्तमाए मूलोघो याव कम्मइ० ज० प० विसे० । तदो तिरिक्ख० ज० प० संखेंज्जगु० । जस-अजस० ज० प० विसे० । उवरि ओघो । णवरि याव चक्खुदं० ज० प० विसे० । णीचा० ज० प० संखेंज्जगु० । अण्णदरवेदणी० ज० प० विसे० । मणुसग० ज० प० असंखेंज्जगु० । तिरिक्खाउ० ज० प० संखेंज्जगु० । उच्चा ज० प० विसे० ।

१२५. तिरिक्खेसु मूलोघो । णवरि आहार० णत्थि । एवं पंचिंदियतिरिक्ख० ।

अधिक है । उससे परिभोगान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वीर्यान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे श्रुतज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अवधिदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अचक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे चक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर गोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिक शरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे आहारक शरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है ।

१२४. आदेशसे नरकगतिकी अपेक्षा नारकियोंमें अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । उससे आगे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । इसी प्रकार प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए । सातवींमें कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । उससे आगे तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । आगे ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि यह अल्पबहुत्व चक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान जानना चाहिए । उससे आगे नीच गोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे तिर्यञ्चायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है ।

१२५. तिर्यञ्चोंमें मूलोघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि आहारकशरीर नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियतिरिक्खपज्ज० मूलोघं[1] याव देवगदि० ज० प० संखेंज्जगु० । णिरयग० ज० प० असं०गु० । अण्णदरे आउ० ज० प० संखेंज्जगु० । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मूलोघं याव वेउ० ज० प० असं०गु० । तदो णिरयग०-देवग० ज० प० संखेंज्जगु० । अण्णदरे आउ० ज० प० संखेंज्जगु० । सव्वअपज्जत्तयाणं च सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं णिरयभंगो । णवरि तेउ-वाऊणं मणुसगदिचदुक्कं वज्ज ।

१२६. मणुसेसु ओघो याव तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० असं०गु० । तदो आहार० ज० प० असं०गु० । णिरयगदि० ज० प० संखेंज्जगु० । णिरय-देवाऊणं ज० प० संखेंज्जगु० । मणुसपज्जत्तेसु एसेव भंगो याव देवगदि० ज० प० । तदो आहार० ज० प० असं०गु० । णिरय० जह० प० संखेंज्जगु० । अण्णदरे आउ० ज० पदे० संखेंज्जगु० । मणुसिणीसु[2] एसेव भंगो याव सादासादादीणं[3] ज० प० विसे० । तदो वेउ० ज० प० असंखेंज्जगु० । आहार० ज० प० विसे० । देवगदि० ज० प० संखेंज्जगु० । णिरयगदि० ज० प० विसे० । अण्णदरे आउगे० ज० प० संखेंज्जगु० ।

है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है । उससे आगे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे अन्यतर आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें वैक्रियकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भंग है । उससे आगे नरकगति और देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे अन्यतर आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । सब अपर्याप्तक, सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगति चतुष्कको छोड़कर अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

१२६. मनुष्योंमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान भङ्ग है । उससे आगे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । मनुष्यपर्याप्तकोंमें देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र सम्बन्धी अल्पबहुत्वके प्राप्त होने तक यही भङ्ग है । उससे आगे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे अन्यतर आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । मनुष्यिनियोंमें सातावेदनीय और असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है-इस स्थानके प्राप्त होने तक यही भङ्ग है । उससे आगे वैक्रियकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अन्यतर आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ।

१. ता० प्रतौ 'एव पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचि० तिरिक्ख-पज्ज० मूलोघं' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'णिरय० ज० संखेज्जगु० । म [णु] सिणीसु' इति पाठः । ३. ता० प्रतौ 'याव स [सा] दास [सा] दादीणं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२७. देवेसु भवण०-वाण०-जोदिसि० पढमपुढविभंगो। सोधम्मीसाणादि याव सहस्सार त्ति णेरइगभंगो याव कम्मइगसरीर त्ति। तदो तिरिक्ख-मणुसगदि० जह० प० संखेंज्जगु०। जस०-अजस० ज० प० विसे०। सेसाणं णिरयभंगो। आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति एसेव भंगो। णवरि तिरिक्खाउचदुक्कं णत्थि।

१२८. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणमाणे ज० पदे०। कोधे० ज० प० विसे०। माया० ज० प० विसे०। लोभे० ज० प० विसे०। एवं पच्चक्खाण०४। केवलणा० ज० प० वि०। पयला० ज० प० विसे०। णिद्दा० ज० प० विसे०। केवलदं० ज० प० विसे०। ओरा० ज० प० अणंतगु०। तेजा० ज० प० विसे०। कम्म० ज० प० विसे०। मणुस० ज० प० संखेंज्जगु०। जस०-अजस० ज० प० विसे०। दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु०। भय० ज० प० विसे०। हस्स-सोगे० ज० प० विसे०। रदि-अरदि० ज० प० विसे०। पुरिस० ज० प० विसे०। सेसाणं णेरइगभंगो।

१२९. पंचिंदिएसु मूलोघो। पंचिंदियपज्जत्तगेसु वि मूलोघो याव सादासादा त्ति। तदो वेउ० ज० प० असं०गु०। देवगदि० ज० प० संखेंज्जगु०। णिरय-

१२७. सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें कार्मणशरीरसम्बन्धी अल्पबहुत्वके प्राप्त होनेतक नारकियोंके समान भङ्ग है। उससे आगे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। आनत कल्पसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके देवोंमें यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि यहाँ तिर्यञ्चगतिचतुष्क नहीं है।

१२८. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए। उससे आगे केवलज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे प्रचलाका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे निद्राका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे केवलदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे भयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हास्य और शोकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे रति और अरतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आगे शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है।

१२९. पञ्चेन्द्रियोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें भी सातावेदनीय और असातावेदनीयकी अपेक्षा अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है। उससे आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गदि० ज० प० असंखेंज्जगु० । अण्णदरे आउ० ज० प० संखेंज्जगु० । आहार० ज० प० असं०गु० ।

१३०. तस-तसपज्जत्तयाणं मूलोघो । पंचमण०-तिण्णिवचि० मूलोघं याव केवलदंसणावरणीयं[1] त्ति । तदो वेउ० ज० प० अणंतगु० । आहार० ज० प० विसे० । तेजा० ज० प० विसे० । कम्म० ज० पदे० विसे० । ओरालि० ज० प० विसे० । तिरिक्ख०-[मणुस०] ज० प० संखेंज्जगु० । जस०-अजस० ज० प० विसे० । देवग० ज० प० विसे० । णिरय० ज० प० विसे० । दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु० । भय० ज० प० विसे० । हस्स-सोगे० ज० प० विसे० । रदि-अरदि० ज० प० विसे० । अण्णदरवेद० ज० प० विसे० । माणसं० ज० प० विसे० । कोधसं० ज० प० विसे० । मायासं० ज० प० विसे० । लोभसं० ज० प० विसे० । दाणंत० ज० प० विसे० । लाभंत० ज० प० विसे० । भोगंत० ज० प० विसे० । परिभोगंत० ज० प० विसे० । विरियंत० ज० प० विसे० । मणपज्ज० ज० प० विसे० । ओधिणा० ज० प० विसे० । सुदणा० ज० प० विसे० । आभिणि० ज० प० विसे० । ओधिदं० ज० प० विसे० ।

वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे अन्यतर आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है।

१३०. त्रस और त्रस पर्याप्तकोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयकी अपेक्षा अल्पबहुत्वके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है। उससे आगे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे भयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हास्य और शोकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे रति और अरतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मानसंज्वलनका जघन्य-प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे दानान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लाभान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे भोगान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे परिभोगान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वीर्यान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे श्रुतज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

१. ता०आ०प्रत्योः 'केवलणाणावरणीय त्ति' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचक्खुदं० ज० प० वि०। चक्खुदं० ज० प० विसे०। अण्णदरे आउ० ज० प० संखेंज्जगु०। अण्णदरगोद० ज० प० विसे०। अण्णदरवेदणी० ज० प० विसे०।

१३१. वचि०-असच्चमोसवचिजोगीसु ओघो याव चक्खुदं० ज० प० विसे०। तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० संखेंज्जगु०। अण्णदरे गोद० ज० प० विसे०। अण्णदरे वेदणी० ज० प० विसे०। वेउव्वि० ज० प० [असंखेंज्जगु०। देवगादि० ज० प०] असंखेंज्जगु०[1]। णिरयगदि० ज० प० संखेंज्जगुणं। णिरय-देवाऊणं ज० प० संखेंज्जगुणं। आहार० ज० प० असं०गु०। एवं ओरालि०। कायजोगि० ओघं।

१३२. ओरालियमिस्से मूलोघो याव अण्णदरवेदणी० ज० प० विसे०। तदो वेउ० ज० प० असं०गु०। देवगदि ज० प० संखेंज्जगु०। तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० असं०गु०। वेउव्वियकायजो० सोधम्मभंगो याव चक्खुदं० ज० प० विसे०। तदो तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० संखेंज्जगु०। अण्णदरे गोद० ज० प० विसे०। अण्णदर-वेदणी० ज० प० विसे०। वेउव्वियमिस्स० एवं चेव। आउ० णत्थि।

उससे अवधिदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अचक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे चक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे अन्यतर गोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

१३१. वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें चक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है-इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान भङ्ग है। उससे आगे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे अन्यतर गोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे नरकगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। काययोगी जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है।

१३२. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है-इस स्थान के प्राप्त होनेतक मूलोघके समान भङ्ग है। उससे आगे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें चक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है—इस स्थानके प्राप्त होने तक सौधर्मकल्पके समान भङ्ग है। उससे आगे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे अन्यतर गोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्म नहीं है।

१. आ०प्रतौ 'वेउव्वि० ज० प० एवं चेव। आउ० असंखेज्जगु०।' इति पाठः।

१३३. आहार०-आहारमि० सव्वत्थोवा केवलणा० ज० प०। पयला० ज० प० विसे०। णिद्दा० ज० प० विसे०। केवलदं० ज० प० विसे०। वेउ० ज० प० अणंतगु०। तेजा० ज० प० विसे०। कम्म० ज० प० विसे०। देवग० ज० प० संखेंज्जगु०। जस० ज० प० विसे०। अजस० ज० प० विसे०। दुगुं० ज०पदे० संखेंज्जगु०। भय० ज० प० विसे०। हस्स० ज० प० विसे०। रदि० ज० प० विसे०। पुरिस० ज० प० विसे०। सोग० ज० प० विसे०। अरदि० ज० प० विसे०। माणसं० ज० प० विसे०। कोधसंज० ज० प० विसे०। मायासं० ज० प० विसे०। लोभसं० ज० प० विसे०। उवरि सव्वट्ठभंगो याव साद त्ति। तदो असाद० ज० प० विसे०। कम्मइग० ओरा०मि०भंगो। णवरि आउ० णत्थि।

१३४. इत्थिवेदे पंचिंदियतिरिक्खजोणिणिभंगो। णवरि अवसाणे आहार० ज० प० असं०गु० भाणिदव्वं। पुरिसवेदे पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो। णवरि अवसाणे आहार० ज० प० असं०गु०। णवुंसगे मूलोघो याव अण्णदरवेदणीय० ज० प० विसे०। तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० प० असं०गु०। वेउ० ज० प० असं०गु०।

---

१३३. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें केवलज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे प्रचलाका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे निद्राका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे केवलदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे भयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे हास्यका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे रतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे शोकका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अरतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मानसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। आगे सातावेदनीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होनेतक सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। उससे असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्म नहीं है।

१३४. स्त्रीवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अन्तमें आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा कहना चाहिए। पुरुषवेदी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अन्त में आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। नपुंसकवेदी जीवोंमें अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है-इस स्थान के प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है। उससे आगे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

णिरय-देवग० ज० प० संखेँज्जगु० । णिरय-देवाउ० ज० प० संखेँज्जगु० । आहार० ज० प० असं०गु० ।

१३५. अवगदवे० सव्वत्थोवा केवलणा० ज० प० । केवलदं० ज० पदे० विसे० । दाणंत० ज० प० अणंतगु० । लाभंत० ज० प० विसे० । भोगंत० ज० प० विसे० । परिभोगंत० ज० प० विसे० । विरियंत० ज० प० विसे० । मणपज्ज० ज० प० विसे० । ओधिणा० ज० प० विसे० । सुदणा० ज० प० विसे० । आभिणि० ज० प० विसे० । माणसंज० ज० प० विसे० । कोधसंज० ज० प० विसे० । मायासंज० ज० प० विसे० । लोभसंज० ज० प० विसे० । ओधिदं० ज० प० विसे० । अचक्खुदं० ज० प० विसे० । चक्खुदं० ज० प० विसे० । जस०-उच्चा० ज० प० संखेँज्जगु० । सादा० ज० प० विसे० ।

१३६. कोधादि०४ ओघं । मदि-सुद० णवुंसगभंगो० । णवरि आहारस० णत्थि । विभंगे मूलोघो याव केवलदंसणावरणीय त्ति । तदो ओरा० ज० प० अणंतगु० । तेजा० ज० प० विसे० । कम्म० ज० प० विसे० । वेउ० ज० प० विसे० । तिरिक्ख०

असंख्यातगुणा है। उससे नरकगति और देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे नरकायु और देवायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है।

१३५. अपगतवेदी जीवोंमें केवलज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे थोड़ा है। उससे केवलदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे दानान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे लाभान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे भोगान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे परिभोगान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वीर्यान्तरायका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनःपर्ययज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे श्रुतज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आभिनिबोधिकज्ञानावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मानसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मायासंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे लोभसंज्वलनका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अवधिदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अचक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे चक्षुदर्शनावरणका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे सातावेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

१३६. कोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें नपुंसकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें आहारकशरीर नहीं है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयके अल्पबहुत्वके प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है। उससे आगे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० प० संखेंज्जगु० । जस०-अजस० ज० प० वि० । मणुस० ज० प० वि० । णिरय-देवग० ज० प० वि० । दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु० । उवरिमणजोगिभंगो[1] ।

१३७. आभिणि-सुद-ओधि० उक्कस्सभंगो याव केवलदंसणावरणीय त्ति । तदो ओरा० ज० प० अणंतगु० । तेजा ज० प० विसे० । कम्मइ० ज० प० विसे० । वेउ० ज० प० विसे० । मणुस० ज० प० संखेंज्जगु० । जस०-अजस० ज० प० विसे० । दोगदि० ज० प० विसे० । दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु० । उवरि याव अणुदिस विमाणवासियदेवभंगो याव सादासादा० त्ति । तदो आहार० ज० प० असं०गु० । दो आउ० ज० प० संखेंज्जगु० ।

१३८. मणपज्जवणाणीसु उक्कस्सभंगो याव केवलदंसणावरणीय[2] त्ति । तदो वेउ० ज० प० अणंतगु० । आहार० ज० प० विसे० । तेजा० ज० प० विसे० । कम्म० ज० प० विसे० । देवगदि ज० प० संखेंज्जगु० । जस० ज० प० वि० । अजस० ज० प० विसे० । दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु० । उवरिं आहारकायजोगिभंगो । एवं संजद-

संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे नरकगति और देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे आगे मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

१३७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक उत्कृष्टके समान भङ्ग है । उससे आगे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे दो गतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे आगे सातावेदनीय और असातावेदनीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक अनुदिशविमानवासी देवोंके समान भङ्ग है । उससे आगे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है । उससे दो आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है ।

१३८. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक उत्कृष्टके समान भङ्ग है । उससे आगे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है । उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । उससे आगे आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदो-

१ ता०प्रतौ 'उवरिम जोगिभंगो' आ०प्रतौ 'उवरिमजोगिभंगो' इति पाठः । २ ता०आ०प्रत्योः 'केवलणाणावरणीय' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाइ०-छेदो०-परिहार० मणपज्जवभंगो। सुहुमसं० उक्कस्सभंगो।

१३६. संजदासंजदेसु उक्कस्सभंगो याव देवगदि० ज० प० संखेंज्जगु०। जस० ज० प० वि०। अजस० ज० प० विसे०। उवरिं आहारकायजोगिभंगो। असंजदेसु मूलोघं। णवरि आहार० णत्थि।

१४०. चक्खुदं०-अचक्खुदं० ओघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो। किण्ण-णील-काऊणं असंजदभंगो। तेउ-पम्माणं मूलोघं याव केवलदंसणावरण त्ति। तदो ओरालि० ज० प० अणंतगु०। तेजा० ज० प० विसे०। कम्म० ज० प० विसे०। वेउ० ज० प० विसे०। तिरिक्ख-मणुसगदि० ज० प० संखेंज्जगु०। जस०-अजस० ज० प० विसे०। देवगदि० ज० प० वि०। दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु०। उवरिं ओघं याव सादासादा० त्ति ज० प० वि०। तदो आहार० ज० प० असं०गु०। तिरिक्ख-मणुस-देवाऊणं ज० प० संखेंज्जगु०। सुक्कलेस्सिगेसु एवं चेव। णवरि तिरिक्खगदि०४ वज्ज।

१४१. भवसि० ओघं। अब्भवसि० मदि०भंगो। सम्मा०-खइग०-वेदग० आभिणि०भंगो। उवसमसम्मा० ओधि०भंगो याव केवलदंसणावरणीय त्ति। तदो

पस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

१३६. संयतासंयत जीवोंमें देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है–इस स्थानके प्राप्त होने तक उत्कृष्टके समान भङ्ग है। उससे आगे यशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आगे आहारककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। असंयत जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकशरीर नहीं है।

१४०. चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनी जीवों में अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें असंयत जीवोंके समान भङ्ग है। पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें केवलदर्शनावरणका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक मूलोघके समान भङ्ग है। उससे आगे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे आगे सातावेदनीय और असातावेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है–इस स्थानके प्राप्त होने तक ओघके समान भङ्ग है। उससे आगे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिचतुष्कको छोड़कर कहना चाहिए।

१४१. भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्य जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक अवधि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरा० ज० प० अणंतगुणं। तेजा० ज० प० विसे०। कम्म० ज० प० विसे०। मणुसग० ज० प० संखेंज्जगु०। जस०-अजस० ज० प० विसे०। उवरिं ओधि०भंगो याव सादासादा० त्ति। तदो वेउ० ज० प० असं०गु०। आहार० ज० प० विसे०। देवग० ज० प० संखेंज्जगु०।

१४२. सासणे उक्कस्सभंगो याव केवलदं०। तदो ओरा० ज० प० अणंतगु०। तेजा० ज० प० विसे०। कम्म० ज० प० विसे०। तिरिक्ख० ज० प० संखेंज्जगु०। जस०-अजस० ज० प० विसे०। मणुस० ज० प० विसे०। दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु०। उवरिं उक्कस्सभंगो याव चदुदंसणावरणीय त्ति। तदो अण्णदरगोद० ज० प० संखेंज्जगु०। अण्णदरवेदणी० ज० प० विसे०। वेउ० ज० प० असं०गु०। देवगदि० ज० प० संखेंज्जगु०। तिण्णिआउ० ज० प० संखेंज्जगु०।

१४३. सम्मामि० ओधिणाणिभंगो याव केवलदंसणावरणीय त्ति। तदो ओरा० ज० प० अणंतगु०। तेजा ज० प० विसे०। कम्म० ज० प० विसे०। वेउ० ज० प० विसे०। मणुस० ज० प० संखेंज्जगु०। जस०-अजस० ज० प० विसे०। देवग० ज०

ज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। उससे आगे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे आगे सातावेदनीय और असातावेदनीयका अल्पबहुत्व प्राप्त होने तक अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। उससे आगे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे आहारकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है।

१४२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें केवलदर्शनावरणका भङ्ग प्राप्त होनेतक उत्कृष्टके समान भङ्ग है। उससे आगे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे तिर्यञ्चगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे जुगुप्साका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे आगे चारों दर्शनावरणीयका भङ्ग प्राप्त होने तक उत्कृष्टके समान भङ्ग है। उससे आगे अन्यतर गोत्रका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे अन्यतर वेदनीयका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे तीन आयुका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है।

१४३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें केवलदर्शनावरणीयका भङ्ग प्राप्त होने तक अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। उससे आगे औदारिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र अनन्तगुणा है। उससे तैजसशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे कार्मणशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे वैक्रियिकशरीरका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। उससे मनुष्यगतिका जघन्य प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है। उससे यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प० विसे० । दुगुं० ज० प० संखेंज्जगु० । उवरिं आउगवज्जा याव मणपज्जवणाणावरणीय त्ति । मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो । सण्णीसु मणुसभंगो । असण्णीसु मदिअण्णाणिभंगो । आहारय०ओघभंगो । अणाहारय०कम्मइयभंगो ।

एवं जहण्णपरत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं चदुवीसमणियोगद्दारं समत्तं ।

भुजगारबंधो अट्ठपदं

१४४. एत्तो भुजगारबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–याणि एण्हिं पदेसग्गं बंधदि अणंतरोसक्काविदविदिक्कंते समए अप्पदरादो बहुदरं बंधदि त्ति एसो भुजगारबंधो णाम । अप्पदरबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–याणि[1] एण्हिं पदेसग्गं बंधदि अणंतरुस्सक्काविदविदिक्कंते[2] समए बहुदरादो अप्पदरं बंधदि त्ति एसो अप्पदरबंधो णाम । अवट्ठिदबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं–याणि एण्हिं पदेसग्गं बंधदि अणंतरोसक्काविद-उस्सक्काविदविदिक्कंते समए तत्तियं तत्तियं चेव बंधदि त्ति एसो अवट्ठिदबंधो णाम । अबंधादो बंधो एसो अवत्तव्वबंधो णाम । एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि–समुक्कित्तणा याव अप्पाबहुगे त्ति ॥ १३ ॥

अधिक है । उससे देवगतिका जघन्य प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । उससे जुगुप्साका जघन्य-प्रदेशाग्र संख्यातगुणा है । इससे आगे आयुकर्मको छोड़कर मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान अल्प-बहुत्व जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । संज्ञी जीवोंमें मनुष्यों के समान भङ्ग है । असंज्ञी जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है तथा अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार जघन्य परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

भुजगारबन्ध—अर्थपद

१४४. यहाँ से आगे भुजगारबन्धका प्रकरण है । उसके विषयमें यह अर्थपद है—इस समयमें जिन प्रदेशोंका बन्ध करता है, उन्हें अनन्तर पिछले व्यतीत हुए समयमें घटाकर बाँधे गये अल्पतरसे बहुतर बाँधता है, इसलिए यह भुजगारबन्ध कहलाता है । अल्पतर-बन्धके विषयमें यह अर्थपद है—इस समय जिन प्रदेशोंको बाँधता है उन्हें अनन्तर पिछले व्यतीत हुए समयमें बढ़ाकर बाँधे गये बहुतरसे अल्पतर बाँधता है, इसलिए यह अल्पतरबन्ध कहलाता है । अवस्थित बन्ध के विषयमें यह अर्थपद है—इस समय जिन प्रदेशोंको बाँधता है उन्हें अनन्तर पिछले समयमें घटाकर या बढ़ाकर बाँधे गये प्रदेशोंके अनुसार उतने ही बाँधता है, इसलिए यह अवस्थितबन्ध कहलाता है । तथा अबन्धके बाद बन्ध होना यह अवक्तव्यबन्ध कहलाता है । इस अर्थपदके अनुसार ये तेरह अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक १३ ।

---

१ ता०प्रतौ 'इमं याणि' इति पाठः । २ ता०प्रतौ 'बंधदि । अणंतरुस्सकाविदविदिक्कंते' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुक्कित्तणाणुगमो

१४५. समुक्कित्तणाए दुवि०–ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं अत्थि भुजगारबंधगा अप्पदरबंधगा अवट्ठिदबंधगा अवत्तव्वबंधगा य। एवं ओघभंगो मणुस०३–पंचिंदि०-तस०२–पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालियका०-आभिणि-सुद[1]-ओधि०-मणपज्ज०–संज०–चक्खुदं०–अचक्खुदं०–सुक्कले०–भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति।

१४६. णिरएसु धुवियाणं अत्थि भुज०-अप्पदर०-अवट्ठिद०। सेसाणं ओघभंगो। एवं सव्वणेरइएसु। णवरि पढमाए तित्थयरं धुवियाण भंगो। विदियाए तदियाए साद०भंगो। एदेण बीजेण याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णवरि वेउव्वियमि०-आहारमि० धुवियाणं अत्थि भुज०। सेसाणं परियत्तमाणियाणि अत्थि भुजगार०-अवत्तव्व०।

विशेषार्थ—जिन तेरह अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर भुजगारबन्धका कथन किया जा रहा है, उनके नाम ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तनानुगम

१४५. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके भुजगारबन्धक, अल्पतरबन्धक, अवस्थितबन्धक और अवक्तव्यबन्धक जीव हैं। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंका भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्ध तो सम्भव है ही, क्योंकि योगकी घटा-बढ़ी होनेसे और एक समान योगके रहनेसे ये पद सब प्रकृतियोंके बन जाते हैं। साथ ही जो अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, उनका अवक्तव्यबन्ध भी सर्वत्र सम्भव है और जो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी यथायोग्य स्थानमें बन्धव्युच्छित्ति होकर पुनः पूर्वस्थान प्राप्त होनेपर उनका बन्ध होने लगता है, इसलिए ओघसे इनका भी अवक्तव्यबन्ध बन जाता है। यहाँ मनुष्यत्रिक आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनमें ओघके अनुसार भुजगार आदि चारों पद बन जाते हैं, इसलिए उन मार्गणाओंमें ओघके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है।

१४६. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगारबन्धक, अल्पतरबन्धक और अवस्थितबन्धक जीव हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। तथा दूसरी और तीसरी पृथिवीमें तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली

[1] ता०प्रतौ 'अभिणि० मदिसुद' इदि पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मइ०-अणहार० धुवियाणं देवगदिपंचगस्स य अत्थि भुज० । सेसाणं अत्थि भुज०-अवत्तव्व०[1] ।

एवं समुक्कित्तगा समत्ता[2] ।

प्रकृतियोंके भुजगारबन्धक जीव हैं। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंके भुजगारबन्धक और अवक्तव्य-बन्धक जीव हैं। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और देवगतिपञ्चकके भुजगारबन्धक जीव हैं। शेष प्रकृतियोंके भुजगारबन्धक और अवक्तव्य-बन्धक जीव हैं।

विशेषार्थ—यहाँ नारकियोंमें जो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं,उनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए उनका अवक्तव्यबन्ध सम्भव न होनेसे तीन ही बन्ध कहे । अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंका अवक्तव्यबन्ध भी सम्भव है, इसलिए उनका ओघके समान भङ्ग जाननेकी सूचना की है। सब नारकियोंमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनका निरूपण सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र पहली पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला ऐसा ही मनुष्य मर कर उत्पन्न होता है जो सम्यग्दृष्टि होता है, अतः वहाँ यह प्रकृति भी ध्रुवबन्धिनी होती है, इसलिए वहाँ इसका अवक्तव्यबन्ध सम्भव न होनेसे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान भङ्ग जाननेकी सूचना की है। तथा दूसरी और तीसरी पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर उत्पन्न होता है, इसलिए वहाँ इसका मिथ्यात्वके कालमें बन्ध नहीं होता। बादमें जब वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है,तब पुनः बन्ध प्रारम्भ होता है, इसलिए वहाँ इसका सातावेदनीयके समान अवक्तव्यबन्ध घटित हो जानेसे साता-वेदनीयके समान भङ्ग जाननेकी सूचना की है। यह पूर्वोक्त प्ररूपणा बीजपद है। आगे अनाहारक मार्गणातक इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। अर्थात् जिस मार्गणामें जो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हों, उनके तीन पद और अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके चार पद जानने चाहिए। मात्र जिन मार्गणाओंमें कुछ विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है। खुलासा इस प्रकार है—वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें एकान्तानुवृद्धियोग होता है, इसलिए इन दो मार्गणाओंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका केवल भुजगारबन्ध ही सम्भव है, क्योंकि इनमें प्रति समय उत्तरोत्तर योगकी वृद्धि होनेसे इन प्रकृतियोंका उत्तरोत्तर प्रदेशबन्ध भी अधिक-अधिक होता है। तथा जो अध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं,उनके भुजगारबन्ध और अवक्तव्यबन्ध ही सम्भव हैं, क्योंकि इन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ होनेके प्रथम समयमें अवक्तव्य-बन्ध होता है और द्वितीयादि समयोंमें भुजगारबन्ध होता है। कार्मणकाययोग और अनाहारक-मार्गणामें भी इसी प्रकार घटितकर लेना चाहिए। इन दोनों मार्गणाओंमें जिन जीवोंके देवगतिपञ्चकका बन्ध होता है,उनके उन प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होता रहता है, इसलिए इनमें इन पाँच प्रकृतियोंकी परिगणना ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ की है।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

---

१ ता०प्रतौ अत्थि भुज० अवत्त (त०) इति पाठः। २ ता० प्रतौ 'एवं समुक्कित्तणा समत्ता' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामित्ताणुगमो

१४७. सामित्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दुगुं-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि०बंधगो को होदि ? अण्णदरो । अवत्त० कस्स० ? अण्णद० उवसामयस्स परिवदमाणगस्स मणुसस्स वा मणुसिए वा पढमसमयदेवस्स वा । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तिण्णि पदा कस्स० ? अण्णद० । अवत्त० कस्स० ? अण्णद० संजमादो वा संजमासंजमादो वा सम्मत्तादो वा परिवदमाणयस्स पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा । णवरि मिच्छ० अवत्त० [सम्मामिच्छत्तादो] सासणसम्मत्तादो वा परिवदमाणय० मिच्छादिट्ठिस्स । सादादीणं सव्वपगदीणं परियत्तमाणीणं तिण्णि पदा कस्स० ? अण्ण० । अवत्त० कस्स० ! अण्ण० परियत्तमाणयस्स पढमसमयबंधयस्स । अपच्चक्खाण०४ तिण्णि पदा कस्स० ? अण्ण० । अवत्त० कस्स० ? अण्ण० संजमादो वा० संजमासंजमादो वा परिवदमा० पढमसमयमिच्छा० वा सासण० वा [सम्मामि० वा] असंजदसम्मा० वा । एवं पच्चक्खाण०४ । णवरि संजमादो परिवदमाणयस्स पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स वा सासण० वा सम्मामि० वा असंजदसम्मादि०

स्वामित्वानुगम

१४७. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणीसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद मर कर उत्पन्न हुआ प्रथम समयवर्ती देव इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तीन पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव इनके तीन पदोंका स्वामी है । इनके अवक्तव्य पदका स्वामी कौन है ? संयमसे, संयमासंयमसे और सम्यक्त्वसे गिरनेवाला अन्यतर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव इनके अवक्तव्यपदका स्वामी है । इतनी विषेशता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्वामी सम्यग्मिथ्यात्व और सासादनसम्यक्त्वसे भी गिरनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव ही होता है । परावर्तमान सातावेदनीय आदि सब प्रकृतियोंके तीन पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव इनके तीन पदोंका स्वामी है । इनके अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? परावर्तन करके प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव इनके अवक्तव्यपदका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव इनके तीन पदोंका स्वामी है । इनके अवक्तव्य पदका स्वामी कौन है ? संयमसे और संयमासंयमसे गिर कर जो मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ है, प्रथम समयवर्ती उक्त गुणस्थानोंवाला वह जीव उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका स्वामी है । इसी प्रकार अर्थात् अप्रत्याख्यानवरणचतुष्कके समान प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके चार पदोंका स्वामी जानना चाहिए । इतनी विशेपता है कि जो संयमसे गिर कर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा संजदासंजदस्स वा। चदुण्णं आउगाणं तिण्णि पदा कस्स० ? अण्णद०। अवत्त० कस्स० ? अण्ण० पढमसमयआउगबंधमाणयस्स। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-आभिणि-सुद-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मा०-खइग०-उवसम०-सण्णि०-आहारग त्ति। णवरि मणुस०३-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-संजद० अवत्तव्वं देवो० त्ति ण भाणिदव्वं। एवं एदेण बीजेण याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

एवं सामित्तं समत्तं[1]।

संयतासंयत होता है वह प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदका स्वामी है। चार आयुओंके तीन पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव चार आयुओंके तीन पदोंका स्वामी है। इनके अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें आयुबन्धका प्रारम्भ करनेवाला अन्यतर जीव इनके अवक्तव्यपदका स्वामी है। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी और संयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादिके प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका स्वामी देवको नहीं कहना चाहिए। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहरक मार्गणा तक लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ किस प्रकृतिके किस पदका कौन जीव स्वामी है इस बातका विचार किया गया है। प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियाँ अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिके स्थानके पूर्व ध्रुवबन्धवाली हैं, इसलिए इस बीच कोई भी जीव इनके भुजगार आदि तीन पदोंमें से किसी भी पदका स्वामी हो सकता है, अतः इनके तीन पदोंका अन्यतर जीव स्वामी कहा है। पर इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणीसे गिरनेवाले या तो मनुष्यके होता है या मनुष्यिनीके होता है और यदि ऐसा मनुष्य या मनुष्यिनी इनका पुनः बन्ध होनेके पूर्व मर कर देव हो जाता है तो वह भी प्रथम समयमें इनके अवक्तव्यपदका स्वामी होता है, इसलिए ऐसे जीवोंको इनके अवक्तव्यपदका स्वामी कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई स्त्यानगृद्धित्रिक आदि भी अपनी बन्धव्युच्छित्तिके पूर्वतक ध्रुवबन्धिनी हैं, इसलिए इस बीच कोई भी जीव यथायोग्य योगके अनुसार इनके तीन पदोंका बन्ध कर सकता है, अतः इनके भी तीन पदोंका अन्यतर जीव स्वामी कहा है। पर इनमेंसे मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद संयम, संयमासंयम और सम्यक्त्वसे गिर कर मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि हुए जीवके प्रथम समयमें होता है और मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद संयम, संयमासंयम, सम्यक्त्व और सासादनसम्यक्त्वसे गिर कर मिथ्यादृष्टि जीवके प्रथम समयमें होता है, क्योंकि अपनी अपनी व्युच्छित्तिके बाद ऊपरके गुणस्थानोंमें इनका बन्ध नहीं होता है। लौट कर पुनः बन्धयोग्य गुणस्थानोंके प्राप्त होने पर इनका बन्ध होने लगता है, इसलिए ऐसे जीवको इनके अवक्तव्यपदका स्वामी कहा है। यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वसे गिर कर जो प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि होता है वह भी

१. ता०प्रतौ 'एवं समित्तं समत्तं' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालाणुगमो

१४८. कालाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं भुजगार०-अप्पद० जह० एगसमयं, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० पवाइज्जंतेण उवदेसेण ऍक्कारससमयं। अण्णेण पुण उवदेसेण पण्णारससमयं। चदुण्णं आउगाणं भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्तसम०। अवत्त०

स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके अवक्तव्यपदका स्वामी होता है, इतना विशेष जानना चाहिए। यद्यपि यह बात मूलमें नहीं कही गई है, फिर भी यह सम्भव है, इसलिए इसका अलगसे निर्देश किया है। सातावेदनीय आदि अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका बन्ध प्रारम्भ होने पर प्रथम समयमें अवक्तव्यपद और द्वितीयादि समयोंमें शेष तीन पद सम्भव हैं, यह स्पष्ट ही है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क चतुर्थ गुणस्थान तक ध्रुवबन्धिनी है। इस बीच कोई भी जीव इनके तीन पदोंका स्वामी हो सकता है। आगेके गुणस्थानोंमें इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए संयम या संयमासंयमसे गिर कर जो प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि होता है, वह इनके अवक्तव्य पदका स्वामी होता है, यह कहा है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका संयमासंयम गुणस्थान तक बन्ध होता है, इसलिए यहाँ तक ये ध्रुवबन्धवाली होनेसे इस बीच किसी भी जीवको इनके तीन पदोंका स्वामी कहा है। मात्र इनका अवक्तव्य पद संयमसे गिरकर नीचेके गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाले जीवके प्रथम समयमें होता है। यही देखकर संयमसे गिर कर मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत हुए प्रथम समयवर्ती जीवको इनके अवक्तव्यपदका स्वामी कहा है। चार आयुका अपने बन्धके योग्य सामग्रीके मिलने पर ही बन्ध होता है, इसलिए इनका बन्ध प्रारम्भ होने पर प्रथम समयमें इनका अवक्तव्य पद और द्वितीयादि समयोंमें शेष तीन पद कहे हैं। यह ओघ प्ररूपणा है। मूलमें कही गई मनुष्यत्रिक आदि मार्गणाओंमें अपनी-अपनी बन्ध प्रकृतियोंके अनुसार यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र मूलमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका स्वामी ऐसा जीव भी कहा है जो उपशमश्रेणिमें इन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद मर कर प्रथम समयवर्ती देव होता है। पर स्वामित्वका यह विकल्प मनुष्यत्रिक आदि कुछ मार्गणाओंमें घटित नहीं होता, अतः उनमें उसका निषेध किया है। इनके सिवा अनाहारक तक अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमें उक्त व्यवस्थाको देखकर स्वामित्व साध लेना चाहिए। उक्त प्ररूपणा उन मार्गणाओंमें स्वामित्वके लिए साधनेके लिए बीजपद है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

कालानुगम

१४८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल प्रवर्तमान उपदेशके अनुसार ग्यारह समय है। परन्तु अन्य उपदेश के अनुसार पन्द्रह समय है। चार आयुओंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० उक्क० ए० । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । णवरि ओरालियमि० देवगदि-पंचगस्स[1] भुज० जह० उक्क० अंतो० । दोआउ० ओघं । सेसाणं गदिभंगो । एवं वेउव्वियमि० । आहारमि० धुवियाणं भुज० ज० उक्क० अंतो० । परियत्तमाणीणं भुज०-अवत्त० ओघं । कम्मइ०-अणाहार० भुज० जह० एग०[2], उक्क० बेसम० । अवत्त० जह० उक्क० एग० । सुहुमसंप०-उवसमसम्मा० अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्तसमयं ।

एवं कालं समत्तं ।

उत्कृष्ट काल सबका एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग गतिके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। परावर्तमान प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्य पदका काल ओघके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है।

विशेषार्थ—योगके अनुसार भुजगार और अल्पतरपद एक समय तक भी हो सकते हैं और अन्तर्मुहूर्त काल तक भी हो सकते हैं। यही कारण है कि यहाँ पर सब प्रकृतियोंके इन दो पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अवस्थितपदका जघन्य काल तो एक समय ही है, क्योंकि एक समयके लिए अवस्थितपद होकर दूसरे समयमें अन्य पद हो,यह सम्भव है। पर इसके उत्कृष्ट कालके विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं—प्रथम प्रवर्तमान उपदेशके अनुसार उत्कृष्ट कालका निर्देश और दूसरा अप्रवर्तमान उपदेशके अनुसार उत्कृष्ट कालका निर्देश। प्रथम उपदेशके अनुसार अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल ग्यारह समय बतलाया है और दूसरे उपदेशके अनुसार अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल पन्द्रह समय बतलाया है, इसलिए यहाँ सब प्रकृतियोंके अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ग्यारह या पन्द्रह समय कहा है। चारों आयुओंके तीनों पदोंका यह काल इसी प्रकार है। मात्र अवस्थितपदका उत्कृट काल ग्यारह समय या पन्द्रह समय न प्राप्त होकर केवल सात समय ही प्राप्त होता है, इसलिए इनके तीनों पदोंके कालका अलगसे निर्देश किया है। अब रहा सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका काल सो यह पद बन्ध प्रारम्भ होनेके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अनाहारक तक जितनी मार्गणाएँ हैं,उनमें यह काल प्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जानने की सूचना की है। मात्र कुछ मार्गणाएँ इसकी अपवाद हैं, इसलिए उनमें अलगसे कालका विचार किया है। उनमेंसे पहली औदारिकमिश्रकाययोग मार्गणा है। इसमें सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त जीवोंमें देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीवोंके इनका नियमसे भुजगारबन्ध होता रहता है, इसलिए इस मार्गणामें उक्त पाँच प्रकृतियोंके भुजगारपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इस मार्गणामें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है,यह स्पष्ट ही है। तथा इसमें शेष प्रकृतियोंके चारों पदोंका काल गति मार्गणा के अनुसार बन जाता है, इसलिए वह गतिके अनुसार जाननेकी सूचना की है। आहारकमिश्रकाययोगमें

१. आ०प्रतौ 'देवगदिपंचगस्स च जह' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अणाहार० भुज० ए०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतराणुगमो

१४६. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दुगुं०-तेजा०क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्पद० बंधंतरं० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखे०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० वेछावट्ठि० देसू०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखेज्ज०।[1] अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल०। सादासाद०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणावरणभंगो। अवत्त०

एकान्तानुवृद्धि योग होता है, इसलिए इसमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका एक भुजगारपद होनेसे उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा शेष प्रकृतियाँ परावर्तमान होती हैं। उनका जघन्य बन्धकाल एक समय है और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहां ओघके अनुसार इन प्रकृतियोंके भुजगारबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र यहां भुजगारका जघन्य काल एक समय प्राप्त करनेके लिए दो समय तक इन प्रकृतियोंका बन्ध अवश्य कराना चाहिए, क्योंकि इन दो समयोंमें प्रथम समय अवक्तव्यका और दूसरा समय भुजगारका होनेसे भुजगारका जघन्य काल एक समय प्राप्त होगा। यहां सब परावर्तमान प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका ओघके अनुसार जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक मार्गणाका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। पर इनमें प्रथम समय अवक्तव्यका है, इसलिए यहां भुजगारका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। अवक्तव्यका उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। सूक्ष्मसाम्पराय आदि दो मार्गणाओंमें मात्र अवस्थितपदके कालमें विशेषता है, इसलिए उसका अलगसे निर्देश किया है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तर

१४६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशः-

---

१. ता०आ०प्रत्योः 'असंखेजगु०। अवत्त०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० अंतो० । अट्ठक० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । अवट्ठि०-अवत्त० णाणावरणभंगो । इत्थि० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० मिच्छ०-भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० वेछावट्ठि० देसू० । पुरिस० भुज०अप्पद०-अवट्ठि० णाणावरणभंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० वेछावट्ठि० सादि० । णवुंस० पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० वेछावट्ठिसाग० सादि० तिण्णिपलि० देसू० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णिपलिदो० देसू० । तिण्णिआउ०-वेउव्वियछक्क० तिण्णिपदा० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अणंतका० । तिरिक्खाउ० भुज०-अप्पद० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । अवट्ठि० णाणा०भंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा । णवरि उज्जो० अवत्त० [जह०] अंतो०, [उक्क०] तेवट्ठिसागरोवमसदं । अवट्ठि० णाणा०भंगो । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा

कीर्ति और अयशःकीर्तिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। पुरुषवेदके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरण के समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। तीन आयु और वैक्रियिकषट्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि उद्योतके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर औरअवस्थितपदकाजघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगा। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। चदुजादि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त[1]-साधारण० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० पंचासीदि-सागरोवमसदं०। एवं अवत्त०। जह० अंतो०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०-बादर०-पज्ज०-पत्ते० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं०। ओरा० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादि०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालम०[2]। एवं ओरालि०अंगो-वज्जरि०[3]। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। आहारदुगं तिण्णिपदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णिपलि० देसू०। तित्थ० भुज०- अप्पद० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त०[4] जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। णीचा० णपुंसगभंगो। णवरि अवत्त० जह०

है। चार जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागरप्रमाण है। इसी प्रकार अवक्तव्यपदकी अपेक्षा अन्तरकाल है। मात्र इस पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित-पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। औदारिक-शरीरके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण है। इसी प्रकार औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारोंका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। तीर्थङ्करप्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नीचगोत्रका भङ्ग नपुंसकवेदके समान

१. आ०प्रतौ 'सुहुमसं अपज्जत्त' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'उक्क०सेढीए अणंतकालम०' इति पाठः। ३. ता०आ०प्रत्योः 'ओरालि०भंगो वज्जरि' इति पाठः। ४. आ०प्रतौ 'जह० एग० उ० अंतो० अवत्त०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं ओघभंगो अचक्खुदं-भवसि० ।

है । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । इस प्रकार ओघके समान अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गईं पाँच ज्ञानावरणादिका भुजगार और अल्पतरपद कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे सम्भव है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके इन पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पहले कह आये हैं, अतः इन प्रकृतियोंके उक्त दोनों पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन प्रकृतियोंके अवस्थित पदके योग्य योग एक समयके अन्तरसे भी हो सकता है और जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे भी हो सकता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। कुल योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उनमें से एक-एक पदके योग्य योगस्थान भी जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इसलिए यदि अन्य पदोंके योग्य उक्त योगस्थान लगातार होते रहें और अवस्थित-पदके योग्य योगस्थान न हों, तब अवस्थित पदका यह उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ाकर दूसरी बारमें उतरते समय मरण कराके देवोंमें उत्पन्न कराने पर प्राप्त होता है और अर्ध-पुद्गल परिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें उपशमश्रेणि पर चढ़ाकर उतारने पर इनके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्त-र्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिक आदि आठ प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय तो पाँच ज्ञाना-वरण आदिके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका बन्ध, जो जीव बीचमें सम्य-ग्मिथ्यात्वके साथ रह कर कुछ कम दो छयासठ सागरकाल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहा है, उसके नहीं होता। इसके पूर्व और बादमें मिथ्यादृष्टि रहने पर अवश्य ही होता है और वह यथायोग्य भुजगार और अल्पतर दोनों प्रकारका हो सकता है, अतः इन आठ प्रकृतियोंके उक्त दो पदों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण कहा है। इन प्रकृतियोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण जिस प्रकार पाँच ज्ञानावरण आदिके अवस्थित पदकी अपेक्षा घटित करके बतला आये हैं, उसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए। इनके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र वहाँ उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे यह अन्तरकाल घटित होता है और यहाँ यह अन्तरकाल सम्यक्त्व-की अपेक्षा घटित कर लेना चाहिए। सातावेदनीय आदिके भुजगार आदि तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। अप्रत्याख्याना-वरण चतुष्कका संयतासंयत आदिके और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका संयतके बन्ध नहीं होता और इन दोनों संयमासंयम और संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, इसलिए यहाँ इन आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। यहाँ जघन्य अन्तर एक समय पहले घटित करके बतला आये हैं, इसलिए उसका फिरसे खुलासा नहीं किया। आगे भी जो अन्तरकाल पुनरुक्त होगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका अलगसे खुलासा नहीं करेंगे। इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट है। मात्र यहाँ पर अवक्तव्य पदका अन्तरकाल क्रमसे संयमासंयम और संयमको प्राप्त करके घटित कर लेना चाहिए। स्त्रीवेदके भुजगार आदि तीन पदोंका भङ्ग मिथ्यात्व-के समान है,यह स्पष्ट ही है। तथा इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि यह सप्रतिपक्ष प्रकृति होने से अन्तर्मुहूर्तके भीतर इसका दो बार बन्ध प्रारम्भ हो सकता है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है, क्योंकि इतने काल तक जीवके बीचमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ सम्यग्दृष्टि रहनेसे इसका बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे उक्त कालप्रमाण कहा है। पुरुषवेदके प्रारम्भके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। तथा यह सप्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे अन्तर्मुहूर्तके भीतर एक तो इसका दो बार बन्ध प्रारम्भ हो सकता है, दूसरे एक बार इसका बन्ध प्रारम्भ करके कोई जीव सबसे उत्कृष्ट काल तक बीचमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ सम्यग्दृष्टि रहा और वहाँ इसका बन्ध करता रहा। पुनः मिथ्यात्वमें आकर और इसका अबन्धक होकर अन्तर्मुहूर्तमें पुनः इसका बन्ध करने लगा। यह काल साधिक दो छ्यासठ सागर प्रमाण होता है, इसलिए इसके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण कहा है। नपुंसकवेद आदिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है,यह तो स्पष्ट ही है। तथा भोगभूमिमें पर्याप्त होनेपर इनका बन्ध नहीं होता और वहाँसे निकलनेके पूर्व जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर बीचमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कुछ कम दो छ्यासठ सागरप्रमाण काल तक सम्यक्त्वके साथ यापन करता है, उस जीवके भी इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। उसके बाद मिथ्यात्वमें जाने पर उक्त दो पदों के साथ बन्ध होने लगता है, अतः इन प्रकृतियोंके उक्त दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण कहा है। इनके अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागर जैसा भुजगार आदि दो पदोंका घटित करके बतलाया है, उस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तीन आयु आदि नौ प्रकृतियोंके तीन पद तो एक समयके अन्तरसे हो सकते हैं तथा अवक्तव्यपद कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे ही होगा, क्योंकि प्रथम बार बन्धका प्रारम्भ और अन्त होकर पुनः बन्धका प्रारम्भ होनेमें लगनेवाला काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं हो सकता, इसलिए आदिके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा लगातार अनन्त काल तक एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्यायमें जीवके रहते हुए इनका बन्ध नहीं होता। तथा बन्धके अभावमें भुजगार आदि पद तो सम्भव ही नहीं हैं, अतः इन प्रकृतियोंके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायुके भुजगार आदि दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त पूर्वमें कहे गये तीन आयु आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा कहे गये जघन्य अन्तरकालके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा कोई जीव यदि अधिकसे अधिक काल तक तिर्यञ्च न हो तो वह सौ पृथक्त्व सागर काल तक ही नहीं होता, इसलिए तिर्यञ्चायुके उक्त तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। इसके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होता है,यह स्पष्ट ही है। जो सम्यक्त्व और बीचमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ १३२ सागर बिताकर अन्तमें नौवें ग्रैवेयकमें उत्पन्न होता है, उसके इतने काल तक तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, इसलिए तिर्यञ्चगतिद्विकके भुजगार और अल्पतर पदका तथा उद्योतके प्रारम्भके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर कहा है। मात्र तिर्यञ्चगतिद्विकके और उद्योतके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि इनका एक बार बन्ध प्रारम्भ होकर और बीचमें कमसे कम अन्तर पड़कर पुनः दूसरी बार इनके बन्धका प्रारम्भ अन्तर्मुहूर्तसे पहले नहीं हो सकता। और तिर्यञ्चगतिद्विकका निरन्तर बन्ध तैजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंमें असंख्यात लोकप्रमाण काल तक होता रहता है, इसलिए इन दोनोंके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इन तीनों प्रकृतियोंके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगति आदि तीनका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीव नहीं करते, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इनके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अन्य प्रकृतियोंका पूर्वमें अनेक बार घटित करके बतला आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। चार जाति आदिका बन्ध निरन्तर एक सौ पचासी सागर तक नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके इन तीन पदोंके जघन्य अन्तर कालका विचार तथा अव-स्थितपदके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालका विचार सुगम है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका एक सौ पचासी सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। इनका शेष विचार सुगम है। जो मनुष्य प्रथम त्रिभागमें मनुष्यायुका बन्ध कर और क्षायिकसम्यग्दृष्टि होकर उत्तम भोगभूमिमें जन्म लेता है, उसके साधिक तीन पल्य तक औदारिकशरीरका बन्ध नहीं होता, इसलिये इसके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इसके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागका स्पष्टीकरण ज्ञाना-वरणके समान कर लेना चाहिए। तथा इसका कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे बन्ध सम्भव है और एकेन्द्रियोंमें इसका अनन्त काल तक निरन्तर बन्ध होनेसे इतने कालके अन्तरसे भी इसका उक्त पद सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण कहा है। औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके अन्य पदोंका अन्तर काल औदारिकशरीरके समान बन जानेसे उस प्रकार जाननेकी सूचना की है। मात्र इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे यह उक्त कालप्रमाण कहा है। उत्कृष्ट अन्तरकाल अलग-अलग प्रकृतिका विचार कर घटित कर लेना चाहिए। आहारकद्विकका बन्ध अर्धपुद्गलपरावर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें करानेसे इनके चारों पदोंका उक्त काल प्रमाण अन्तर प्राप्त हो जाता है। शेष विचार सुगम है। समचतुरस्रसंस्थान आदिके प्रारम्भके तीन पदोंका जो अन्तरकाल कहा है वह ज्ञानावरणके ही समान है, इसलिए ज्ञानावरणके प्रसंगसे जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं,उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका कमसे कम अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार बन्ध प्रारम्भ हो सकता है और कुछ कम तीन पल्य अधिक दो बार छयासठ सागरके अन्तरसे भी दो बार बन्ध प्रारम्भ हो सकता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण कहा है। यहाँ जो उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है सो इतने काल तक तो इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, किन्तु इसके प्रारम्भमें इनका बन्ध प्रारम्भ करावे और सम्यक्त्वके कालके पूर्ण होनेपर मिथ्यात्वमें ले जाकर तथा अन्य सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध कराकर पुनः इनके बन्धका प्रारम्भ करावे और इस प्रकार यह उत्कृष्ट अन्तर काल ले आवे। अन्यत्र भी जहाँ विशेष खुलासा नहीं किया हो, वहाँ इसी प्रकार खुलासा कर लेना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५०. णिरएसु धुवियाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस० दोगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-दोगोद० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । दोवेद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० उक्क० अंतो० । पुरिस०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । दोआउ० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं०

तीर्थङ्कर प्रकृतिका और अन्तरकाल सुगम है । केवल अवस्थित और अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट अन्तरकालका विचार करना है। इस प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्ध काल साधिक तेतीस सागर है । यह सम्भव है कि बन्धकालके प्रारम्भमें और अन्तमें अवस्थित पद हो और मध्यमें न हो, इसलिए तो इसके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है । तथा किसीने तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भमें अवक्तव्यपद किया और साधिक तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध करनेके बाद मनुष्य पर्यायमें उपशमश्रेणिपर चढ़कर और इसका अबन्धक होकर उतरते समय पुनः बन्ध प्रारम्भ किया । इस प्रकार अवक्तव्यपदका साधिक तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जानेसे यह उक्त कालप्रमाण कहा है। इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त इसके बन्धका प्रारम्भ कराके और अन्तर्मुहूर्तके भीतर उपशमश्रेणि पर चढ़ा कर और मरण कराकर देवोंमें उत्पन्न कराकर पुनः बन्धका प्रारम्भ करानेसे प्राप्त हो जाता है । नीचगोत्रका अन्य सब भङ्ग नपुंसकवेदके समान है । मात्र इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होनेसे वह अलगसे कहा है । अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें इतने काल तक इसका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इसके प्रारम्भमें और बादमें नीचगोत्रके बन्धका प्रारम्भ कराकर अवक्तव्यपदका यह अन्तर काल ले आना चाहिए । अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जानेसे उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है ।

१५०. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । दो आयुओंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसू० । तित्थ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह[1]० एग०, उक्क० तिण्णि सागरो० सादि० । अवत्त० णत्थि अंतरं । एवं सव्वणेरइयाणं अप्पप्पणो अंतरं णेदव्वं । णवरि पढमाए पुढवीए तित्थ० अवत्त० णत्थि अंतरं ।

है । तीर्थङ्करप्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें अपना-अपना अन्तरकाल ले आना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें जो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका अवस्थित पद भवके प्रारम्भमें और अन्तमें हो मध्यमें न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । यहाँ इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए उसकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं कहा है । स्त्यानगृद्धि तीन आदिके चारों पदोंका जो उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है, उसका खुलासा इस प्रकार है—कोई जीव नरकमें जाकर और सम्यक्त्वको प्राप्त कर इनका अबन्धक हुआ । पुनः कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर और मिथ्यात्वमें जाकर पुनः इनका बन्ध करने लगा । इसप्रकार तो भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त हो जाता है । तथा नारकी होकर प्रारम्भमें अवस्थित पद किया और अन्तमें अवस्थितपद किया, इसलिए इसका भी उक्त कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । यहाँ जो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं उनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तो सुगम है, पर स्त्यानगृद्धित्रिक आदि आठ प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त दो बार सम्यक्त्व कराकर और मिथ्यात्वमें ले जाकर प्राप्त कर लेना चाहिए । दो वेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, पर अवस्थितपदका जो उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है, वह कैसे बनता है यह विचारणीय है । बात यह है कि यहाँ अवस्थितपद प्रत्येक जीवके होना ही चाहिए—ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि अवस्थितपदके कारणभूत जो योगस्थान हैं वे अधिकसे अधिक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे भी होते हैं और एक समयके अन्तरसे भी होते हैं। पर नारकी जीवका नरकमें उत्कृष्ट अवस्थानकाल तेतीस सागरसे अधिक नहीं होता और इस कालके भीतर अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर काल दिखाना आवश्यक था, इसलिए जिस जीवने इन प्रकृतियोंका नरकभवके प्रारम्भमें अवस्थित पद किया और नरकभवके अन्तमें अवस्थित पद किया, मध्यमें नहीं किया उसको लक्ष्यमें रखकर अवस्थितपदका यहाँ उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है । अन्यत्र जहाँ भी भवस्थिति और कायस्थितिमें फरक नहीं है या कायस्थिति जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे न्यून है, वहाँ इसी बीजपदके अनुसार अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए । तथा इन दो वेदनीय आदिके दो बार बन्धके प्रारम्भमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । पुरुषवेद आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ तो हैं, पर सम्यग्दृष्टिके ये निरन्तरबन्धिनी हैं, इसलिए यहाँ इनके प्रारम्भके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान बन जाता है । अब रहा अवक्तव्यपद सो इनका मिथ्यादृष्टिके

१. ता०प्रतौ 'जह० एग, अवट्ठि० जह०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५१. तिरिक्खेसु धुवियाणं भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० ओघं। थीणगि[1]०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्पद० ज० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० देसू०। अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। दोवेदणी०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियु० चत्तारि पदा ओघं। [अपच्चक्खाण०४ ओघभंगो]। इत्थि० भुज०-अप्पद० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। अवट्ठि० ओघं। पुरिस० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क[2]० तिण्णिपलिदो० देसू०। णवुंस०-चदुजादि-[ओरा०-] पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादें० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडि० देसूणं०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। तिण्णिआउ० भुज०-

---

अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार बन्ध होना सम्भव है और नरकभवके प्रारम्भमें इनका बन्ध प्रारम्भ करे। तथा सम्यक्त्वके साथ रह कर भवके अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर अन्य सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंसे अन्तरित कर पुनः इनके बन्धका प्रारम्भ करे, यह भी सम्भव है। यही कारण है कि यहाँ इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। दो आयुओंके भुजगार आदि तीन पद एक समयके अन्तरसे हो सकते हैं, इसलिए दोनों आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय कहा है, पर दूसरी बार आयुबन्धका प्रारम्भ कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल गये बिना नहीं हो सकता, इसलिए इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा नरकमें प्रथम त्रिभागमें आयु बन्ध हो और उसके बाद कुछ कम छह महीनाका अन्तर देकर आयुबन्ध हो, यह सम्भव है। यही देखकर यहाँ इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जीव यदि नरकमें उत्पन्न होता है तो उसकी आयु साधिक तीन सागरसे अधिक नहीं होती, यह देखकर यहाँ इसके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। सामान्यसे नरकमें और प्रथम नरकमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

१५१. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके चार पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तथा अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेदके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। नपुंसकवेद, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। तीन आयुओंके

---

१. ता०प्रतौ 'ओवं। थि (थी) णगि०, इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'अवत्त० जह० उक्क०' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अप्पद०-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसूणं० । तिरिक्खाउ० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी सादि[1]० । अवट्ठि० णाणा०-भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादि[2]० । वेउव्वियछक्कं मणुसगदितिगं ओघं । तिरिक्खगदितिगं णवुंसगभंगो । णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा । पंचिंदि०-समचदु०-पर[3]०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी० देसू० ।

भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण है। वैक्रियिकषट्क और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर और आदेयके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ व आगे सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंका जो जघन्य अन्तरकाल कहा है वह सुगम है, क्योंकि उसका ओघप्ररूपणाके समय अलग-अलग स्पष्टीकरण कर आये हैं, अतः उसे यहाँ देखकर सर्वत्र घटित कर लेना चाहिए। जहाँ कुछ वक्तव्य होगा, वहाँ उसका निर्देश करेंगे ही। मात्र सर्वत्र यथासम्भव पदोंके उत्कृष्ट अन्तरकालका स्पष्टीकरण करना आवश्यक समझ कर उसपर अवश्य ही विचार करेंगे। उसमें भी भुजगार और अल्पतरपदके विषयमें जहाँ विशेष वक्तव्य होगा, वहीं उसका निर्देश करेंगे। यहाँ तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल होनेसे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। आगे अन्य जिन प्रकृतियोंके अवस्थितपदका अन्तरकाल ओघके समान कहा है, वह भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए। स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके भुजगार और अल्पतरपद उत्तम भोगभूमिके प्रारम्भमें हों, उसके बाद सम्यग्दृष्टि होकर इनका बन्ध न होनेसे मध्यमें न हों और अन्तमें मिथ्यादृष्टि होनेपर पुनः बन्ध होने लगनेसे पुनः हों, यह सम्भव है, इसलिए उक्त प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहाँ आगे अन्य जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका यह अन्तरकाल कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। ओघसे इन प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है, वह यहाँ भी बन जाता है, क्योंकि तिर्यञ्चकी कायस्थिति इन दोनों अन्तरकालोंसे बहुत अधिक बतलाई है, अतः किसी भी जीवके इतने कालतक तिर्यञ्च पर्यायमें बने रहना सम्भव है। दो वेदनीय आदिके चारों पदोंका भङ्ग ओघके समान यहाँ भी घटित हो जाता है, इसलिए उसे

१. ता०प्रतौ 'पुव्वकोडिति० सादि०' आ०प्रतौ 'पुव्वकोडितिभागं सादि०' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'पुव्वकोडितिभागं सादि' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'लोगा। सम० पर०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. पंचिंदि०तिरि०पज्जत्त-जोणिणीसु धुवियाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भहियाणि। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि० भुज०-अप्पद० जह० एग०,

---

ओघके समान कहा है। भोगभूमिमें नपुंसकवेद आदिका बन्ध अपर्याप्त अवस्थामें होता है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल कर्मभूमिकी अपेक्षा प्राप्त किया गया है, क्योंकि कर्मभूमिमें एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जीवके भवके प्रारम्भमें मिथ्यादृष्टि होनेसे ये पद हों, पुनः सम्यग्दृष्टि हो जानेसे मध्यमें बन्ध न होने से ये पद न हों और भवके अन्तमें पुनः मिथ्यात्वमें चला जानेके कारण बन्ध होनेसे पुनः ये पद होने लगें,यह सम्भव है, इसलिए उक्त प्रकृतियोंके इन दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका यह अन्तरकाल कहा हो,वह इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए। जो पूर्वकोटिकी आयुवाला तिर्यञ्च प्रथम त्रिभागमें तीन आयुओंमें से किसी एकका बन्ध करके चारों पद करता है और फिर भवके अन्तमें इनका बन्ध करके चारों पद करता है, उसके उक्त तीनों आयुओंके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्तकाल प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायुके अवस्थित पदके सिवा शेष तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण जानना चाहिए, क्योंकि तिर्यञ्चायुके तीन पदोंका यह अन्तरकाल दो भवोंके आश्रयसे प्राप्त करनेपर साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण प्राप्त होता है। मात्र इसके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे उसका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। वैक्रियिकषट्क और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग ओघमें तिर्यञ्चोंकी मुख्यतासे ही प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ ओघके समान जाननेकी सूचना की है। तिर्यञ्चगतित्रिकका शेष भङ्ग तो नपुंसकवेदके समान बन जाता है, क्योंकि इनके दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कर्मभूमिमें पूर्वकोटिकी आयुवाले तिर्यञ्चके ही प्राप्त हो सकता है और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण यहाँ भी बन जाता है। मात्र इनके अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट अन्तरकालमें फरक है। बात यह है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव इन तीन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध करते रहते हैं, इसलिए उनके इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल सम्भव नहीं है और उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण होती है, अतः इस कायस्थितिके पूर्वमें और बादमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद होनेसे इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होनेसे यह उक्त कालप्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका भोगभूमिमें बन्ध प्रारम्भ होनेपर वह निरन्तर होता है, इसलिए वहाँ इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। हाँ,कर्मभूमिमें जो पूर्वकोटिकी आयुवाला जीव प्रारम्भमें इनका अवक्तव्य पद करके और सम्यग्दृष्टि होकर इनका निरन्तर बन्ध करे। तथा अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर और अन्य प्रकृतियोंके बन्धका अन्तर देकर पुनः इनका बन्ध करे,उसके इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१५२ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अपच्चक्खाण०४ भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी० दे० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुध० । सादंदंडओ अवट्ठि० णाणा०भंगो । सेसाणि पदाणि तिरिक्खोघं । पुरिस० तिण्णिपदा० सादभंगो । अवत्त० तिरिक्खोघं । णवुंस[1]०-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरा०-पंचसंठा०-ओरा०अंगोव०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० भुज०-अप्प० तिरिक्खोघ-णवुंसगभंगो[2] । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुध० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । तिण्णिआउ० तिरिक्खोघं । तिरिक्खाउ[3]० तिण्णि पदा तिरिक्खोघं । अवट्ठि० णवुं०भंगो । देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउ०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी दे० ।

अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है । तथा इनके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके भुजगार और अल्पतर-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । तथा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । सातावेदनीयदण्डकके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है तथा शेष पदोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है और अवक्तव्यपदका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । नपुंसकवेद, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके कहे गये नपुंसकवेदके समान है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्व कोटि पृथक्त्वप्रमाण है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । तीन आयुओंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । तिर्यञ्चायुके तीन पदोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अवस्थितपदका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है । देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण होनेसे यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उक्त कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है । कारणका निर्देश पहले कर आये हैं । यहाँ स्त्यानगृद्धित्रिक आदिका उत्कृष्ट बन्धान्तर उत्तम भोगभूमिमें ही सम्भव है, अतः इनके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है । यहाँ प्रारम्भमें और अन्तमें उक्त पद कराकर यह

१. ता०प्रतौ पदाणि 'तिरिक्खोघं णवुं०' इति पाठः । २. ता०आ०प्रत्योः 'अप्प० णवुंसगभंगो' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ देसू० । तिरिक्खाउ०, इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५३. पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० धुवियाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्त०

अन्तरकाल ले आना चाहिए। इनके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका उत्कृष्ट बन्धान्तर पूर्वकोटिकी आयुवाले उक्त तिर्यञ्चोंमें ही सम्भव है, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण कहा है। तथा पूर्वकोटिपृथक्त्व कालके प्रारम्भमें और अन्तमें संयमासंयम होकर पुनः असंयममें जाना सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय-दण्डकके अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान और शेष तीन पदोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, यह भी स्पष्ट है। विशेष खुलासाके लिए उक्त स्थानोंको देखकर अन्तर-कालकी संगति बिठला लेनी चाहिए। यहाँ सातावेदनीयके तीन पदोंका जो अन्तरकाल कहा है वह पुरुषवेदके तीन पदोंका भी बन जाता है, अतः इसे सातावेदनीयके समान जाननेकी सूचना की है। तथा सामान्य तिर्यञ्चोंमें पुरुषवेदके अवक्तव्यपदका जो अन्तर काल घटित करके बतला आये हैं, वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इसे सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें नपुंसकवेदके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण पहले घटित करके बतला आये हैं, वह इन तिर्यञ्चोंकी मुख्यतासे ही सम्भव है। इसलिए यहाँ नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंके उक्त दो पदोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंमें कहे गये नपुंसकवेदके उक्त दो पदोंके अन्तरकालके समान कहा है। इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा इनके इन प्रकृतियोंका अवस्थितपद पूर्वकोटिपृथक्त्वके प्रारम्भमें और अन्तमें हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके इस पदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें तीन आयुओंके सब पदोंका अन्तरकाल उक्त तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंकी मुख्यतासे ही कहा है, इस लिए यहाँ तीन आयुओंके सब पदोंके अन्तरकालको सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। तिर्यञ्चायुके तीन पदोंका भङ्ग तो सामान्य तिर्यञ्चोंके समान बन ही जाता है, क्योंकि वहाँ इन्हीं तिर्यञ्चोंकी मुख्यतासे इन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। पर इसके अवस्थित पदके उत्कृष्ट अन्तरकालमें फरक है। बात यह है कि इन तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण है और यहाँ नपुंसकवेदके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल इतना ही बतला आये हैं, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायुके अवस्थित पदके अन्तरकालको नपुंसकवेदके समान जाननेकी सूचना की है। देवगति आदिके भुजगार आदि पदोंका अन्तर ज्ञानावरणके समान यहाँ भी घटित हो जाता है, इसलिए इसे ज्ञानावरणके समान जाननेकी सूचना की है। तथा इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण प्राप्त होनेसे वह अलगसे कहा है। उक्त तिर्यञ्चोंमेंसे कोई एक तिर्यञ्च इन प्रकृतियोंके बन्धका प्रारम्भ करके सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर भवके अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर और इनका अन्य प्रकृतियों द्वारा बन्धान्तर करके पुनः बन्ध प्रारम्भ करता है, तो उसके इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त काल प्रमाण कहा है।

१५३ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० उक्क० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्तयाणं तसाणं थावराणं सव्वसुहुमपज्जत्तयाणं[1] च।

१५४. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि धुवियाणं उवसम० परिवद-माणयाणं[2] अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। पच्चक्खाण०४ अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्त०। आहार[3]०-आहार०अंगो० तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुध०। तित्थ० भुज०-अप्प० णाण०भंगो। अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०।

मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंमें तथा सब सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सब प्रकृतियाँ दो भागोंमें विभक्त हो गई हैं—ध्रुवबन्धवाली और शेष। इन सबके भुजगार आदि तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है, क्योंकि अपर्याप्त जीवोंकी भवस्थिति और कायस्थिति अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होती। तथा जो शेष प्रकृतियाँ हैं, उनका अवक्तव्यपद भी यहाँ सम्भव है। पर एक बार बन्ध होकर पुनः उस प्रकृतिके बन्ध होनेमें अन्तर्मुहूर्त कालका अन्तर पड़ता है, इसलिए इनके इस पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उन सबकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होनेसे उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है।

१५४ मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्ध-वाली प्रकृतियोंके उपशमश्रेणिसे गिरनेवाले जीवोंमें अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। आहारकशरीर और आहारकआङ्गोपाङ्गके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि-प्रमाण है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी और उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंकी कायस्थिति पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्य होनेसे तीन प्रकारके मनुष्योंमें अन्य सब प्रकृतियोंके सब पदोंका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान बन जाता है। मात्र मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थानोंकी प्राप्ति सम्भव है और इनमें आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध भी सम्भव है, इसलिए इस दृष्टिसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा अन्तरकालमें जो विशेषता आती है, उसका अलगसे निर्देश किया है। उदाहरणार्थ—इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इन इकतीस प्रकृतियोंका उपशमश्रेणिकी अपेक्षा अवक्तव्यपद भी सम्भव है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है। इसी प्रकार यहाँ संयम ग्रहण सम्भव होनेसे प्रत्याख्याना-

१. ता०प्रतौ 'सव्वसुहुमअपजत्तयाणं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'परिपदया (मा) णं' इति पाठः। ३. आ०प्रतौ 'जह० अंतो०, आहार०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५५. देवेसु धुवियाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० ए०, उक्क० तेत्तीसं[1]० देसू० । एवं तित्थ० । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० भुज०-अप्प[2]०-अवट्ठि० जह० एग०,अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० देसू० । दोवेदणी०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अंतो० । पुरिस०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चागो० तिण्णि पदा णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० देसू० । दोआउ० णिरयभंगो । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० तिण्णि पदा० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारससाग० सादि० । मणुस०-मणुसाणु० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारससाग० सादि० । एइंदि०-आदाव०-थावर० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि० । पंचिंदि०-ओरा०अंगो०-तस०

वरणचतुष्कका भी अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए उनके इस पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१५५. देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसीप्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षासे जानना चाहिए । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग और त्रसके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरण के समान

---

१. आ०प्रतौ 'अप्प० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं०-' इति पाठः । २ आ०प्रतौ 'णीचा० अप्प०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि०। एवं सव्व-देवाणं अप्पप्पणो अंतरं णेदव्वं।

है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपना-अपना अन्तरकाल ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है, इसलिए यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण और पाँच अन्तराय। स्त्यानगृद्धि आदिका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरप्रमाण कहा है। यहाँ भवके प्रारम्भमें चारों पदोंको करावे। बादमें सम्यग्दृष्टि होकर कुछ कम इकतीस सागर हो जाने पर अन्तमें पुनः मिथ्यात्वमें ले जाकर चार पद कराकर यह अन्तरकाल ले आवे। दो वेदनीय आदिके भुजगार आदि तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे उक्त कालप्रमाण कहा है। पुरुषवेद आदिका सम्यग्दृष्टिके भी बन्ध होता है, इसलिए इनके भुजगार आदि तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान बन जानेसे वैसा कहा है। पर सम्यग्दृष्टिके ये निरन्तर बन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए उसके इनका अवक्तव्य-पद सम्भव नहीं है। हाँ,जिस मिथ्यादृष्टिने इनके बन्धका प्रारम्भ किया और मध्यमें सम्यग्दृष्टि रह कर अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर तथा इन्हें सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धसे अन्तरित करके पुनः बन्ध प्रारम्भ किया,उसके इनका अवक्तव्य बन्ध और उसका अन्तरकाल दोनों बन जाते हैं। इस तरह अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम इकतीस सागर होनेसे वह उक्त काल प्रमाण कहा है। देवों और नारकियोंमें आयुबन्धके नियम एक समान हैं, इसलिए यहाँ दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान कहा है। तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा है। चारों पदोंका अन्तरकाल विचारकर घटित कर लेना चाहिए। मनुष्यगतिद्विकका बन्ध सब देवोंके सम्भव है,पर इनकी सप्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध सहस्रार कल्प तक ही होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। यहाँ भी प्रारम्भमें और अन्तमें मिथ्यादृष्टि रखकर इनका अवक्तव्यबन्ध कराकर यह अन्तरकाल ले आवे। आगे इन दोनों प्रकृतियोंके प्रारम्भके तीन पद होते हैं, अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए यहाँ अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होनेसे उसके समान कहा है। एकेन्द्रियजाति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध ऐशान कल्प तक ही होता है, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त काल प्रमाण कहा है। यहाँ भी मध्यमें साधिक दो सागर तक सम्यग्दृष्टि रखकर और प्रारम्भमें व अन्तमें मिथ्यात्वमें इनके चारों पद कराकर यह अन्तर काल ले आवे। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर काल लानेके लिए सम्यग्दृष्टि होनेकी आवश्यकता नहीं है। अन्यत्र भी यह विशेषता जान लेनी चाहिए। पञ्चेन्द्रियजाति आदि सानत्कुमार कल्पसे निरन्तर-बन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। किन्तु वहाँ इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्य-पदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। इनके शेष पद ज्ञानावरणके समान सम्भव हैं,यह स्पष्ट ही है। देवोंके अवान्तर भेदोंमें अपना-अपना अन्तरकाल जानकर वह घटित कर लेना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५६. एइंदिएसु धुवियाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखेंज्जदिभागो, बादरेसु[1] अंगुल० असंखें०, बादरपज्जत्तगेसु संखेंज्जाणि वाससहस्साणि। एवं[2] मणुसगदितिगस्स वि ओघं। बादरेसु कम्मट्ठिदी०, पज्जत्तएसु संखेंज्जाणि वाससह०। तिरिक्खगदितिगं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा कम्मट्ठिदी संखेंज्जाणि वाससह०। सेसाणं परियत्तमाणियाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। तिरिक्खाउ० दोण्णिपदा[3] जह० एग०, अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० बावीसं वाससह० सादि०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें० अंगुल० असंखें० संखेंज्जाणि[4] वाससह०। मणुसाउ० तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त[5]० जह० अंतो० उ० सव्वपदाणं सत्तवाससह[6]० सादि०। सुहुमेइंदि० एइंदियभंगो। णवरि दो-आउ० पंचिंदि०तिरि०अपज्जत्तभंगो। णवरि तिरिक्खाउ० अवट्ठि० ओघं। एदेण कमेण विगलिंदिय-पंचकायाणं अंतरं णेदव्वं।

१५६. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है और बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार मनुष्यगतित्रिकका भी भङ्ग ओघके समान है। बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है और बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगतित्रिकके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है और बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चायुके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकेन्द्रियोंमें जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण, बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। मनुष्यायुके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें दो आयुओंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी और विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चायुके अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। इस क्रमसे विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें अन्तरकाल ले जाना चाहिए।

१ ता०-आ०प्रत्योः 'असंखेज्जगु०। बादरेसु' इति पाठः। २ आ०प्रतौ 'संखेज्जाणि एवं' इति पाठः। ३ ता०प्रतौ 'अंगो० (तो०) तिरिक्खाउ० तिण्णिपदा०' आ०प्रतौ 'अंतो०। तिरिक्खाउ० तिण्णिपदा' इति पाठः। ४ आ०प्रतौ 'जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखे० सेढीए असंखे० संखेज्जाणि' इति पाठः। ५ ता० आ०प्रत्योः जह० एग० उ० अवत्त०' इति पाठः। ६ आ० प्रतौ 'उ० सत्तवाससह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण जैसा ओघमें ज्ञानावरणादिका घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। बादर एकेन्द्रियोंमें और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें इन पदोंका और सब अन्तर काल तो इसी प्रकार है, पर इनके अवस्थित पदके उत्कृष्ट अन्तरमें फरक है, क्योंकि इन जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति क्रमसे कर्मस्थितिप्रमाण और संख्यात हजार वर्षप्रमाण है, अतः इन दो प्रकारके एकेन्द्रिय जीवोंमें इन प्रकृतियोंके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। मनुष्यगतित्रिकके एकेन्द्रियोंमें चार पद सम्भव हैं और ओघसे इनके चारों पदोंका अन्तरकाल एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे कहा है, इसलिए यहाँ उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। इन पदोंके अन्तरकालका स्पष्टीकरण ओघप्ररूपणाके समय किया ही है, इसलिए इसे वहाँसे जान लेना चाहिए। मात्र बादर एकेन्द्रियों और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें इन प्रकृतियोंके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कर्मस्थिति प्रमाण और संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही प्राप्त होगा। कारणका निर्देश पूर्वमें किया ही है। एकेन्द्रिय और उनके अवान्तर भेदोंमें जिस प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतित्रिकका बन्ध नहीं होता, वह स्थिति तिर्यञ्चगतित्रिकके विषयमें नहीं है, इसलिए उक्त तीन प्रकारके एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके भुजगार आदि तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान ही बन जाता है, इसलिए वह ज्ञानावरणके समान कहा है। साथ ही उनका यहाँ अवक्तव्यपद भी सम्भव है। उसमें भी एक तो ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और दूसरे अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः यहाँ इनके अवक्तव्यपदका उक्त तीन प्रकारके एकेन्द्रियोंमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे असंख्यात लोक प्रमाण, कर्मस्थितिप्रमाण और संख्यात हजार वर्षप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। शेष जितनी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनका भुजगार आदि तीन पदोंकी अपेक्षा भङ्ग ज्ञानावरणकेसमान कहनेका कारण स्पष्ट है। पर इनका यहाँ अवक्तव्यपद भी सम्भव है। यतः अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं होता और ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होगा, अतः इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। अब रहीं तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु सो तिर्यञ्चायुके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक भवकी अपेक्षा भी प्राप्त हो जाता है, पर उत्कृष्ट अन्तर दो भवकी अपेक्षा प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए इनमेंसे आदिके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष कहा है। यहाँ बाईस हजार वर्षकी आयुवाले उक्त तीन प्रकारके एकेन्द्रियोंके प्रथम त्रिभागमें तीन पद करावे। उसके बाद मरकर इतनी ही आयु प्राप्त कराकर जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर आयुबन्ध कराकर ये तीन पद करावे और इस प्रकार इन तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आवे। तथा इनमें तिर्यञ्च होते रहनेसे एकेन्द्रियोंमें जगश्रेणिके असंख्यातवें भागके अन्तरसे बादर एकेन्द्रियोंमें कर्मस्थितिप्रमाण कालके अन्तरसे और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्षके अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके इस पदका उक्त कालप्रमाण अन्तर कहा है। मात्र इनमें मनुष्यायुके चारों पदोंका अन्तर एक भवके आश्रयसे ही सम्भव है, इसलिए इनमें इसके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्षप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५७. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त[1]० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो। दोवेदणी०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग० अवट्ठि० णाणा०भंगो। सेसाणं पदाणं ओघं। अट्ठक० दोण्णिपदा[2] ओघं। अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो। इत्थि० भुज०-अप्प०-अवत्त० ओघं। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पुरिस० तिण्णि पदा णाणा०भंगो। अवत्त० ओघं। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० भुज० अप्प[3]० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णिपलिदो० देसू०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। तिण्णिआउगाणं तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं। णवरि अवट्ठि० सगट्ठिदी०। मणुसाउ० तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त०

है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण होनेसे इनमें सब अन्य प्रकृतियोंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान बन जाता है, यह तो स्पष्ट ही है, पर इनमें दोनों आयुओंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तसे अधिक सम्भव नहीं है, इसलिए इनके चारों पदोंका अन्तरकाल अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें इसी क्रमसे जाननेकी सूचना की है सो अपनी-अपनी कायस्थिति तथा ध्रुवबन्धवाली और परावर्तमान प्रकृतियोंको समझकर यह अन्तर काल ले आना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

१५७. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। शेष पदोंका भङ्ग ओघके समान है। आठ कषायोंके दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। स्त्रीवेदके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य तथा कुछ अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तीन आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व

१ ता०-आ०प्रत्योः 'ज० ए० उ० अवत्त० इति पाठः। २ ता०-आ०प्रत्योः 'अट्ठक० तिण्णिपदा०' इति पाठः। ३ ता०-आ०प्रत्योः 'णीचा० अप्प०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। णिरयगदि-चदुजादि-णिरयाणु०-आदाव-थावरादि०४ भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं०। अवट्ठि[1]० णाणा०भंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं। अवट्ठि[2]० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेवट्ठिसाग० सद०। दोगदि-वेउ०-वेउ०अंगो०-दोआणु० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ तिण्णि पदा[3] णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसद०। आहार०२ तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। सम-चदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णिपलि० देसू०। तित्थ० ओघं। उच्चा०

प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर अपनी कायस्थितिप्रमाण है। मनुष्यायुके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। तथा इनके अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी और उद्योतके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। दो गति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और दो आनुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। तथा इनके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। औदारिकशरीर, औदारिक-शरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण

१ आ०प्रतौ–'सागरोवमसदपुधत्तं०। अवट्ठि' इति पाठः। २ आ०प्रतौ 'तेवट्ठिसागरोसदपुधत्तं। अवट्ठि०' इति पाठः। ३ ता० आ०प्रत्योः 'तस० २ तिण्णिपदा' इति पाठः।

भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णि पलि० देसू०।

है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। उच्चगोत्रके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ सब प्रकृतियोंके यथासम्भव सब पदोंका जघन्य अन्तर काल सुगम है। साथ ही भुजगार और अल्पतर पदका जहाँ उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है वह भी सुगम है, इसलिए इन अन्तरकालोंको छोड़कर शेष अन्तरकालका ही विचार करेंगे। पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विककी जो कायस्थिति कही है, उसके प्रारम्भमें और अन्तमें पाँच ज्ञानावरण आदिका अवस्थितपद हो यह भी सम्भव है और इस कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति हो यह भी सम्भव है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। मिथ्यात्व आदिके भुजगार और अल्पतर पद कुछ कम दो बार छयासठ सागर काल तक न हों, यह सम्भव है, क्योंकि जीवका इतने काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ रहना सम्भव है, इसलिए यहाँ इन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्ववत् ज्ञानावरणके समान बन जाता है, इसलिए इन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। आगे भी जिन प्रकृतियोंके उक्त दो पदोंका या सब पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। दो वेदनीय आदिके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे यह ओघके समान कहा है। स्पष्टीकरण ओघ प्ररूपणाके समय कर ही आये हैं। आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतर पदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है, क्योंकि इनका इतने काल तक बन्ध न होनेसे इन पदोंका उक्त काल तक अन्तर बन जाता है। ओघसे भी इन पदोंका इतना ही अन्तरकाल प्राप्त होता है, इसलिए यह ओघके समान कहा है। स्त्रीवेदके भुजगार अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण ओघमें घटित करके बतला आये हैं। यहाँ भी यह अन्तर इतना ही प्राप्त होता है, इसलिये यह अन्तर ओघके समान कहा है। पुरुषवेदके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर ओघ प्ररूपणाके समय साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण घटित करके बतला आये हैं। यहाँ भी यह अन्तर इतना ही प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ पुरुषवेदके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान कहा है। नपुंसकवेद आदिका कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर काल तक बन्ध न हो, यह सम्भव है। इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। नरकायु, तिर्यञ्चायु और देवायुका यहाँ सौ सागर पृथक्त्व काल तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ इन तीनों आयुओंका किसी एक जीवके एक साथ उक्त काल तक बन्ध नहीं होता, ऐसा ग्रहण नहीं करना चाहिए। किन्तु कभी नरकायुका, कभी मनुष्यायुका और कभी देवायुका उत्कृष्टरूपसे इतने काल तक बन्ध नहीं होता, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण प्राप्त होता है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि किसी भी प्रकृतिका बन्ध होते समय भुजगार और अल्पतरपदके समान अवस्थितपद होना ही चाहिए—ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५८. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं-

एकान्त नियम नहीं है। सामान्यसे एकेन्द्रियोंमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। पर यहाँ कायस्थिति इस कालसे न्यून है, इसलिए कायस्थितिके भीतर प्रारम्भमें और अन्तमें अवस्थित पद कराकर यह अन्तर काल कहा है। सर्वत्र अवस्थितपदके विषयमें यह नियम समझ लेना चाहिए। हाँ, जिन प्रकृतियों का एकेन्द्रियोंमें या अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें बन्ध नहीं होता, उनके अवस्थितपदका अन्तर काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे अधिक भी बन जाता है। मनुष्यायुका इनकी उत्कृष्ट कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें बन्ध हो तथा मध्यमें बन्ध न हो, यह सम्भव है, और बन्ध होते समय भुजगार आदि चारों पद भी सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इसके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। नरकगति आदिका अधिकसे अधिक एक सौ पचासी सागर काल तक बन्ध नहीं होता—ऐसा नियम है। उसके बाद नौवें ग्रैवेयकसे आकर मनुष्य होने पर इनका बन्ध होने लगता है, इसलिए इतने काल तक इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके न प्राप्त होनेसे यहाँ इनका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। उक्त मार्गणाओंमें तिर्यञ्चगति आदिका एकसौ त्रेसठ सागर काल तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, यह स्पष्ट ही है। आगे भी जिन प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। दो गति आदिके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपद साधिक तेतीस सागर काल तक न हों, यह सम्भव है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ साधिकसे दो मुहूर्त लेने चाहिए। मात्र मनुष्यगतिद्विकका सातवें नरकमें उत्पन्न कराकर यह अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिए और शेषका उपशमश्रेणिसे सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न कराकर यह अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिए। पञ्चेन्द्रियजाति आदिके तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल जैसा ज्ञानावरणकी अपेक्षा घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। तथा इन प्रकृतियोंका एक सौ पचासी सागर प्रमाण काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर कहा है। औदारिकशरीर आदिका भोगभूमिमें और उसके पहले सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य कहा है। तथा सातवें नरकमें औदारिकद्विकका और वहीं पर सम्यग्दृष्टिके वज्रर्षभनाराचसंहननका निरन्तर बन्ध सम्भव है। और वहाँसे निकलने पर भी इनका अवक्तव्यपद प्राप्त होनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लग सकता है। यतः यह काल साधिक तेतीस सागर होता है, अतः यह अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदिके भुजगार आदि तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर काल ज्ञानावरणके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। उच्चगोत्रका सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। तथा इसका कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है।

१५८. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारदुग-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु० -उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत०-चत्तारिआउ० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ज० एग०,उक्क० अंतो०। अवत्त० [णत्थि अंतरं]। सेसाणं[1] कम्माणं भुज०-अप्पद-०अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्त० जह० उक्क० अंतो० ।

१५६. कायजोगीसु धुवियाणं एइंदियभंगो[2] । णवरि अवत्त० णत्थि अंतरं। तिरिक्खगदितिगं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवरि अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखे० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा[3] लोगा। मणुसगदितिगं तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० ओघं। सेसाणं भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० उक्क० अंतो० । णवरि दोआउ०-[वेउव्वियछ०]-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो । मणुसाउ० ओघं । तिरिक्खाउ० एइंदियभंगो ।

मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, आहारकद्विक, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर, पाँच अन्तराय और चार आयुओंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा इनके अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—इन योगोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार आदि तीन पद कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे हों यह सम्भव है इसलिए सब प्रकृतियोंके इन पदोंका यह अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इन योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए सब प्रकृतियोंके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तके भीतर प्राप्त किया गया है। मात्र पाँच ज्ञानावरणादि ये ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं और जो ध्रुवबन्धिनी नहीं हैं उनका इन योगोंके कालमें दो बार बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए उनके अवक्तव्यपदके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा शेष प्रकृतियां परावर्तमान होनेसे उनका इन योगोंके कालमें अन्तर्मुहूर्तका अन्तर देकर दो बार बन्धका प्रारम्भ होना सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१५६. काययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चगतित्रिकके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगतित्रिकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। तथा तिर्यञ्चायुका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है।

१ ता०प्रतौ 'अवत्त० [एवं]। सेसाणं' आ०प्रतौ 'अवत्त०सेसाणं' इति पाठः। २ ता०आ०प्रत्योः 'धुवियाणं सादभंगो' इति पाठः। ३ ता०आ०प्रत्योः 'उक्क० संखेज्जा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६०. ओरालि०का०जोगि० पढमदंडओ मणुजोगिभंगो । णवरि अवट्टि० जह० एग०, उक्क० बावीसं वाससह०, देसू० । दोआउ० तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवाससह० सादि० । दोआउ०-वेउव्वियछक्क-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो । सेसाणं णाणा०भंगो । [णवरि अवत्त० जह० उक्क०] अंतो[1] ० ।

विशेषार्थ—यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय। एकेन्द्रियोंमें इन प्रकृतियोंके तीन पदोंका जो अन्तरकाल कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, क्योंकि एकेन्द्रियोंमें सामान्यरूपसे काययोग ही पाया जाता है, इसलिए काययोगियोंमें इन प्रकृतियोंके तीन पदोंका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान कहा है। मात्र एकेन्द्रियोंमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्य पद नहीं होता और काययोगियोंमें होता है, फिर यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्य पदके अन्तरकालका निषेध किया है। काययोगियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका असंख्यात लोकप्रमाण काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इन प्रकृतियोंके शेष पदोंका अन्तरकाल सुगम है। मनुष्यगतित्रिकके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर ओघमें कहे अनुसार यहाँ बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। खुलासा ओघप्ररूपणाको देखकर जान लेना चाहिए। पञ्चेन्द्रियोंमें काययोगका काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। इसलिए काययोगियोंमें दो आयु, वैक्रियिकषट्क आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका अन्तरकाल मनोयोगी जीवोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। मनुष्यायुका ओघमें और तिर्यञ्चायुका एकेन्द्रियोंके चारों पदोंकी अपेक्षा जो अन्तरकाल कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए मनुष्यायुके चारों पदोंके अन्तरकालको ओघके समान और तिर्यञ्चायुके चारों पदोंके अन्तरकालको एकेन्द्रियोंके समान जाननेकी सूचना की है। अब रहीं शेष ये प्रकृतियाँ—सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप उद्योत, दो विहायोगति और त्रस-स्थावर आदि दस युगल। ये सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं, इसलिए इनके सब पदोंका मूलमें कहे अनुसार अन्तरकाल बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है।

१६०. औदारिककाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। दो आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष होनेसे औदारिककाययोगवाले जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ

१ ता०आप्रत्योः 'णाणा०भंगो······अंतो०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६१. ओरा०मि० धुवियाणं भुज०अप्पद०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। देवगदिपंचग० भुज० णत्थि अंतरं। सेसाणं भुज०-अप्पद०- अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। णवरि मिच्छ० अवत्त० णत्थि अंतरं।

१६२. वेउव्वियका०-आहारका० मणजोगिभंगो। वेउव्वियमि० पंचणा[1]०-

कम बाईस हजार वर्ष प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका अन्तर मनोयोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट है। यहाँ प्रथम दण्डकमें वे ही प्रकृतियाँ ली गई हैं जो काययोगीके प्रथम दण्डकमें गिना आये हैं। यहाँ मूलमें 'मणजोगिभंगो' के स्थानमें 'कायजोगिभंगो' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि काययोगीके प्रथम दण्डककी प्रकृतियाँ ही यहाँ पर ली गई हैं। वैसे तीन पदोंकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार दोनोंमें एक समान है, इसलिए कोई भी पाठ बन जाता है। औदारिककाययोगमें प्रथम त्रिभागमें और अन्तमें आयुबन्ध होने पर आयुबन्धमें साधिक सात हजार वर्षका अन्तर काल प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। दो आयु आदि प्रकृतियोंके सब पदोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। शेष सब प्रकृतियाँ यद्यपि परावर्तमान हैं, फिर भी उनके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान कहा है। मात्र यहाँ इनका अवक्तव्यपद भी सम्भव है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है। शेष प्रकृतियाँ ये हैं—साताद्विक, सात नोकषाय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्र।

१६१. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगतिपञ्चकके भुजगार पदका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार आदि तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका निर्देश काययोगी मार्गणाका कथन करते समय किया ही है। औदारिकमिश्रकाययोगमें देवगतिपञ्चकका एक मात्र भुजगार पद ही सम्भव है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष सब प्रकृतियाँ परावर्तमान हैं और उनके चारों पद सम्भव हैं, इसलिए उनके चारों पदोंका अन्तरकाल कहा है। मात्र इस योगमें सासादनसे मिथ्यात्वमें जाना सम्भव है और इसलिए मिथ्यात्व प्रकृतिका अवक्तव्य पद भी सम्भव है, पर इसमें मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति और उसके बाद पतन सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ मिथ्यात्व प्रकृतिके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है।

१६२. वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह

---

1 ता०प्रतौ 'वेउव्वि० मिच्छस० पंचणा०' आ०प्रतौ 'वेउविगि० मिच्छ० पंचणा' इतिपाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० भु० णत्थि अंतरं। सेसाणं भुज० णत्थि अंतरं। अवत्त० जह० उक० अंतो०। मिच्छत्त० अवत्त० णत्थि० अंतरं०। आहारमि० वेउव्वियमिस्स०-भंगो। णवरि आउ० भुज०-अवत्त० णत्थि अंतरं।

१६३. कम्मइग० धुवियाणं देवगदिपंच० भुज० णत्थि अंतरं। सेसाणं भुज०-अवत्त० णत्थि अंतरं।

कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पांच अन्तरायके भुजगार पदका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके भुजगारपदका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि यहां मिथ्यात्वप्रकृतिका अवक्तव्यपद सम्भव है पर उसका अन्तरकाल नहीं है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुके भुजगार और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोगमें बँधनेवाली प्रकृतियोंकी व्यवस्था मनोयोगी जीवोंके समान बन जाती है, इसलिए इनमें मनोयोगी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें पांच ज्ञानावरणादिका एक भुजगारपद होता है, इसलिए उसके अन्तरकालका निषेध किया है। मात्र इनमेंसे मिथ्यात्व प्रकृतिका यहां अवक्तव्यपद भी सम्भव है, क्योंकि जो सासादनसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वमें जाता है उसके मिथ्यात्वप्रकृतिका यह पद होता है। पर दूसरी बार इस प्रकार यहां इसके अवक्तव्यपदकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए अन्तमें इस प्रकृतिके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष जितनी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं उनका यहाँ पर भुजगारपद तो एक बार ही प्राप्त होता है, इसलिए उसके अन्तरकालका निषेध किया है। हाँ अवक्तव्यपदकी प्राप्ति दो बार अवश्य सम्भव है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगमें अपनी बन्धको प्राप्त होनेवाली अन्य सब प्रकृतियोंका भङ्ग तो वैक्रियिकमिश्रकाययोगके समान बन जाता है पर यहाँ आयुकर्मका भी बन्ध सम्भव है और उसके दो पद भी सम्भव हैं, इसलिए इस विशेषताका अलगसे निर्देश किया है। यहाँ देवायुके दोनों पदोंका अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि इस योगके कालमें दो बार आयु बन्धका प्रारम्भ सम्भव नहीं है, इसलिए आयुके दोनों पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है।

१६३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और देवगतिपञ्चकके भुजगार-पदका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका और देवगतिपञ्चकका बन्ध होता है उनका एक मात्र भुजगार पद होता है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके सिवा शेष सब प्रकृतियां परावर्तमान हैं, अतः उनके भुजगार और अवक्तव्य ये दो पद तो सम्भव हैं, पर उनका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता, इसलिए उनके अन्तरकालका निषेध किया है। कारण स्पष्ट है।

---

1 ता० अ०प्रत्योः 'अंतो०।......अवत्त०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६४. इत्थिवेदेसु पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०[1]-पंचंत० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलि० देसू०। अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। णिद्दा-पयला-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० णत्थि० अंतरं। दोवेदणी०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। अट्ठकसा० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। इत्थि० मिच्छत्तभंगो। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। एवं इत्थिवेदभंगो णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा०। पुरिस०-पंचिंदि०-समचदु०-पसत्थ०-तस-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० तिण्णिपदा० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। णिरयाउ० तिण्णिपदा० जह० एग०,

१६४. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य-पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। स्त्रीवेदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके समान नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका भङ्ग जानना चाहिए। पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। नरकायुके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और सबका उत्कृष्ट

१ ता०प्रतौ 'पंचणा० चदुसंज०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पगदिअंतरं। दो आउ० तिण्णिपदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। देवाउ० अवट्ठि० जह० ए०, उक्क० पलिदोवमसद०। भुज०-अप्प० जह० ए०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठावण्णं[1] पलिदो० पुव्वकोडि-पुध०। णिरयगदि-देवगदि-तिण्णिजादि-वेउवि०-वेउव्वि०अंगो०-णिरय०-देवाणुपु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलि० सादि०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। मणुस०-ओरा०-अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० देसू०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। ओरा० भुज०-अप्प० ज० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि०। पर०-उस्सा०-बादर-पज्जत्त-पत्ते० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०-भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलि० सादि०। आहारदुगं तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। तित्थ० दो पदा जह० एग०,

अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। दो आयुओंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। देवायुके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्वप्रमाण है। भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य है। नरकगति, देवगति, तीन जाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। मनुष्यगति औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार और अल्पतर-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ तीन पल्य है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। औदारिकशरीरके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अव-स्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य है। आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका जघन्य

१ ता०प्रतौ 'दोआउ० तिण्णिपदा० ज० ए० अवत्त० ज० अंतो० उ०-कायट्ठिदि०। देवाउ० अवट्ठि० ज० ए० उ० पलिदोवमसदपुध०। भुज अप्प० ज० ए० अवत्त० ज० अंतो० उ० अट्ठावण्णं' आ०प्रतौ दोआउ० तिण्णिपदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठावण्णं, इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० अंतो० । अवट्ठि० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । अवत्त० णत्थि अंतरं ।

अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। तथा अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदिका अवस्थितपद कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो पर मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए स्त्रीवेदी जीवोंमें इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र स्त्यानगृद्धित्रिकके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल प्राप्त करनेके लिए प्रारम्भमें और अन्तमें सम्यक्त्व प्राप्त कराकर और बादमें मिथ्यात्वमें ले जाकर प्राप्त करना चाहिए। निद्रा आदिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है यह स्पष्ट ही है। यद्यपि स्त्रीवेदमें निद्रादिककी आठवें गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति सम्भव है पर ऐसा जीव नौवें गुणस्थानमें जाकर स्त्रीवेदी न रहकर अपगतवेदी हो जाता है, इसलिए स्त्रीवेदमें इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। दो वेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। इन प्रकृतियोंके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है यह स्पष्ट ही है। देशसंयम और संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कालप्रमाण है और इस कालमें क्रमसे अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। इनके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है यह स्पष्ट ही है। अवक्तव्यपद अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे तथा कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो यह सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदका अन्य सब भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। मात्र इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य ही प्राप्त होता है, क्योंकि स्त्रीवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य है। तात्पर्य यह है कि किसी स्त्रीवेदी जीवने स्त्रीवेदका अवक्तव्यबन्ध करके बादमें सम्यक्त्व प्राप्त किया और अपने उत्कृष्ट काल तक उसके साथ रहकर बादमें मिथ्यात्वमें जाकर पुनः स्त्रीवेदका अवक्तव्यबन्ध किया तो इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण प्राप्त हो जाता है। नपुंसकवेद आदिका भङ्ग स्त्रीवेदके समान घटित होनेसे उसके समान कहा है। स्त्रीवेदमें पुरुषवेद आदिका सम्यक्त्वके कालमें निरन्तर बन्ध होता रहता है, अतः इस कालके आगे पीछे इनका अवक्तव्यपद प्राप्त होनेसे इसका अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है यह स्पष्ट ही है। नरकायुका पूर्वकोटिकी आयुवाले जीवके त्रिभागके प्रारम्भमें और अन्तमें बन्ध होकर चार पद हों और मध्यमें बन्ध न होनेसे न हों यह सम्भव है, इसके प्रकृतिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी इतना ही है, इसलिए यहाँ नरकायुके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुमेंसे किसी एकका कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें बन्ध किया और मध्यमें नहीं किया, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। कोई स्त्रीवेदी जीव देवायुका बन्ध कर पचवन पल्यकी आयुवाली देवी हुआ। पुनः वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटिपृथक्त्वकाल तक स्त्रीवेदके साथ परिभ्रमण कर तीन पल्यकी आयुके साथ मनुष्यिनी या तिर्यञ्चनी

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

१६५. पुरिसेसु पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ णिद्दादंडओ सादा०दंडओ अट्ठकसायदंडओ इत्थिवेददंडओ पंचिंदियपज्जत्तभंगो। णवरि पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज० पंचंत० अवत्तव्वं णत्थि। णिद्दादंडओ अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। पुरिस० तिण्णिपदा० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० दे० अंतोमुहुत्त०। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि०

हुआ और आयुके अन्तमें पुनः देवायुका बन्ध किया। इसप्रकार देवायुके दो बार बन्धके साथ चार पदोंके प्राप्त होनेमें पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्यका उत्कृष्ट अन्तर आता है, अतः यह अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। देवीके नरकगति आदिका बन्ध नहीं होता। तथा वहाँसे आनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्तकाल तक इनका बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य कहा है। देवगतिचतुष्कको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंका देवी होनेके पूर्व भी अन्तर्मुहूर्तकाल तक बन्ध नहीं होता, यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए। इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। उत्तम भोगभूमिमें सम्यग्दृष्टि होनेपर मनुष्यगति आदिका बन्ध नहीं होता और वहाँ सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है, इसलिए यहाँ इनके दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण कहा है। अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तथा देवीके सम्यक्त्वके कालमें कुछ कम पचवन पल्य तक इनका निरन्तर बन्ध होते रहनेसे अवक्तव्य पद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके उक्त पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। औदारिकशरीरके तीन पदोंका अन्तरकाल तो मनुष्यगतिके समान ही है। मात्र इसके अवक्तव्य पदके अन्तरकालमें फरक है। बात यह है कि देवीके निरन्तर औदारिकशरीरका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचवन पल्य बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। परघात आदिके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर औदारिकशरीरके समान ही घटित कर लेना चाहिए। इनके शेष तीन पदोंका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। आहारकद्विकका कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें बन्ध हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। मनुष्यिनीके कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इसके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ इसके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, क्योंकि इसके बन्धका प्रारम्भ होनेपर ही एकमात्र इसका अवक्तव्यपद होता है, अन्यका नहीं। यद्यपि उपशमश्रेणीसे उतरनेपर स्त्रीवेदमें पुनः इसका अवक्तव्यपद सम्भव है, .र उपशमश्रेणिमें मार्गणा बदल जाती है, अतः यहाँ इसके अवक्तव्यपदकके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

१६५. पुरुषवेदी जीवोंमें प्रथमदण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक, निद्रादण्डक सातावेदनीयदण्डक, आठ कषायदण्डक और स्त्रीवेददण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका अवक्तव्यपद नहीं है। निद्रादण्डकके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक दो छयासठ सागर है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादि० तिण्णि पलि० देसू० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । णिरयाउ० इत्थि०भंगो । दोआउ० पंचिंदियभंगो । देवाउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । अवट्ठि० जह० एग० उक्क० कायट्ठिदी० । णिरयग०-चदुजादि-णिरयाणु०-आदाव-थावरादि०४ तिण्णि पदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । आरणच्चुदि सम्मत्तं गहेदूण तदो बेछावट्ठिसागरोवमाणि भमिदूण-सव्वएँक्कत्तीसं गदो मिच्छत्तं गदो ताओ तं णादूण केइं पुणो बंधदि । तिरिक्खगदितिगं पंचिंदियपज्जत्तभंगो । मणुसगदिपंचग० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० सादि० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । देवगदि०४ भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी० । पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-बादर-पजत्त०-पत्ते० तिण्णि पदा णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेवट्ठिसाग०सदं० । आहारदुगं तिण्णिपदा जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो० उक्क० कायट्ठिदी० । समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० तिण्णि०

और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। नरकायुका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय जीवोंके समान है। देवायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। आरण-अच्युत कल्पमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर उसके बाद दो छयासठ सागर काल तक भ्रमण करनेके बाद सम्पूर्ण इकतीस सागरको बिताकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो उसका अनुभव करता हुआ उक्त प्रकृतियोंमेंसे किन्हीं प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। मनुष्य-गतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काय-स्थितिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अव-स्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। आहारकद्विकके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मु-हूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदा णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णि० पलि० देसू०। तित्थ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क अंतो०। अवट्ठि० ओघं। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०।

सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें प्रथमादि दण्डकोंका जो अन्तरकाल कहा है, वह पुरुषवेदी जीवोंमें भी बन जाता है, इसलिए इसे यहाँ पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंके समान कहा है। विशेष खुलासा पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें इन दण्डकोंके अन्तरकालको देखकर कर लेना चाहिए। मात्र पुरुषवेदियोंमें पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता, अतः उसका निषेध किया है। किन्तु निद्रादिकके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल बन जाता है, इसलिए उसका अलगसे विधान किया है। तथा अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें अपूर्वकरणमें इनका अबन्धक होकर और सवेद भागमें मरकर देव होनेपर इनका बन्धक होनेसे इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल कायस्थिति प्रमाण प्राप्त होता है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा जो दो छयासठ सागर काल तक गुणस्थान प्रतिपन्न रहता है, उसके इतने काल तक पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। इसी प्रकार नपुंसकवेद आदिका भी उक्त काल तक बन्ध नहीं हो यह सम्भव है, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागर कहा है। तथा इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। नरकायुका स्त्रीवेदी जीवोंमें और दो आयुका पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें जो अन्तरकाल घटित करके बतलाया है, उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेना चाहिए। कोई मनुष्य पूर्व कोटिकी आयुके प्रथम त्रिभागमें देवायुके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य ये तीन पद करे, उसके बाद देव होकर और च्युत होकर पुनः पूर्वकोटि आयुके अन्तमें देवायुके उक्त तीन पद करे तो यहाँ इस आयुके उक्त तीन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण प्राप्त होनेसे वह साधिक तेतीस सागर कहा है। इसके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। नरकगति आदिका पुरुषवेदीके एक सौ त्रेसठ सागर तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह सुगम है। पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके सब पदोंका जो अन्तर काल कहा है, वह यहाँ अविकल बन जानेसे इसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। साधिक तीन पल्य तक मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। किसी जीवने मनुष्यगतिपञ्चकका विजयादिकमें अवक्तव्यपद किया। पुनः मर कर वह पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ। तथा पुनः मरकर वह विजयादिकमें उत्पन्न हुआ और मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध करने लगा। इस प्रकार इसके इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर देखा जाता है, इसलिए वह उक्त कालप्रमाण कहा है। उपशमश्रेणिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थि०भंगो। णवरि अवट्ठि० ओघं। थीणगिद्धितिगदंडओ दोपदा जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। अवट्ठि० ओघं। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल०। णिद्दा-पयलदंडओ ओघं। णवरि अवत्त० णत्थि। असाददंडओ अट्ठकसायदंडओ ओघो। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० भुज०-अप्प० मिच्छत्तभंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। अवट्ठि० ओघं। पुरिस०-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। तिण्णिआउ० वेउव्वि०छक्कं मणुसगदितिगं आहारदुगं सव्वपदा ओघं। देवाउ० मणुसि०भंगो।

अपूर्वकरण गुणस्थानमें देवगतिचतुष्ककी बन्धव्युच्छित्ति कर और इस गुणस्थानको प्राप्त होनेके पूर्व मरकर जो तेतीस सागरकी आयुके साथ देवोंमें उत्पन्न होता है, उसके इतने काल तक इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक तेतीस सागर कहा है। मात्र पहले और बादमें इन प्रकृतियोंके यथास्थान भुजगार आदि पद प्राप्तकर यह अन्तरकाल लाना चाहिए। इनके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है सो उसे देखकर घटित कर लेना चाहिए। तथा पुरुषवेदीके इनका एक सौ त्रेसठ सागर तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। आहारकद्विकका कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें बन्ध हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। समचतुरस्र-संस्थान आदिके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा इनका कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तीर्थङ्करप्रकृतिके अन्य पदोंका अन्तरकाल तो स्पष्ट है। मात्र अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल जो कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है सो वह जिस भवमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ होता है, उस भवकी अपेक्षासे जानना चाहिए। कारण कि जिस भवमें तीर्थङ्करका उदय होता है, उसमें उसका उपशमश्रेणिपर आरोहण नहीं होता, यह बात इसी अन्तरकालसे ज्ञात होती है।

१६६. नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदवाले जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। स्त्यानगृद्धित्रिक दण्डकके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। निद्रा-प्रचलादण्डकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। असातावेदनीयदण्डक और आठ कषायदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिक और आहारकद्विकके सब पदोंका भङ्ग ओघके समान है। देवायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खगदितिगं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । सेसपदा ओघं । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । अवट्ठि० ओघं । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । ओरा० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी० देसू० । अवट्ठि०-अवत्त० ओघं । एवं ओरालि०अंगो०-वज्जरि० । णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । वज्जरिसभ० तेत्तीसं० देसू० । तित्थ० भुज०-अप्प० जह० ए०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि साग० सादि० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडि-तिभागं देसू० ।

तिर्यञ्चगतित्रिकके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । शेष पदोंका भङ्ग ओघके समान है । चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । औदारिकशरीरके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननका भङ्ग जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । तथा वज्रर्षभनाराचसंहननके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्व कोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तराय इस प्रथम दण्डकका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है । मात्र नपुंसकवेदी जीवोंकी कायस्थिति अनन्तकालप्रमाण होनेसे इनमें इस दण्डकके अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जानेसे वह ओघके समान कहा है । स्त्यानगृद्धित्रिक दण्डकसे स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये आठ प्रकृतियाँ ली गई हैं । नपुंसकवेदी जीवोंमें इनका कुछ कम तेतीस सागर काल तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतर पदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । इनके अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है । तथा नपुंसकवेदी जीवके अर्धपुद्गल परावर्तनकालके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका अवक्तव्यपद हो और मध्यमें न हो, यह भी सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है । निद्रा-प्रचलादण्डकसे निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और निर्माण ये प्रकृतियाँ ली गई हैं सो इन प्रकृतियोंका भङ्ग ओघप्ररूपणामें जिसप्रकार कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए ओघके समान जाननेकी सूचना की है। यद्यपि यहाँ इनका अवक्तव्यपद तो सम्भव है पर उसका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, क्योंकि इस मार्गणामें इनका अवक्तव्यपद होकर पुनः अवक्तव्यपद होनेके पूर्व नियमसे मार्गणा बदल जाती है, इसलिए इस मार्गणामें इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। सातावेदनीयदण्डकमें ये प्रकृतियाँ ली गई हैं—सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति। आठ कषायदण्डककी प्रकृतियाँ स्पष्ट ही हैं। इन दोनों दण्डकोंके चारों पदोंका अन्तरकाल ओघके समान यहाँ घटित हो जानेसे वह ओघके समान कहा है। स्त्रीवेद आदि सत्रह प्रकृतियोंका बन्ध यहाँ कुछ कम तेतीस सागर तक न हो, यह सम्भव है। मिथ्यात्वप्रकृतिके विषयमें भी यही बात है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदका अन्तरकाल मिथ्यात्वके समान घटित हो जानेसे वह उसके समान कहा है। इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर इसी कारण घटित कर लेना चाहिए। तथा इनके अवस्थित पदका अन्तर ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। पुरुषवेद आदि छह प्रकृतियोंके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होनेसे वह उसके समान कहा है। तथा नपुंसकवेदीके कुछ कम तेतीस सागर तक इनका निरन्तर बन्ध सम्भव है और इनका अवक्तव्य पद इस कालके आगे-पीछे ही सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीन आयु आदि चौदह प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान और देवायुका भङ्ग मनुष्यिनीके समान है, यह स्पष्ट ही है। अलग-अलग स्पष्टीकरण देखकर कर लेना चाहिए। यहाँ तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध कुछ कम तेतीस सागर तक हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। शेष दो पदोंका भङ्ग ओघके समान है, यह ओघ प्ररूपणाको देखकर घटित कर लेना चाहिए। चार जाति आदि नौ प्रकृतियोंका बन्ध नरकमें नहीं होता और वहाँ प्रवेश करनेके पूर्व और वहाँसे निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक नहीं होता, इसलिए यहाँ इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि सात प्रकृतियोंका बन्ध नरकमें और वहाँ प्रवेश करनेके पूर्व व निकलनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक नियमसे होता रहता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्चके कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक औदारिकशरीरका बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। शेष पदोंका भङ्ग ओघके समान है, इसलिए वहाँसे देखकर घटित कर लेना चाहिए। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननका अन्य भङ्ग औदारिकशरीरके समान है। केवल इनके अवक्तव्यपदके अन्तरकालमें फरक है। बात यह है कि इस मार्गणामें औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग का साधिक तेतीस सागर काल तक और वज्रर्षभनाराचसंहननका कुछ कम तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव होनेसे इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। नपुंसकवेदमें साधिक तीन सागर तक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इस प्रकृतिके अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भमें और अन्तमें अवस्थितपद कराकर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। तथा नरकायुके बन्धवाले नपुंसकवेदी मनुष्यमें एक पूर्वकोटिके कुछ कम त्रिभागप्रमाण काल तक ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है। ऐसे मनुष्यने तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धके प्रारम्भमें अवक्तव्यपद किया और द्वितीय व तृतीय नरकमें उत्पन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७. अवगदवे० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं।

१६८. कोधकसाइसु पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं मणजोगिभंगो। एवं माण-मायाणं। णवरि तिण्णि-संज०-दोसंज०। लोभे० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० भुज-अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं मणजोगिभंगो।

१६९. मदि-सुदे धुवियाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखेंज्जदि०। दोवेद०-छण्णोक०-थिरादितिण्णयु० भुज०-

---

होकर व अन्तर्मुहूर्तमें सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृतिका पुनः बन्धका प्रारम्भ कर अवक्तव्यपद किया। इस प्रकार इस प्रकृतिके अवक्तव्यपदके दो बार बन्ध होनेमें उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त काल प्रमाण प्राप्त होनेसे वह उतना कहा है।

१६७. अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा अपगतवेदी नौवें और दसवें गुणस्थानका काल और उपशमश्रेणिकी अपेक्षा अपगतवेदका काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है, इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा क्षपकश्रेणिमें तो इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद होता ही नहीं। हाँ उपशमश्रेणिमें इनका अवक्तव्यपद होता है, पर वह उतरते समय एक बार ही होता है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्य-पदके अन्तरकालका निषेध किया है।

१६८. क्रोध कषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। इसी प्रकार मान और माया कषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें क्रमसे तीन संज्वलन और दो संज्वलन लेने चाहिए। लोभकषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ चारों कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंका अन्तर-काल मनोयोगी जीवोंके समान बन जाता है। मात्र श्रेणिमें क्रोध कषायमें चार संज्वलनोंका, मानकषायमें तीन संज्वलनोंका और मायाकषायमें दो संज्वलनोंका बन्ध सम्भव है। तथा लोभ कषायमें एक भी संज्वलनका बन्ध न हो यह भी सम्भव है, इसलिए इस फरकका बोध करानेके लिए विशेषरूपसे उल्लेख किया है।

१६९. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्प-तरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। दो वेदनीय, छह नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञाना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। णवुंस०-पंचसंठा०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० भुज०-अप्प० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू०। अवट्ठि० णाणा०भंगो। चदुआउ० वेउव्वियछक्कं मणुसगदितिगं भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० सादि०। अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। णवरि उज्जो० अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० सादि०। [चदुजादि-आदाव-थावर४ भुज०-अप्प० जह० ए०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं सादि०। अवट्ठि० ओघं।] पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। ओरालि० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० [तिण्णि पलिदो० देसू०। अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णिपलिदो० देसू०। ओरालि०अंगो० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० देसू०। अवट्ठि० ओघं। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं सादि०। णीचा० तिण्णिपदा० णवुंसग-

वरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तथा अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। चार आयु, वैक्रियिकषट्क और मनुष्यगतित्रिकके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके भुजगार और अल्पतर-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि उद्योतके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रस-चतुष्कके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिकशरीरके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अवस्थित और अवक्तव्य पदका भङ्ग ओघके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। औदारिक-शरीर आङ्गोपाङ्गके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नीचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग

१ ता० प्रतौ 'उक्क० तेत्तीसं सादि०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो । अवत्त० ओघं ।] ....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

नपुंसकवेदके समान है। तथा अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—इन दोनों अज्ञानोंमें सैंतालीस ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ इनका अवक्तव्यपद नहीं है,यह स्पष्ट ही है। दो वेदनीय आदि चौदह प्रकृतियाँ यद्यपि परावर्तमान हैं, पर इनके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान बन जानेसे वह ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनका अन्तर्मुहूर्तमें दो बार बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। नपुंसकवेद आदि सोलह प्रकृतियोंका उत्तम भोगभूमिमें पर्याप्त होनेपर कुछ कम तीन पल्यतक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार अल्पतर और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। इनके अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। चार आयु आदि तेरह प्रकृतियोंके चारों पदोंका भङ्ग जो ओघमें कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध इन अज्ञानोंमें साधिक इकतीस सागरतक नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर कहा है। इनके अवस्थित और अवक्तव्य पदका भङ्ग ओघके समान है,यह स्पष्ट ही है। मात्र उद्योत परावर्तमान प्रकृति है, इसलिए इसका अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उनकी कायस्थितिप्रमाण कालतक निरन्तर बन्ध सम्भव नहीं है। हाँ,नौवें ग्रैवेयकमें इसका बन्ध नहीं होता और आगे-पीछे भी अन्तर्मुहूर्त कालतक इसका बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर ही जानना चाहिए। चार जाति आदि नौ प्रकृतियोंका बन्ध सातवें नरकमें नहीं होता और आगे-पीछे भी अन्तर्मुहूर्त कालतक इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके अवस्थितपदका भङ्ग ओघके समान है यह स्पष्ट ही है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि सात प्रकृतियोंके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। तथा सातवें नरकमें पूरी आयुप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागाभागाणुगमो

१७०. ···मिस्स० भंगो। एवं एदेण बीजपदेण याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

परिमाणाणुगमो

१७१. परिमाणं दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० केत्तिया? अणंता। अवत्त० केत्तिया? संखेज्जा। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरालि० तिण्णि पदा केत्तिया? अणंता। अवत्त० केत्तिया? असंखेज्जा। तिण्णिआउ०

कालतक और आगे-पीछे अन्तर्मुहूर्त कालतक इनका निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। औदारिकशरीरका उत्तम भोग-भूमिमें कुछ कम तीन पल्यतक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर ओघमें जो कहा है वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। समचतुरस्रसंस्थान आदि पाँच प्रकृतियोंके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान घटित हो जाता है, यह स्पष्ट ही है। तथा उत्तम भोगभूमिमें कुछ कम तीन पल्यतक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। औदारिकशरीर अङ्गोपाङ्गका अन्य सब विकल्प औदारिक शरीरके समान घटित हो जाता है। मात्र अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट अन्तरकालमें फरक है। बात यह है कि इसका सातवें नरकमें तो निरन्तर बन्ध होता ही है। तथा वहाँ जानेके पूर्व और निकलनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त कालतक बन्ध होता रहता है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। नीचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग नपुंसकवेदके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओघके समान बन जानेसे उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

भागाभागानुगम

१७०.........मिश्रके समान भङ्ग है। इसप्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

परिमाणानुगम

१७१. परिमाण दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। तीन आयु और वैक्रियिकषट्कके भुजगार, अल्पतर अव-

१ ता०प्रतौ 'ओरालि० भुज०अप्प०ज० ए० उ० ति०.........[अत्र ताड़पत्रद्वयं विनष्टम्। एकं क्रमांकरहितं ताड़पत्रं विद्यते]...मिस्सभंगो। एवं एदेण बीज़ेण याव' आ०प्रतौ 'ओरालि० भुज०अप्प० जह० एग०, उक्क०.......................मिस्सभंगो। एदेण बीजपदेण याव' इति पाठः। अत्र आ०प्रतौ 'यहाँसे २०८ ताड़पत्र नहीं है।' इत्यपि सूचना विद्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियछक्कं भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त० केत्तिया० ? असंखेंज्जा । आहारदुगं चत्तारि पदा केत्तिया ? संखेंज्जा[1] । तित्थ० तिण्णि पदा केत्तिया ? असंखेंज्जा। अवत्त० केत्तिया ? संखेंज्जा । सेसाणं सादादीणं चत्तारि पदा केत्तिया ? अणंता । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरा०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

स्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकद्विकके चारों पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ? इसीप्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच ज्ञानावरणादि पैंतीस प्रकृतियोंके भुजगार आदि तीन पद एकेन्द्रियोंके भी बन जाते हैं, इसलिए इनका परिमाण अनन्त कहा है । तथा इनका अवक्तव्य पद या तो सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनीके सम्भव है या ऐसे यथासम्भव मनुष्योंके मरकर देव होनेपर उनके प्रथम समयमें सम्भव है । ये जीव यतः संख्यातसे अधिक नहीं होते, अतः इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । स्त्यानगृद्धित्रिक आदि तेरह प्रकृतियोंके तीन पद एकेन्द्रियोंके भी बन जाते हैं, इसलिए इनका परिमाण अनन्त कहा है । तथा इनका अवक्तव्यपद संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें प्राप्त होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है । नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इन तीन आयुओंके और वैक्रियिकषट्कके बन्धक जीव ही असंख्यात हैं, इसलिए इनके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है । आहारकद्विकके चार पद तो अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणमें ही होते हैं, इसलिए इनके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पद नरक, मनुष्य और देव इन तीनों गतियोंमें सम्भव हैं, इसलिए इसके भुजगार आदि तीन पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है । यद्यपि इसका अवक्तव्य-पद भी उक्त तीन गतियोंमें होता है, पर वह तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करनेवाले सब जीवोंके सर्वदा नहीं होता । एक तो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनके पुनः इसका बन्ध प्रारम्भ करने पर होता है । दूसरे मनुष्य-गतिमें जो तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ करता है उसके होता है या उपशमश्रेणिसे गिरकर आठवें गुणस्थानमें इसका बन्ध प्रारम्भ करने पर होता है । तीसरे तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जो मनुष्य उपशमश्रेणिमें इसकी बन्धव्युच्छित्ति करनेके बाद मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है, उसके होता है । यतः ऐसे जीवोंका जोड़ एक समयमें संख्यातसे अधिक नहीं होता। अतः इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । शेष रहीं दो वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्र सो इन साठ प्रकृतियोंके चारों पद एकेन्द्रियोंके भी सम्भव हैं, अतः इनका परिमाण अनन्त कहा है । यहाँ काययोगी आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघ प्ररूपणाकी अपेक्षा यह परिमाण अविकल घटित हो जाता है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है ।

---

१. ता०प्रतौ 'आहारदु०······संखेज्जा' आ०प्रतौ 'आहारदुगं·····केत्तिया ? संखेज्जा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२. ओरालि०मि० ओघं। कम्मइग०-अणाहार० धुवियाणं भुज० केत्तिया? अणंता। परियत्तमाणियाणं भुज०-अवत्त० केत्तिया? अणंता। एदेसिं तिण्णि पदा देवगदिपंचग० भुज० केत्तिया? संखेंज्जा। वेउ०मि० धुवियाणं भुजगारं केत्तिया? असंखें०। सेसाणं भुज० अवत्त० कें०? असंखेंज्जा। णवरि कम्म०-अणाहार० मिच्छ० अवत्त० केत्तिया? असंखें०। एवं एदेण बीजपदेण अणाहारगं त्ति णेदव्वं।

एवं परिमाणं समत्तं।

---

१७२. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, पदवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। परावर्तमान प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्यपदवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। मात्र इन तीन मार्गणाओंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार पदवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्य पदवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्य पदवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका परिमाण अनन्त है, इसलिए उनमें बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंका भङ्ग ओघके समान बन जानेसे वह उसके समान कहा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंका भी परिमाण अनन्त है, अतः इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका और परावर्तमान प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका परिमाण अनन्त कहा है। मात्र पूर्वोक्त तीन मार्गणाओंमें देवगतिपञ्चकके बन्धक जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि जो देव और नारकी सम्यक्त्वके साथ मरते हैं वे संख्यात ही होते हैं और जो मनुष्य सम्यक्त्वके साथ मरकर तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, वे भी संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें उक्त पाँच प्रकृतियोंके भुजगार पदवालोंका परिमाण संख्यात कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका परिमाण असंख्यात है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदवालोंका और परावर्तमान प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्य पदवालोंका परिमाण असंख्यात कहा है। यहाँ कार्मण काययोगी और अनाहारक जीवोंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदवाले असंख्यात होते हैं-यह जो कहा है सो उसका कारण यह है कि जो सासादनसम्यग्दृष्टि इन मार्गणाओंमें मिथ्यात्वको प्राप्त होते हैं, वे असंख्यातसे अधिक नहीं हो सकते, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका परिमाण ही असंख्यात है। इस प्रकार यहाँ तक जो परिमाण कहा है, उसे बीजपद मानकर उसके अनुसार अन्य सब मार्गणाओंमें बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके यथासम्भव भुजगार आदि पदवाले जीवोंका परिमाण ले आना चाहिए।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

---

१. आ०प्रतौ 'आहार०' इति पाठः। २ ता०प्रतौ 'णवरि कम्म० अणाहार०। मिच्छ०' इति पाठः। ३ ता०प्रतौ 'एदेण बीजेण' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्ताणुगमो

१७३. खेत्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ० वेउव्वि०छक्कं आहारदुगं तित्थ० चत्तारि पदा धुवियाणं ओरालियसरीरस्स य अवत्तव्वगाणं केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेंज्जदिभागे । सेसाणं सव्वपदा केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । एवं अणंतट्ठाणेसु णेदव्वं । सेसाणं सव्वेसिं सव्वे भंगा ओघं देवगदिभंगो । णवरि एइंदिय-पंचकायाणं ओधादो साधेदव्वो ।

फोसणाणुगमो

१७४. फोसणाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-

क्षेत्रानुगम

१७३. क्षेत्रानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके चार पदोंके बन्धक जीवोंका तथा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका क्षेत्र कितना है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र कितना है ? सर्व लोक है । इसी प्रकार सब अनन्त संख्यावाली मार्गणाओंमें जानना चाहिए । शेष मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंका भङ्ग ओघसे देवगतिके समान जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें ओघके अनुसार साध लेना चाहिए ।

विशेषार्थ—तीन आयु, वैक्रियिकषट्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यात हैं तथा आहारकद्विकके बन्धक जीव संख्यात हैं । तथा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं और स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यात हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंमेंसे तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदवालोंका तथा शेष प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । इनके सिवा जो शेष प्रकृतियाँ रहती हैं अर्थात् ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ तो अवक्तव्यपदके सिवा शेष पदोंकी अपेक्षा यहाँ शेष पदसे ली गई हैं और इनके सिवा परावर्तमान सब प्रकृतियाँ यहाँ „सब पदोंकी अपेक्षा ली गई हैं सो उन सबके सब पदवालोंका क्षेत्र सर्व लोक है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके ये पद एकेन्द्रियोंमें भी पाये जाते हैं । यह ओघप्ररूपणा अनन्त संख्यावाली सब मार्गणाओंमें अपनी-अपनी बँधनेवाली प्रकृतियोंके अनुसार घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके अनुसार जाननेकी सूचना की है । शेष मार्गणाओंका क्षेत्र ही लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए उनमें ओघसे देवगतिके भङ्गके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र एकेन्द्रियके अवान्तर भेद और पाँच स्थावरकायिकोंमें विशेषता है, इसलिए उनमें ओघको लक्ष्यकर क्षेत्रके घटित करनेकी सूचना की है ।

स्पर्शनानुगम

१७४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भय-दुगुं०-तेजा-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केवडि० खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो[1]। अवत्त० केव० फोसिदं? लोग० असंखे०। थीणगि०३-मिच्छ०- अणंताणु०४ तिण्णिपदा सव्वलो०। अवत्त० अट्ठचों०। णवरि मिच्छ० अट्ठ-बारह०। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिपदा सव्वलो०। अवत्त० छच्चों०। सादादीणं चत्तारिपदा सव्वलो०। दोआउ० आहारदुगं सव्वपदा खेत्तभंगो। मणुसाउ० सव्वपदा अट्ठचों० सव्वलो०। दोगदि-दोआणु० तिण्णिपदा छच्चों०। अवत्त० खेत्तभंगो। ओरालि० तिण्णिपदा[2] सव्वलो०। अवत्त० बारहचों०। वेउव्वि०-वेउव्वि०-अंगो० तिण्णिपदा बारहचों०। अवत्त० खेत्तभंगो। तित्थ० तिण्णिपदा अट्ठचों०। अवत्त० खेत्तभंगो।

अगुरुलघुचतुष्क, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तीन पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? सब लोकका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदिके चार पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरआङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपद यथासम्भव एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका सर्व लोक स्पर्शन कहा है। तथा उनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे गिरनेवाले मनुष्यों और मनुष्यिनियोंके तथा इनकी बन्धव्युच्छित्तिवाले ऐसे जीवोंके मरकर देव होनेपर प्रथम समयमें

१ ता०आ०प्रत्योः 'सव्वलोगे इति पाठः। २ आ० प्रतौ 'ओरालि० सव्वपदा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंके भुजगार आदि तीन पदोंका स्वामित्व ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इनके उक्त तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद ऊपरके गुणस्थानोंसे गिरकर इनके बन्धके प्रथम समयमें होता है। ऐसे जीवोंका स्पर्शन देवोंके विहारवत्स्वस्थानकी मुख्यतासे त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। मिथ्यात्वके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका यह स्पर्शन तो है ही पर नीचे कुछ कम पाँच राजू और ऊपर कुछ कम सात राजूप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इसका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके भुजगार आदि तीन पद एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए इनके इन तीन पदोंके बन्धक जीवोंको सर्व लोक स्पर्शन कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद ऊपर कुछ कम छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके भी होता है, अतः इनके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिके सब पद एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए इनके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। यहाँ सातावेदनीय आदिसे सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्र ये प्रकृतियाँ ली गई हैं। नरकायु और देवायुका बन्ध असंज्ञी जीव करते हैं। पर मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपदके समय इनका बन्ध नहीं होता। तथा आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, अतः इनके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान प्राप्त होनेसे तत्प्रमाण कहा है। मनुष्यायुके चारों पद देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी सम्भव हैं और एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी सम्भव हैं, अतः इसके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोक कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी क्रमसे नरकगतिद्विकके और देवगतिद्विकके भुजगार आदि तीन पद सम्भव हैं, अतः इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। परन्तु मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, अतः इनके इस पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। औदारिकशरीरके तीन पदोंका बन्ध एकेन्द्रिय आदि जीव भी करते हैं, अतः इसके इन तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोक कहा है। तथा नारकी और देव उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें औदारिकशरीरका अवक्तव्य बन्ध नियमसे करते हैं, अतः इसके इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी वैक्रियिकद्विकके तीन पद सम्भव हैं, अतः इनके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। पर ऐसे तिर्यञ्चों और मनुष्योंके इनका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय भी तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके इन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद मनुष्योंके तो सम्भव है ही और उपशमश्रेणिमें इसकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद मरकर जो देव होते हैं उनके भी प्रथम समयमें सम्भव है। तथा इसका बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७५. णिरयेसु धुवियाणं तिण्णि पदा छचों० । सादादीणं तेरहपगदीणं सव्वपदा छचों० । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ०-उच्चा० सव्वपदा खेत्तभंगो । सेसाणं तिण्णिपदा छचोंद्द० । अवत्त० खेत्तभंगो । णवरि मिच्छ० अवत्त० पंचचों० । एवं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं ।

करनेवाले जो मनुष्य द्वितीय और तृतीय नरकमें उत्पन्न होते हैं उनके भी सम्भव है । इन सबका स्पर्शन विचार करनेपर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः यहाँ इसके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है ।

१७५. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय आदि तेरह प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है । शेष प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ काम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इस प्रकार अपना-अपना स्पर्शन ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पद ही होते हैं और नारकियोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है । यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तराय । सातावेदनीय आदि तेरह प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका भी यही स्पर्शन प्राप्त होता है, क्योंकि इनके चारों पद नारकियोंके मारणान्तिक और उपपादके समय भी सम्भव हैं । सातावेदनीय आदि तेरह प्रकृतियाँ ये हैं—सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, उद्योत, और स्थिर आदि तीन युगल । मूलमें शेष पद द्वारा आगे कही गई स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तीन वेद, तिर्यञ्चगति, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, मध्यके तीन युगल और नीचगोत्रके भुजगार आदि तीन पदोंके बन्धक जीवोंका इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । तथा इनका अवक्तव्यपद स्वस्थानमें ही होता है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । मात्र मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद छठे नरक तकके नारकियोंके मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, इसलिए इसके इस पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन अलगसे त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । अब रहीं दो आयु आदि प्रकृतियाँ सो इनमेंसे दो आयुका बन्ध तो मारणान्तिक समुद्धात और उपपादपदके समय होता ही नहीं । शेष चार प्रकृतियोंके तीन पदोंका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय भी हो सकता है,पर वह मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय ही सम्भव है । तथा इनके अवक्तव्य पदका बन्ध ऐसे समय भी सम्भव नहीं है, इसलिए इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । प्रथमादि सब नरकोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानकर वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७६. तिरिक्खेसु धुविगाणं तिण्णिपदा सव्वलोगो। थीणगि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरालि० तिण्णिपदा सव्वलो०। अवत्त० खेत्तभंगो। णवरि मिच्छ० अवत्त० सत्तचोॅद्द०। सेसाणं पगदीणं ओघं।

१७७. पंचिंदि०तिरिक्ख०३ धुवियाणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि० लोगस्स असंखेॅ० सव्वलो०। थीणगि०३-अट्ठक[1]०-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण-दूभग-अणादेॅज्ज-णीचा० तिण्णिपदा लोग० असंखेॅ० सव्वलो०। अवत्त० खेॅत्तभंगो। सादासाद०-चदुणोक०-

१७६. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिक शरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पद एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी होते हैं और वे सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका सर्व लोक स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनका अवक्तव्यपद इनके अबन्धक होकर पुनः बन्ध करते समय होता है, ऐसे तिर्यञ्चोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है और क्षेत्र भी इतना ही है, इसलिए वह क्षेत्रके समान कहा है। मात्र मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद ऐसे तिर्यञ्चोंके भी सम्भव है जो ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, इसलिए इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो उनके सम्भव पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन ओघमें जिस प्रकार कहा है, उस प्रकार यहाँ पर भी घटित हो जाता है, इसलिए इसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। वे प्रकृतियाँ ये हैं—दो वेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि दस युगल और दो गोत्र।

१७७. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, आठ कषाय, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ

[1] ता० आ० प्रत्योः 'थीणगि० ३ मिच्छ-अट्ठक०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिराथिर-सुभासुभ० सव्वपदा लोगस्स असंखे० सव्वलो० । मिच्छ० तिण्णिपदा णवुंसग-भंगो । अवत्त० सत्तचों० । इत्थि० तिण्णिपदा दिवड्ढचों० । अवत्त० खेत्तभंगो । पुरिस०-दोगदि०-समचदु०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग०-दोसर-आदे०-उच्चा० तिण्णपदा छचों० । अवत्त० खेत्तभंगो । चदुआउ०-मणुसग०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० सव्वपदा खेत्तभंगो । पंचिंदि०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-तस० तिण्णिपदा बारह० । अवत्त० खेत्तभंगो । उज्जो०-जस० सव्वपदा सत्तचों० । बादर० तिण्णिपदा तेरह० । अवत्त० खेत्तभंगो । अजस० तिण्णिपदा लोग० असंखे० सव्वलो० । अवत्त० सत्तचों० ।

के सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पुरुषवेद, दो गति, समचतुरस्रसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और त्रसके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण होनेसे इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, अन्तकी आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरु-लघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय। स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन भी उक्त प्रकारसे लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण घटित कर लेना चाहिए। इनका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय सम्भव न होनेसे इसकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पद मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपदके समय भी सम्भव हैं, इसलिए इनके चारों पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा इसका अवक्तव्यपद ऊपर कुछ कम सात राजूप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७८. पंचिंदि०तिरिक्खअप० धुवियाणं सव्वपदा लोग० असंखें० सव्वलो०। सादासाददंडओ पंचिंदि०तिरि०भंगो। णवुंस०-[तिरिक्ख-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधा०-दूभग-अणादें०-णीचा०] तिण्णिपदा लोगस्स असंखें० सव्वलो०। अवत्त० खेत्तभंगो। उज्जो०-जसगि० सव्वपदा सत्तचों०।

क्षेत्रका स्पर्शन करते समय सम्भव होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। आगे अयशःकीर्तिके चारों पदोंकी अपेक्षा जो स्पर्शन कहा है वह मिथ्यात्वके समान ही है, अतः उसे भी इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी स्त्रीवेदके तीन पदोंका बन्ध होता है, इसलिए इसके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग-प्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इसके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके तीन पद और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय पुरुषवेद, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यपद नहीं होता, अतः इनके इस पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। चार आयुओंके सब पद और इस दण्डककी शेष प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समु-द्घातके समय नहीं होते। यद्यपि शेष प्रकृतियोंके तीन पद मारणान्तिक समुद्घातके समय भी होते हैं,पर जिन जीवोंसम्बन्धी ये प्रकृतियाँ हैं,उनका स्पर्शन ही लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये इन प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी पञ्चेन्द्रियजाति आदि चार प्रकृतियोंके तीन पदोंका बन्ध होता है, अतः इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। पर इनका अवक्तव्यपद ऐसे समयमें नहीं होता, अतः इनके अव-क्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपरके एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। ऊपर सात और नीचे छह इसप्रकार कुछ कम तेरह राजुका स्पर्शन करते समय बादर प्रकृतिके तीन पदों का बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। पर मारणान्तिक समुद्घातके समय इसका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इसकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

१७८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। साता-वेदनीय-असातावेदनीयदण्डकका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर प्रकृतिके तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादर० तिण्णिपदा सत्तचोद्द० । अवत्त० खेँत्तभंगो । [अजस० तिण्णिप० लो० असंखें० सव्वलो० । अवत्त० सत्तचो० ।] सेसाणं सव्वपदा[1] खेँत्तभंगो । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं विगलिंदिय-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०- बादरपत्तेयपज्जत्तगाणं च । [णवरि तेउ०-वाऊणं मणुसगदिचदुक्कं वज्ज । वाऊणं जम्हि लोग० असंखेँज्ज० तम्हि लोग० संखेँज्ज० ।]

पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इस प्रकार सब अपर्याप्त, विकलेन्द्रिय, बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर कहना चाहिए। तथा पूर्वमें जहाँ लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है वहाँ वायुकायिक जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण बतलाया है। इस सब स्पर्शनके समय इनके ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके तीन पद और सातावेदनीयदण्डकके चार पद सम्भव होनेसे इस अपेक्षा यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय। साता-असातावेदनीय दण्डककी प्रकृतियाँ ये हैं—दो वेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ। अन्य जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंके बन्धक जीवोंका यह स्पर्शन कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए, अतः आगे इसे छोड़कर शेषका स्पष्टीकरण करते हैं। नपुंसकवेद आदिका अवक्तव्यबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इनके इस पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। बादर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका भी यही स्पर्शन कहा है सो उसका कारण भी इसी प्रकार जानना चाहिए। तथा इसका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अयशःकीर्तिका अवक्तव्यपद भी सम्भव है, इसलिए इसका इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। अब रहीं शेष स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्र सो एक तो आयुकर्मका मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध नहीं होता, दूसरे शेष प्रकृतियोंका यद्यपि मारणान्तिक समुद्घातके समय बन्ध होता है, फिर भी जिन जीवों सम्बन्धी ये प्रकृतियाँ हैं उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके मारणान्तिक समुद्घात करनेपर स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही

१ ता०प्रतौ 'सेसाणं सव्वपदाणं सव्वपदा' इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

१७६. मणुसेसु पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि णिरयगदि-देवगदिसंजुत्ताणं रज्जू ण लभदि।

१८०. देवेसु धुवियाणं सव्वपदा अट्ठ-णव०। थीणगि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादें०-णीचा० तिण्णिपदा अट्ठ-णव०। अवत्त० अट्ठचों०। सादादिदस०-उज्जो०-जस०-अजस०-मिच्छ० सव्वपदा अट्ठ-णव०। सेसाणं सव्वपदा अट्ठचों०। एवं अप्पप्पणो फोसणं णेदव्वं।

प्राप्त होता है और इनका क्षेत्र भी इतना ही है, इसलिए इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ सब अपर्याप्त आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ कही हैं उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान स्पर्शन बन जाता है, इसलिए उनमें इनके समान स्पर्शनके जाननेकी सूचना की है। मात्र अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मनुष्यगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें इन चार प्रकृतियोंके बन्धका निषेध किया है। तथा वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे इनमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनके स्थानमें उक्त प्रमाण स्पर्शन करना चाहिए।

१७६. तीन प्रकारके मनुष्योंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें नरकगति और देवगति संयुक्त प्रकृतियोंका स्पर्शन रज्जुओंमें नहीं प्राप्त होता।

विशेषार्थ—पहले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें स्पर्शन बतला आये हैं। तीन प्रकारके मनुष्योंमें यह स्पर्शन अविकल घटित हो जाता है, इसलिए इनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है। पर मनुष्यत्रिकमें नरकगति और देवगतिसंयुक्त नामकर्मकी जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं उनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन तीन प्रकारके मनुष्योंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेपर भी उस समय प्राप्त हुआ सब स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, इसलिए यहाँ नरकगति और देवगतिसंयुक्त प्रकृतियोंका सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन राजुओंमें नहीं प्राप्त होता है, ऐसा कहा है।

१८०. देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दस तथा उद्योत, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और मिथ्यात्वके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण है। ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा, स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा और सातावेदनीय आदिके सब पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन बन जाता है, अतः यह उक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८१. एइंदिय-पंचकायाणं खेत्तभंगो।

१८२. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठकसा०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठचो० सव्वलो०।

प्रमाण कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्यपद एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव न होनेसे इसकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। यहाँ सातावेदनीय आदि दस प्रकृतियाँ ये हैं—दो वेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ। अब शेष रहीं स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र सो इनका एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय बन्ध नहीं होता, पर देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। अलग-अलग देवोंमें अपना-अपना स्पर्शन जानकर इस विधिसे सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंका स्पर्शन ले आना चाहिए।

१८१. एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिकोंमें क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है। विशेष खुलासा इस प्रकार है—एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक और इनके अपर्याप्त सब वनस्पतिकायिक और निगोद तथा सब सूक्ष्म इनमें सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन और क्षेत्रमें अन्तर नहीं है, इसलिए उसे क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र कुछ प्रकृतियोंके स्पर्शनमें फरक है। उसे यहाँ यद्यपि मूलमें नहीं कहा है, फिर भी विशेष रूपसे जान लेना चाहिए। यथा—मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव थोड़े होते हैं, इसलिए इसके सब पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण जानना चाहिए। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पद तथा बादरके भुजगार आदि तीन पद ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव हैं, इसलिए यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण जानना चाहिए। किन्तु बादरका अवक्तव्यपद ऐसे समयमें सम्भव नहीं है, इसलिए इसके इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिए। अयशःकीर्तिके तीन पद सब अवस्थाओंमें सम्भव हैं, इसलिए इसके इन पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन जानना चाहिए। पर इसके अवक्तव्यपदका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। फिर भी ये जीव जब ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब भी इसका अवक्तव्यपद होता है, इसलिए इस अपेक्षासे इसका भी स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण जानना चाहिए।

१८२. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके

---

१ आ०प्रतौ 'वण्ण ४ पजत्त' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० खेँत्तभंगो। थीणगि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादें०-णीचा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठचों० सव्वलो०। अवत्त० अट्ठचों०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० सव्वपदा अट्ठचों० सव्वलो०। मिच्छ० तिण्णिपदा अट्ठचों० सव्वलो०[1]। अवत्त० अट्ठ-बारह०। अपच्चक्खाण०४ तिण्णिपदा अट्ठ० सव्वलो०। अवत्त० छचों०। इत्थि०-पुरिस०-पंचिंदि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदें०[2] तिण्णिपदा अट्ठ-बारह०। अवत्त० अट्ठचों०। दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारदुगं सव्वपदा खेँत्तभंगो। दोआउ०-मणुस-मणुसाणु०-आदाव०-उच्चा० सव्वपदा अट्ठचों०। [णिरयगदि-देवगदि-दोआणु० तिण्णिपदा छचों०।] अवत्त० खेँत्त०। ओरालि० तिण्णिप० अट्ठचों० सव्वलो०। अवत्त० बारह०। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिण्णिपदा बारहचों०।

अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, दुःस्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण

१ ता०प्रतौ 'तिण्णिपदा०······चो० सव्वलो०' इति पाठः। २ आ०प्रतौ 'सुस्सर-आदे०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० खेँत्त० । बादर-उज्जो०-जस० सव्वपदा अट्ठ-तेरहं० । णवरि बादर० अवत्त० खेँत्तभंगो । सुहुम-अपज्जत्त-साधार० तिण्णिपदा लोग० असंखेँ० सव्वलो० । अवत्त० खेँत्तभंगो । [अजस०तिण्णिपदा अट्ठचोँ० सव्वलो० । अवत्त० अट्ठ-तेरह० ।] तित्थ० तिण्णिपदा अट्ठचोँ० । अवत्त० खेँत्तभंगो । एवं पंचिंदियभंगो पंचमण०-पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि त्ति । कायजोगि-अचक्खु०-भवसि०-आहार० ओघं ।

क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। बादर, उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि बादरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इस प्रकार पञ्चेन्द्रियोंके समान पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। काययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियद्विक जीवोंका स्पर्शन स्वस्थानविहार आदिकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिके भुजगार आदि तीन पदोंकी अपेक्षा उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है,क्योंकि इन जीवोंमें उक्त प्रकृतियोंके ये तीन पद सब अवस्थाओंमें सम्भव हैं। मात्र इनमें इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका स्वामित्व ओघके समान होनेसे इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा इनका अवक्तव्य पद देवोंमें स्वस्थान विहार आदिके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पद विहारादिके समय और मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। मिथ्यात्वके तीन पदोंकी अपेक्षा उक्त स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा इसका अवक्तव्यपद देवोंमें विहारादिके समय और नीचे कुछ कम पाँच और ऊपर कुछ कम सात राजूके स्पर्शनके समय भी सम्भव है, इसलिए इसके इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा आगे भी जिन प्रकृतियोंके उक्त पदोंका यह स्पर्शन कहा है वह भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा जो संयतासंयत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि मर कर देवोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके भी प्रथम समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्य पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। देवोंमें विहार आदिके समय और नारकियों व देवोंके तिर्यञ्चों व मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय स्त्रीवेद आदि प्रकृतियोंके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके इन तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद देवोंके विहारादिके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। दो आयु आदिके सब पदवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। शेष दो आयु और मनुष्यगति आदिके सब पद देवोंमें विहारादिके समय भी सम्भव हैं, इसलिए इनके सब पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी नरकगतिद्विकके तीन पद और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगतिद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। मात्र ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें विहारादिके समय और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय औदारिकशरीरके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है। तथा इसका अवक्तव्यपद नारकियों और देवोंके प्रथम समयमें भी सम्भव है, इसलिए इसके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी वैक्रियिकद्विकके तीन सम्भव हैं, इसलिए इनके इन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव न होनेसे इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। बादर आदिके सब पदोंका स्पर्शन देवोंके विहारादिके समय और नीचे कुछ कम छह राजू व ऊपर कुछ कम सात राजूप्रमाण स्पर्शनके समय भी सम्भव होनेसे इनके सब पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। मात्र बादर प्रकृतिका अवक्तव्यपद एक तो मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता। दूसरे इसे करनेवाले जीव अल्प हैं, इसलिए इसके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सूक्ष्म आदिके तीन पदवालोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण प्राप्त होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्घात आदिके समय नहीं होता, इसलिए इनके इस पदवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। अयशः-कीर्तिके तीन पदवालोंका स्पर्शन जो त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण कहा है सो इसे ज्ञानावरणके समान घटितकर लेना चाहिए। तथा इसके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण यशःकीर्तिके समान घटित कर लेना चाहिए। तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पद देवोंके विहारादिके समय भी सम्भव हैं, इसलिए इसके इन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा ऐसे समय इसका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ पाँच मनोयोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह स्पर्शन अविकल बन जाता है, इसलिए उनमें पञ्चेन्द्रियोंके समान इसके जाननेकी सूचना की है। तथा काययोगी आदि मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. ओरा०का० ओघं। णवरि थीण०३-अट्ठक०-ओरालि० अवत्त० खेत्तभंगो। मिच्छ० अवत्त० सत्तचो०। अपच्चक्खाण०४ अवत्त० मणुसाउ०[1] तित्थगरादीणं रज्जू णत्थि।

१८३. औदारिककाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, आठ कषाय और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका तथा मनुष्यायु और तीर्थङ्कर आदिके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन राजुओंमें नहीं प्राप्त होता।

विशेषार्थ—यहाँ समान्यसे औदारिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान जाननेकी सूचना की है और यह सम्भव भी है, क्योंकि यह योग एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी यथासम्भव पाया जाता है। मात्र कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनके विवक्षित पदवाले जीवोंका स्पर्शन ओघके अनुसार घटित नहीं होता, इसलिए उसे अलगसे सूचित किया है। यथा—ओघमें स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अवक्तव्यपदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। जो देवोंके विहारादिके समय होता है। तथा औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है जो नारकियों और देवोंके उपपादपदके समय होता है। किन्तु इस स्पर्शन कालमें औदारिककाययोग सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अवक्तव्य-पदवाले जीवोंका स्पर्शन ओघसे भी क्षेत्रके समान है, इसलिए उससे इस विषयमें यहाँ कोई विशेषता नहीं है। हाँ यह स्पर्शन यहाँ उपपादपदके समय नहीं प्राप्त करना चाहिए, इतनी विशेषता अवश्य है। यही कारण है कि इसका भी यहाँ विशेषरूपसे उल्लेख किया है। ओघसे मिथ्यात्वके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। किन्तु उसमेंसे यहाँ त्रसनालीके कुछ कम सात बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन ही प्राप्त होता है, क्योंकि औदारिककाययोगी जीव ऊपर कुछ कम सात राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते समय ही मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद कर सकते हैं, पूर्वोक्त अन्य स्पर्शनके समय नहीं। इसलिए मिथ्यात्वके अवक्तव्य पदवाले जीवोंके स्पर्शनमें ओघसे फरक होनेके कारण यह भी अलगसे कहा है। ओघसे अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण घटित करके बतलाया है, पर यह स्पर्शन भी यहाँ सम्भव नहीं है; क्योंकि जो संयतासंयत आदि मनुष्य और संयतासंयत तिर्यञ्च असंयत होकर उसी पर्यायमें इनका अवक्तव्यपद करते हैं, उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्यपदका स्पर्शन राजुओंमें नहीं प्राप्त होता यह सूचना की है। ओघसे मनुष्यायुके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है। सो इसमेंसे सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन तो यहाँ भी बन जाता है, क्योंकि एकेन्द्रियोंके औदारिककाययोग भी होता है। पर दूसरा स्पर्शन यहाँ सम्भव नहीं है। हाँ, उसके स्थानमें यहाँ लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन अवश्य सम्भव है, इसलिए उक्त स्पर्शनका निषेध करनेके लिए मनुष्यायुके सब पदवालोंका

१ ता० प्रतौ 'अवत्त० (?) मणुसाउ०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८४. ओरालि०मि०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० खेत्तभंगो।

१८५. वेउव्वियका० पंचणा०-णवदंसणा०-सोलसक०-भय-दुगुं०-[णवुंस-] तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-दूभग-अणादें०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिपदा अट्ठ-तेरह०। अवत्त० अट्ठचों०। सादासाद०-चदुणोक०उज्जो०-थिरादितिण्णियुग०सव्वपदा[1] अट्ठ-तेरह०। मिच्छ० तिण्णिपदा अट्ठ-तेरह०। अवत्त० अट्ठ-बारह०[2]। इत्थि०-पुरिस०-पंचिंदि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदें० तिण्णिपदा अट्ठ-बारह०। अवत्त० अट्ठचों०। दोआउ-मणुस०-मणुसाणु०-आदाव०-उच्चा० सव्वपदा अट्ठचों०। एइंदि०-थावर०

स्पर्शन राजुओंमें नहीं प्राप्त होता, यह कहा है। इसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृतिके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन भी यहाँ त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण सम्भव नहीं है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए यहाँ इसके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन राजुओंमें नहीं प्राप्त होता, यह सूचना की है। इसी प्रकार अन्य जो विशेषता सम्भव हो वह घटित कर लेनी चाहिए।

१८४. औदारिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमें जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंकी अपेक्षा जो क्षेत्र कहा है, सामान्यसे वह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इनमें क्षेत्रके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है।

१८५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्ण, चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने

१ ता०प्रतौ 'थिरादितिण्णिउ (यु)० सव्वपदा' इति पाठः। २ ता०प्रतौ 'अट्ठतेर० अट्ठबारह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिपदा अट्ठ-णव० । अवत्त० अट्ठचों० । तित्थ० तिण्णिपदा अट्ठचों० । अवत्त० खेत्तभंगो ।

१८६. कम्मइ० धुविगाणं भुज० सव्वलो० । सेसाणं भुज०-अवत्त० सव्वलो० ।

त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें दो प्रकारकी प्रकृतियाँ ली गई हैं। पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तराय ये तो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। इनके यहाँ केवल तीन ही पद होते हैं। शेष नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। इनके यहाँ चारों पद सम्भव हैं। यहाँ तीन पदोंकी अपेक्षा तो पूर्वोक्त दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंका स्पर्शन कहा है और अवक्तव्यपदकी अपेक्षा दूसरे प्रकारकी प्रकृतियोंका स्पर्शन कहा है। देवोंके विहारादिके समय भी स्त्यानगृद्धित्रिक आदिका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवालोंका त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे स्त्रीवेद आदिके तथा एकेन्द्रियजाति और आतपके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा, दो आयु आदिके सब पदोंकी अपेक्षा और तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहनेका यही कारण है। प्रथम दण्डकमें कही गई इन सब प्रकृतियोंके तीन पद देवोंके विहार आदिके समय तो सम्भव हैं ही। साथ ही नीचे छह और ऊपर सात इस प्रकार कुछ कम तेरह राजूका स्पर्शन करते समय भी सम्भव हैं, इसलिए इन सब प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। साता-वेदनीय आदिके सब पदोंकी अपेक्षा और मिथ्यात्वके तीन पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन इसीप्रकार कहनेका यही कारण है। देवोंके विहारादिके समय तथा नीचे कुछ कम पाँच और ऊपर कुछ कम सात राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते समय भी मिथ्यात्वका अवक्तव्य-पद सम्भव है, इसलिए इसके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन इसी प्रकार प्राप्त होनेसे उक्त प्रमाण कहा है। मात्र यहाँ कुछ कम बारह राजूसे नीचे कुछ कम छह और ऊपर कुछ कम छह राजू लेने चाहिए। कारणका विचार कर लेना चाहिए। देवोंमें विहार आदिके समय एकेन्द्रियजाति और आतपके तीन पद तो सम्भव हैं ही। साथ ही एकेन्द्रियोंमें इनके मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी ये पद सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिककाययोगमें दूसरे और तीसरे नरकमें ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१८६. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगारपदके बन्धक जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्य पदके बन्धक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि मिच्छ० अवत्त० ऍक्कारस० । देवगदिपंचग० खेत्तभंगो ।

१८७. इत्थिवेदेसु पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० तिण्णिपदा अट्ठचों० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-अणंताणु४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादें०-अजस०-णीचा० तिण्णिपदा अट्ठचों० सव्वलो० । अवत्त० अट्ठचों० । [णवरि अजस० अवत्त० अट्ठ-णवचों० ।] णिद्दा-पयला-अट्ठक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०[1]-वण्ण०४-अगु०४-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० तिण्णिपदा अट्ठचों० सव्वलो० । अवत्त० खेत्तभंगो । सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० सव्वपदा अट्ठचों० सव्वलो० । मिच्छ० तिण्णिपदा साद०भंगो । अवत्त० अट्ठ-णव० । इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-

जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा देवगतिपञ्चकके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगी जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगारपदके बन्धक जीवोंका और अन्य प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। मात्र इस नियमकी कुछ प्रकृतियाँ अपवाद हैं। यथा इस योगमें ऊपर छह और नीचे पाँच इस प्रकार कुछ कम ग्यारह राजूप्रमाण क्षेत्रके भीतर ही मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव पाये जाते हैं, इसलिए मिथ्यात्वके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य उत्तम भोगभूमिके मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके व जो नारकी और देव सम्यक्त्वके साथ मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, उनके इस योगमें देवगतिपञ्चकका बन्ध होता है। ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है।

१८७. स्त्रीवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि अयशःकीर्तिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सातावेदनीयके समान है। तथा इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे

[1] ता०आ०प्रत्योः 'भयदुगुं ओरा० ते० क०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ० मणुसाणु०-आदाव०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० सव्वपदा अट्ठचों०। दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारदुग-तित्थ० सव्वपदा खेत्त-भंगो। दोगदि-दोआणु० तिण्णिपदा छचों०। अवत्त० खेत्तभंगो। पंचिंदि०-अप्पसत्थ०-तस-दुस्सर० तिण्णिपदा अट्ठ-बारह०। अवत्त० अट्ठचों०। ओरालि० तिण्णिपदा अट्ठचों० सव्वलो०। अवत्त० दिवड्ढचों०। वेउ०-वेउ०अंगो० तिण्णिपदा बारह०। अवत्त० खेत्तभंगो। उज्जो०-जसगि० सव्वपदा अट्ठ-णव०। बादर० तिण्णिपदा अट्ठ-तेरह०। अवत्त० खेत्तभंगो। सुहुम-अपज्ज०-साधार० तिण्णिपदा लोगस्स असंखें० सव्वलोगो वा। अवत्त० खेत्तभंगो। पुरिसेसु एसेव भंगो। णवरि तित्थ० ओघं। ओरा०-अपच्चक्खाण०४ अवत्त० छचोंद्द०।

चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो गति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुःस्वरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरप्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंमें यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। तथा औदारिकशरीर और अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ राजू और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्त्रीवेदी जीवोंने स्पर्शन किया है। पाँच ज्ञानावरणादि, स्त्यानगृद्धि आदि सातावेदनीय आदि, मिथ्यात्व और औदारिकशरीरके तीन पदोंकी अपेक्षा तथा सातावेदनीय आदिके सब पदोंकी अपेक्षा इन जीवोंने उक्त क्षेत्रका स्पर्शन किया है, अतः यह उक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण कहा है। किन्तु स्त्यानगृद्धि आदिके अवक्तव्य पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका ही स्पर्शन सम्भव है, क्योंकि देवियोंके विहारादिके समय इन प्रकृतियोंका यह पद सम्भव है। यद्यपि अन्य गतियोंमें भी यह पद होता है पर इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इसीके अन्तर्गत है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदिके सब पदोंकी अपेक्षा तथा पञ्चेन्द्रियजाति आदिके अवक्तव्य पदकी अपेक्षा भी यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम चौदह भागप्रमोण प्राप्त होनेसे उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ निद्रा-प्रचला आदिका अवक्तव्यपद जिस अवस्थामें होता है, उस अवस्था सहित उन जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे उसे क्षेत्रके समान कहा है। दो आयु आदिके सब पदोंकी अपेक्षा तथा दो गति आदि, वैक्रियिकशरीरद्विक और बादर प्रकृतिके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा भी स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे यह भी क्षेत्रके समान कहा है। कारणका विचार सर्वत्र कर लेना चाहिए। देवियोंके विहारादिके समय और ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी मिथ्यात्वका अवक्तव्य पद सम्भव है, इसलिए इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंकी अपेक्षा भी यह स्पर्शन बन जाता है, इसलिए यह भी उक्तप्रमाण कहा है। नीचे कुछ कम छह राजूप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय नरकगतिद्विकके तीन पद और ऊपर कुछ कम छह राजूप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय देवगतिद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके इन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन कहा है। तथा इन दोनों स्पर्शनोंको मिला देनेपर वैक्रियिकद्विकके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन प्राप्त होता है, इसलिए इनके उक्त पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवियोंके विहारादिके समय तथा तिर्यञ्चों और मनुष्योंके नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी पञ्चेन्द्रियजाति आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इसके इस पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवियोंके विहारादिके समय तथा ऊपर सात और नीचे छह, इस प्रकार कुछ कम तेरह राजूका स्पर्शन करते समय भी बादर प्रकृतिके तीन पद सम्भव हैं, अतः इसके इन पदोंकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। सूक्ष्मादि तीन प्रकृतियोंका बन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य ही करते हैं और स्त्रीवेदी इन जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनके इन तीन पदोंकी अपेक्षा उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। पहले अयशःकीर्तिको भी स्त्यानगृद्धित्रिकदण्डकके साथ गिना आये हैं। किन्तु उसके अवक्तव्यपदके स्पर्शनमें उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके स्पर्शनसे फरक है, क्योंकि ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इसका अवक्तव्य पद होता है, देवियोंके विहारादिके समय तो सम्भव है ही, अतः इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन अलगसे कहा है। कुछ अपवादको छोड़कर पुरुषवेदवाले जीवोंमें यह स्पर्शन बन जाता है, अतः उनमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। पुरुषवेदियोंमें एक अपवाद तो तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षासे है। बात यह है कि ओघमें इस प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा जो कुछ कम आठ राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है वह पुरुषवेदी जीवोंमें ही सम्भव है, क्योंकि तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव देवियोंमें नहीं उत्पन्न होते—यह इस स्पर्शनसे स्पष्ट हो जाता है। दूसरा अपवाद अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके स्पर्शनकी अपेक्षा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८८. णवुंसगे ओरा०कायजोगिभंगो। णवरि मिच्छ० अवत्त० बारहचोॅद्द०। कोधादि०४ ओघं। मदि-सुद० ओघं। णवरि देवगदि-देवाणु० तिण्णिपदा पंचचोॅ०। अवत्त० खेॅत्तभंगो। वेउ०-वेउ०अंगो० तिण्णिपदा ऍक्कारह०। अवत्त० खेॅत्तभंगो। ओरालि० अवत्त० ऍक्कारह०। एवं अब्भव०-मिच्छा०। विभंगे० पंचिंदियभंगो। णवरि वेउव्वियछक्कं मदि०भंगो। ओरालि० अवत्त० खेॅत्तभंगो।

बात यह है कि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव ऊपर सर्वार्थसिद्धि तक उत्पन्न हो सकते हैं, अतः यहाँ इनके इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह अलगसे कहा है।

१८८. नपुंसकवेदी जीवोंमें औदारिककाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसीप्रकार अर्थात् मत्यज्ञानी जीवोंके समान अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। तथा औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नीचे कुछ कम पाँच और ऊपर कुछ कम सात इसप्रकार कुछ कम बारह राजूका स्पर्शन करते समय बन जाता है। किन्तु औदारिककाययोगी जीवोंमें कुछ कम सात राजूप्रमाण ही स्पर्शन प्राप्त होता है, क्योंकि नारकियोंके औदारिककाययोग सम्भव नहीं है। नपुंसकवेदी जीवोंमें औदारिककाययोगवालोंकी अपेक्षा इतनी मात्र विशेषता है। अन्य सब कथन एक समान होनेसे नपुंसकवेदी जीवोंमें औदारिककाययोगी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें कुछ अपवादोंको छोड़कर शेष कथन ओघके समान बन जाता है। जहाँ फरक है, उसका खुलासा इसप्रकार है—साधारणतः ये दोनों अज्ञानवाले मनुष्य अन्तिम ग्रैवेयक तक उत्पन्न होते हैं पर ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं, अतः यहाँ तिर्यञ्चोंकी मुख्यता है और ऐसे तिर्यञ्चोंका उत्पाद सहस्रार कल्प तक होनेसे वे सहस्रार कल्प तक ही देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर सकते हैं। यही कारण है कि यहाँ देवगतिद्विकके तीन पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। किन्तु ओघसे यह त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि ओघसे देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके जीव लिये गये हैं। इनके अवक्तव्यपदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। एक फरक तो यह है। दूसरा फरक इसी कारणसे वैक्रियिकद्विकके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनमें पड़ता है। बात यह है कि ओघसे वैक्रियिकद्विकके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८६. आभिणि-सुद-ओधिणा० पंचणा०-छदंस०-अट्ठक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिंदि०- [ओरालि०-] तेजा०-क०-समचदु० - [ओरालि०अंगो०-वज्जरि०] वण्ण०४- [मणुसाणु०-] अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० तिण्णिपदा अट्ठचों०। अवत्त० खेत्तभंगो। सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग० सव्वपदा अट्ठचों०। अपच्चक्खाण०४ तिण्णि पदा अट्ठचों०। अवत्त० छचों०। मणुसाउ० साद०भंगो। देवाउ० आहारदुगं खेत्तभंगो। मणुसगदि-

प्रमाण बतला आये हैं। पर यहाँ उसमेंसे ऊपरका एक राजू स्पर्शन कम हो जाता है, अतः यहाँ इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। तीसरा फरक औदारिकशरीरके अवक्तव्य पदकी अपेक्षा है। ओघसे यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण बतला आये हैं, क्योंकि वहाँ सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिका भेद न होनेसे नीचेके छह और ऊपरके छह इसप्रकार कुछ कम बारह राजू लिए गये हैं। किन्तु यहाँ नीचेके छह और ऊपरके पाँच इस प्रकार कुछ कम ग्यारह राजू ही लिए जा सकते हैं, क्योंकि बारहवें कल्प तकके देवोंमें ही तिर्यञ्च मरकर उत्पन्न होते हैं। अभव्य और मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यज्ञानियोंके समान प्ररूपणा बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। विभङ्गज्ञानी पञ्चेन्द्रिय ही होते हैं, इसलिए इनमें साधारणतः पञ्चेन्द्रियोंके समान जाननेकी सूचना की है। जो अन्तर है उसका अलगसे निर्देश किया है। बात यह है कि पञ्चेन्द्रियोंमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग ओघके समान बन जाता है और विभङ्गज्ञानी मिथ्यादृष्टि होते हैं, अतः उनमें वह नहीं बनता। किन्तु मत्यज्ञानियोंके जो स्पर्शन कहा है वह बनता है, अतः इनमें वैक्रियिकषट्कका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान जाननेकी सूचना की है। दूसरे पञ्चेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है जो नारकियों और देवोंके उपपादपदके समय प्राप्त होता है। किन्तु देव और नारकी उपपादपदके समय विभङ्गज्ञानी नहीं होते, क्योंकि उनके यह अज्ञान पर्याप्त होनेपर प्राप्त होता है। अतः जो विभङ्गज्ञानी तिर्यञ्च और मनुष्य औदारिकशरीरका अवक्तव्य पद कर रहे हैं, उन्हींकी अपेक्षा यहाँपर औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदका स्पर्शन घटित किया जा सकता है और वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। यही कारण है कि विभङ्गज्ञानमें औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है।

१८६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमस्स अवत्त० छच्चो० । देवगदि०४ तिण्णि पदा छच्चो० । अवत्त० खेत्तभंगो । एवं ओधिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम० । णवरि खइग०-उवसम० देवगदि०४ खेत्त-भंगो । उवसम० तित्थ० खेत्तभंगो ।

बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें देवगतिचतुष्कका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तथा उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ देवोंमें विहारादिके समय भी पाँच ज्ञानावरणादि और चार अप्रत्याख्यानावरणके तीन पद तथा सातावेदनीय आदि व मनुष्यायुके सब पद बन जाते हैं, इसलिए इनके उक्त पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा जो संयत जीव इनकी बन्धव्युच्छित्ति होनेके बाद मरकर देव होते हैं या लौटकर पुनः इनका बन्ध करते हैं उनके इनका अवक्तव्यपद होता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः इनके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इतनी विशेषता है कि इनमेंसे तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद दूसरे और तीसरे नरकमें भी बन जाता है। तथा मनुष्यगतिपञ्चकका अवक्तव्यपद जो सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च मरकर देव होते हैं, उनके भी सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होनेसे उसका अलगसे निर्देश किया है। जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य प्रथम नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनके भी इनका अवक्तव्य पद होता है, पर इससे उक्त स्पर्शनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। संयत और संयतासंयत जीवोंके असंयतसम्यग्दृष्टि होने पर या ऐसे जीवोंके मरकर देव होनेपर अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका अवक्तव्य पद होता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन भी त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः यह उक्तप्रमाण कहा है। तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगतिचतुष्कके तीन पद करते हैं, अतः इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। तथा जो देव मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, उनके इनका अवक्तव्य पद होता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ अवधिदर्शनी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनमें उक्त तीन प्रकारके ज्ञानवाले जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जो क्षायिक-सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं वे बहुत ही अल्प होते हैं और उनका स्पर्शन क्षेत्र भी सीमित है, इसलिए तो क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें देवगति चतुष्कके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा उपशमसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च तो देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात ही नहीं करते। मनुष्य करते हैं सो जो उपशमश्रेणिवाले ऐसे मनुष्य हैं वे ही करते हैं, इसलिए इनमें भी देवगतिचतुष्कके सब पदवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें यही बात तीर्थङ्कर प्रकृतिके विषयमें भी जाननी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९०. संजदासंजदेसु धुविगाणं तिण्णि पदा छच्चोद्द०। सादादीणं सव्वपदा[1] छच्चो०। देवाउ०-तित्थ० खेत्तभंगो। असंजद० ओघं।

१९१. किण्ण-णील-काउ० धुवियाणं तिण्णि पदा सव्वलो०। णिरयगदि-णिरयाणु०-वेउ०-वेउ०अंगो० तिण्णि पदा छ-चत्तारि-बे[2]०। अवत्त० खेत्तभंगो। दोआउ०-देवगदि-देवाणु०-तित्थ० खेत्तभंगो। सेसाणं तिरिक्खोघं। णवरि ओरालि० अवत्त० छच्चत्तारि-बेचोद्दस०।

---

१९०. संयतासंयतोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धक जीवोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। असंयत जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है और यह ध्रुवबन्धवाली व इतर प्रकृतियोंके सब पदवालोंके बन जाता है, इसलिए यह उक्तप्रमाण कहा है। मात्र मारणान्तिक समुद्घातके समय आयुकर्मका बन्ध नहीं होता और संयतासंयतोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्य ही होते हैं। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। अतः इन प्रकृतियोंके सम्भव सब पदवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। असंयत जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है।

१९१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो आयु, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीव सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। कृष्णलेश्यामें सातवें नरक तकके, नील लेश्यामें पाँचवें नरकतकके और कापोत लेश्यामें तीसरे नरक तकके नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी नरकगति आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके इन तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ दो बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। किन्तु ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। आयुका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता। कृष्ण और नीललेश्यामें देवगतिद्विकका बन्ध भी मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है, क्योंकि इन दो लेश्यावाले देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात ही नहीं करते। कापोत लेश्यामें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी देवगतिद्विकका बन्ध सम्भव है, पर

---

१. ता०प्रतौ 'सत्त [व्व] पदा' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'पदा चत्तारि बे' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९२. तेउए पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि०-पंचंत० सव्वपदा अट्ठ-णव०[1]। थीणगिद्धिदंडओ साद०-दंडओ सोधम्मभंगो। अपच्चक्खाण०४-ओरालि० तिण्णि पदा अट्ठ-णवचों०। अवत्त० दिवड्ढचों०। पच्चक्खाण०४ तिण्णिपदा अट्ठ-णव०। अवत्त० खेंत्तभंगो। तित्थ० ओघं। देवाउ०-आहारदुगं खेंत्तभंगो। देवगदि०४ तिण्णि पदा दिवड्ढचों०। अवत्त० खेंत्तभंगो। सेसाणं पगदीणं सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि अपच्चक्खाण०४-ओरा०-ओरा०अंगो० अवत्त० देवगदि०४ तिण्णि पदा[2] पंचचों०। सेसाणं सहस्सारभंगो।

ऐसे जीव केवल भवनत्रिकमें ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं। ऐसी अवस्थामें इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण और नील लेश्यामें नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। कापोत लेश्यामें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अवश्य ही इस प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, पर ऐसे जीव या तो प्रथम नरकमें या प्रथम नरकवाले मनुष्योंमें ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं। और इनका स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन दो आयु आदि सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। मात्र औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद नरकमें उपपाद पदके समय भी सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह भागप्रमाण कहा है।

१९२. पीतलेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धिदण्डक और सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसीप्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिकशरीर और औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने तथा देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है।

---

१. ता०आ०प्रत्योः 'णिमि०·········अट्ठणव०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अत्त०। देवगदि ४ तिण्णि पदा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें देवोंके विहारके समय त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन पाया जाता है और ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय त्रसनालीके कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन पाया जाता है और ऐसे समयमें पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पद सम्भव हैं, अतः इनके सब पदवाले जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धिदण्डक और सातावेदनीयदण्डकके स्पर्शनको जो सौधर्म कल्पके समान जाननेकी सूचना की है सो उसका यही अभिप्राय है कि स्त्यानगृद्धिदण्डकके तीन पदवाले जीवोंका और सातावेदनीयदण्डकके चार पदवालोंका उक्त प्रकारसे ही स्पर्शन जानना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि-दण्डकका अवक्तव्यपद ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन इसीका सौधर्म कल्पमें कहे गये स्पर्शनके समान त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धिदण्डककी प्रकृतियाँ ये हैं—स्त्यान-गृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्च-गत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र। सातावेदनीयदण्डककी प्रकृतियाँ ये हैं—सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगल। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरके तीन पद भी देवोंके विहारके समय और ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव हैं, इसलिए इनके इन पदवाले जीवोंका स्पर्शन भी त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग-प्रमाण कहा है। मात्र अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद देवोंमें ऐशान कल्प तकके देवोंके उपपादपदके समय ही सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद भी यद्यपि उक्त देवोंमें सम्भव है, पर जो संयत मनुष्य मरकर इनमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह होता है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान तथा देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। सौधर्म-ऐशान कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगति-चतुष्कके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। किन्तु ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए उसका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ शेष प्रकृतियाँ ये हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्र। इनका ऊपर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय बन्ध नहीं होता, अतः इनके चारों पदवाले जीवोंका स्पर्शन सौधर्म कल्पके समान त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। यहाँ मूलमें इसीप्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए, ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार अलग-अलग प्रकृतियोंके सम्भव पदवालोंका स्पर्शन पीतलेश्यामें कहा है, उसीप्रकार पद्मलेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिए। पर पद्मलेश्यामें त्रसनालीके कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है, इसलिए उसे सर्वत्र छोड़ देना चाहिए। मात्र इनमें अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद सहस्रार कल्प तकके देवोंमें उपपादपदके समय और देवगति-चतुष्कके तीन पद इन्हीं देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदवालोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। इन प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंका विचार सहस्रारकल्पके समान कर लेना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९३. सुक्काए आणदभंगो[1]। अपचक्खाण०४-मणुसगदिपंच० सव्वपदा छच्चो०। देवगदि०४ तिण्णि पदा छच्चो०[2]। अवत्त० खेत्तभंगो०। खविगाणं अवत्त० खेत्तभंगो।

१९४. सासणे धुवियाणं तिण्णि पदा अट्ठ-बारह०। सादादीणं तेरसण्णं सव्वपदा अट्ठ-बारह०। इत्थि०-पुरिस०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आदें० तिण्णि पदा अट्ठ-ऍक्कारह०। अवत्त० अट्ठचो०। णवरि ओरा०अंगो०

१९३. शुक्ल लेश्यामें आनतकल्पके समान भङ्ग है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और मनुष्यगति पञ्चकके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। क्षपकप्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है। आनत कल्पके देवोंका भी उक्त प्रमाण स्पर्शन बन जाता है, अतः शुक्ललेश्यामें आनत कल्पके समान भङ्ग है, यह वचन कहा है। उसमें भी कुछ स्पष्ट करनेके लिए अलगसे निर्देश किया है। आरण कल्पसे लेकर ऊपरके देवोंमें उत्पादके समय भी अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके सब पद और मनुष्यगति पञ्चकका अवक्तव्यपद तथा इन देवोंके विहारादिके समय मनुष्यगतिपञ्चकके शेष तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके सब पदवाले जीवोंका त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगतिचतुष्कके तीन पद होते हैं, इसलिए इनके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। किन्तु ऐसे समयमें इनका अवक्तव्य पद नहीं होता, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। अब रहीं पाँच ज्ञानावरणादि शेष क्षपक प्रकृतियाँ सो इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें या तो उतरते समय या इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद मरकर देव होनेके प्रथम समय प्राप्त होता है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका भङ्ग भी क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनके शेष तीन पदवाले जीवोंका स्पर्शन कितना है, इसका उत्तर 'आनत कल्पके समान है' इसमें ही हो जाता है। यहाँ ऐसी तीन प्रकृतियाँ और शेष रहती हैं, जिनके विषयमें अलगसे कुछ नहीं कहा है। वे हैं—देवायु और आहारकद्विक। सो देवायुका बन्ध तो स्वस्थानमें ही होता है और आहारकद्विकका बन्ध केवल अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणवाले मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके चारों पदवाले जीवोंका स्पर्शन यहाँ क्षेत्रके समान प्राप्त होता है।

१९४. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदवाले जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि तेरह प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पाँच संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो विहायोगति, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्य-

१. ता०प्रतौ 'सहस्सारभं [गो···आण] दभंगो' आ०प्रतौ 'सहस्सारभंगो।·······आणदभंगो' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'देवगदि० ४ छच्चो०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० पंचचों० । दोआउ०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० सव्वपदा अट्ठचों० । देवाउ० खेत्तभंगो । तिरिक्खग०-तिरिक्खाणुपु०-दूभग-अणादें० तिण्णि पदा अट्ठ-बारह० देसू० । अवत्त० [अट्ठ] एगा०चों० । देवगदि०४ तिण्णि पदा पंचचों० देसू० । अवत्तव्व०[1] खेत्तभंगो ।

पदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवायुका भङ्ग क्षेत्रके समान है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, दुर्भग और अनादेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शन कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण बतलाया है । यह दोनों प्रकारका स्पर्शन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन और सातावेदनीय आदिके चार पदोंके बन्धक जीवोंके सम्भव होनेसे उक्तप्रमाण कहा है । स्त्रीवेद आदिके तीन पदोंका बन्ध देवोंके विहार आदिके समय तथा नारकियों और देवोंके तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । मात्र इनका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव नहीं है । तथा तिर्यञ्चों और मनुष्योंके देवोंमें उत्पन्न होनेपर उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए यहाँ स्त्रीवेद आदि सब प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । देवोंके विहार आदिके समय भी दो आयु आदिके सब पद सम्भव हैं, अतः इनके चारों पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । देवायुका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है । देवोंके विहारादिके समय तथा नारकियों और देवोंके तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी तिर्यञ्चगति आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । तथा इनका अवक्तव्यपद देवोंमें विहारादिके समय और देवों व नारकियोंके तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें भी सम्भव है, इसलिए इस पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । तिर्यञ्चों और मनुष्योंके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी देवगति चतुष्कके तीन पदोंका बन्ध सम्भव है, अतः इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण कहा है । तथा इनका अवक्तव्यपद ऐसे समयमें नहीं होता, इसलिए इसका भङ्ग क्षेत्रके समान जाननेकी सूचना की है ।

---

१. ता०आ०प्रत्योः 'अवत्त० ए० अंतो० चो०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९५. सम्मामि० देवगदि०४ तिण्णि पदा खेत्तभंगो। सेसाणं पगदीणं सव्वपदा अट्ठचों०। असण्णी० खेत्तभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं फोसणं समत्तं[1]।

कालपरूवणा

१९६. कालाणु०-दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंसणा०-अट्ठक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णि पदा केवचिरं०? सव्वद्धा। अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम०। थीणगि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरालि० तिण्णि पदा सव्वद्धा। अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। तिण्णिआउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखें०। अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। वेउव्वियछ० दोपदा सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। आहारदुगं[2] दोपदा सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त०

१९५. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंज्ञी जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है और अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ देवगति चतुष्कका तिर्यञ्च और मनुष्य बन्ध करते हैं, इसलिए इनके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा शेष प्रकृतियोंका बन्ध देवोंके विहारादिके समय भी सम्भव है, इसलिए उनके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। असंज्ञियोंमें क्षेत्रके समान और अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

कालप्ररूपणा

१९६. काल दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना काल है? सर्वदा काल है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सर्वदा काल है। तथा इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तीन आयुओंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिकषट्कके दो पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आहारकद्विकके दो पदोंके बन्धक जीवोंका काल

१. ता० प्रतौ 'एवं फोसणं समत्तं' इति पाठो नास्ति। २. ता०प्रतौ 'आहारदुगं [गं]' इति पाठः।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम०[1]। तित्थ० देवगदिभंगो। णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम०। सेसाणं चत्तारि पदा सव्वद्धा।

सर्वदा है। तथा अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग देवगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। शेष प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि जीव भी करते हैं, अतः इनके इन पदवाले जीवोंका काल सर्वदा कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद या तो उपशमश्रेणिसे उतरते समय होता है या उपशमश्रेणिमें इनकी बन्ध-व्युच्छित्तिके बाद मरकर देव होनेपर होता है और उपशमश्रेणिपर निरन्तर चढ़नेका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। मात्र उक्त प्रकृतियोंमें प्रत्याख्यानावरणचतुष्क भी हैं सो इनके अवक्तव्य-पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल संयत जीवोंको नीचे लाकर प्राप्त करना चाहिए। आगे जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका सर्वदा काल कहा है सो कहीं तो उसका पूर्वोक्त कारण है और कहीं उसका किसी-न-किसीके निरन्तर बन्ध होना कारण है। इसलिए यह उस प्रकृतिके बन्ध स्वामीका विचार कर ले आना चाहिए। जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल उससे भिन्न है, उसका स्पष्टी-करण इस प्रकार है—पहले स्त्यानगृद्धि आदिके अवक्तव्यपदका काल एक जीवकी अपेक्षा एक समय बतला आये हैं। यदि नाना जीव इन प्रकृतियोंका अवक्तव्य करें तो एक समय तक तो कर ही सकते हैं, क्योंकि सासादनसे लेकर संयतासंयत तक प्रत्येक गुणस्थानकी राशि पल्यके असं-ख्यातवें भागप्रमाण है। उसमेंसे कुछ जीव यदि मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें आते हैं तो एक समय तक आकर अन्तर भी पड़ सकता है। इसलिए तो इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय कहा है और यदि पूर्वोक्त जीव निरन्तर मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंको प्राप्त होवें तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होंगे। इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रत्येक आयुका बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा नरकायु, मनुष्यायु और देवायुका बन्ध एक साथ यदि अधिकसे अधिक जीव करें तो असंख्यात ही कर सकते हैं। तथा भुजगार और अल्पतर पदका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सात समय है और अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। यह सब देखकर यहाँ उक्त तीन आयुओंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा शेष दो पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिकषट्कके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। आहारकद्विकका बन्ध संख्यात जीव ही करते हैं, इसलिए इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग देवगतिके समान है, यह स्पष्ट ही है। किन्तु इसका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव संख्यात ही हो सकते हैं, अतः इसके उक्तपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यहाँ शेष पदसे ये प्रकृतियाँ ली गई हैं—दो वेदनीय, सात नोकषाय,

१. ता०प्रतौ 'ज० ए० संखेजसम०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७. णिरएसु धुवियाणं दोपदा सव्वद्धा० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० आवलि०[1] असंखे० । एवं तित्थयरं । णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंजस० । पढमाए तित्थ० अवत्त० णत्थि । सेसाणं पगदीणं भुज०-अप्प० सव्वद्धा । अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० । तिरिक्खाउ० ओघं णिरयाउभंगो । मणुसाउ० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम० । एवं णेरइगाणं णेदव्वं ।

१६८. तिरिक्खेसु धुवियाणं तिण्णि पदा सवद्धा । सेसाणं ओघं । पंचिंदिय-

तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्र ।

१६७. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके दो पदवाले जीवोंका काल सर्वदा है । अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार तीर्थङ्करप्रकृतिकी अपेक्षा काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मात्र प्रथम पृथिवीमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद नहीं है । शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । इनके अवस्थित और अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । तिर्यञ्चायुका ओघसे नरकायुके समान भङ्ग है । मनुष्यायुके भुजगार और अल्पतर-पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इसीप्रकार सब नारकियोंमें ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ मनुष्यायुको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका काल सर्वदा है,यह स्पष्ट ही है । तथा नारकी जीव असंख्यात हैं, इसलिए यहाँ जिन प्रकृतियोंका अवस्थितपद सम्भव है और जिन प्रकृतियोंके अवस्थित और अवक्तव्य दोनों पद सम्भव हैं,उनके इन पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदवाले जीव और मनुष्यायुके अवस्थित और अवक्तव्यपदवाले जीव संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते । यही करण है कि यहाँपर इन दो प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद प्रथम नरकमें नहीं होता; यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए । एक बात और है और वह तिर्यञ्चायुके सम्बन्धमें है । बात यह है कि किसी भी आयुका बन्ध आयुबन्ध के कालमें अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं होता है और नारकी जीव असंख्यात हैं, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका सर्वदा काल नहीं बन सकता । यही कारण है कि यहाँ इसका भङ्ग ओघसे नरकायुके समान जाननेकी सूचना की है । सब नारकियोंमें इसीप्रकार अपनी-अपनी प्रकृतियोंका विचारकर काल घटित कर लेना चाहिए ।

१६८. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदवाले जीवोंका काल सर्वदा है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार

१. ता०प्रतौ 'ज० ए० आवलि०' इति पाठः । १. ता०प्रतौ 'ओघं । णिरयाउभंगो मणुसाउ०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख०३ धुवियाणं भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि०[1] जह० एग०- उक्क० आवलि०[2] असंखे०। चदुण्णं[3] आउगाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। सेसाणं भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०।

१६६. पंचिंदि०तिरि०अपज्ज० धुवियाणं भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। दो आउ० भुज०-अप्प० जह०एग०, उक्क० पलिदोवम० असंखे०। अवट्ठि०-अवत्त० जह०[4] एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। सेसाणं भुज०-अप्प० सव्वद्धा। अवट्ठि०-अवत्त०-जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। एवं

और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। चार आयुओंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय। सो इनके भुजगार आदि तीनों पद एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका काल सर्वदा कहा है। इनके सिवा यहाँ बँधनेवाली शेष जितनी प्रकृतियाँ हैं उनकी ओघप्ररूपणा यहाँ बन जाती है, इसलिए उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिक प्रत्येक असंख्यात होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदवालोंका सब काल और जिनका अवस्थित पद है या जिनका अवस्थित और अवक्तव्य पद है, उनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। मात्र चार आयुओंके भुजगार और अल्पतर पदवालोंका सर्वदा काल नहीं बन सकता, क्योंकि इनका त्रिभागमें अन्तर्मुहूर्त तक ही आयुबन्ध होता है, इसलिए इनके इन दो पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। दो आयुओंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय

१. ता०प्रतौ 'सव्वद्धा [द्धा] सव्वद्धा०। अवट्ठि' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'एग० आवलि०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'चदुगाणं' इति पाठः। ४. आप्रतौ 'अवट्ठि० जह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वविगलिंदि०-पंचिंदिय-तसअपज्जत्तगाणं पंचकायाणं बादरपज्जत्तगाणं च ।

२००. मणुसेसु धुवियाणं अवट्ठि जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । सेसपदा ओघं । वेउव्वियछ० आहारदुगं तित्थ० आहारसरीरभंगो । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि दोआउ० णिरय-मणुसाउभंगो । पज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं आहारसरीरभंगो । चदुआउ० णिरय-मणुसाउभंगो । मणुसअपज्जत्त० धुवियाणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखेंज्जदिभा० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । एवं सव्वपगदीणं । णवरि अवत्त० अवट्ठिदभंगो । दोआउ० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसीप्रकार सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय-अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त और पाँच स्थावरकायिकोंके बादर पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव असंख्यात होते हैं, इसलिए इनमें दोनों आयुओंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपदवाले जीवोंका काल सर्वदा बन जाता है । अब रहा इन प्रकृतियोंके शेष पदोंके कालका विचार और आयुकर्मके चारों पदोंके कालका विचार सो इस सम्बन्धमें उक्त पदवाले जीवोंकी असंख्यात संख्याके रहते हुए इस सम्बन्धमें यह नियम जानना चाहिए कि जिन पदोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, उनका यहाँ जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । तथा जिन पदोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय, सात समय या एक समय है उनका यहाँ जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ इसी नियमको ध्यानमें रखकर उक्त काल कहा है । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

२००. मनुष्योंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । शेष पदोंके बन्धक जीवोंका भङ्ग ओघके समान है । वैक्रियिकषट्क, आहारद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । इतनी विशेषता है कि दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंमें मनुष्यायुके समान है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग आहारकशरीरके समान है । चार आयुओंका भङ्ग नारकियोंमें मनुष्यायुके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य पदका भङ्ग अवस्थित पदके समान है । दो आयुओंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनुष्य असंख्यात होते हैं । इनमें अन्य सब प्रकृतियोंके पदोंका काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान बन जाता है । मात्र इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०१. देवेसु णिरयभंगो। एवं सव्वदेवाणं। णवरि सव्वट्ठे मणुसि०भंगो। धुविगाणं अवत्त० णत्थि।

२०२. एइंदिय-पंचकायाणं मणुसाउ० ओघभंगो। सेसाणं सव्वद्धा[1]। कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ओघभंगो। ओरालिय-मि०-मदि-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि त्ति तिरिक्खोघं। णवरि ओरालियमि० देवगदिपंच० भुज० जह० उक्क० अंतो०[2]।

भी सम्भव है, इसलिए इनमें इनके शेष पदवालोंका काल ओघके समान कहा है। तथा वैक्रियिक-षट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्य संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार यहाँ नरकायु और देवायुका बन्ध करनेवाले मनुष्य भी संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनका भङ्ग नारकियोंमें मनुष्यायुके समान जाननेकी सूचना की है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी ये तो संख्यात होते ही हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान और चार आयुओंका भङ्ग नारकियोंमें मनुष्यायुके समान जाननेकी सूचना की है। मनुष्य अपर्याप्त सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें इस दृष्टिको ध्यानमें रखकर ध्रुवबन्धवाली और इतर प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदवाले जीवोंका काल कहा है। शेष कथन सुगम है।

२०१. देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग है। किन्तु यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है।

विशेषार्थ—देवों और उनके अवान्तर भेदोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है, यह स्पष्ट ही है। मात्र सर्वार्थसिद्धिके देव संख्यात होते हैं, इसलिए उनमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। किन्तु मनुष्यिनियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्य पद होता है, पर यहाँ नहीं होता; इसलिए उसका निषेध किया है।

२०२. एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय राशि तो अनन्त है। पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें वनस्पतिकायिक भी अनन्त हैं। शेष चार कायवाले असंख्यात हैं, फिर भी बहुत हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके यथासम्भव सब पदवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए उनके सब पदवालोंका सर्वदा काल कहा है। मात्र मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले थोड़े होते हैं, इसलिए इसका भङ्ग ओघके समान जाननेकी सूचना की है। काययोगी आदि मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा घटित हो जानेसे उनमें उसके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र जहाँ जो थोड़ी-बहुत विशेषता हो उसे जान

१. ता०प्रतौ 'सव्वद्धा (द्धा)' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'जह० एग०, उक्क० अंतो०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०३. वेउ०मि० धुवियाणं भुज० जह० अंतो०, उक्क० पलिदोव० असंखे० । सेसाणं भुज० धुवभंगो । णवरि जह० ए० । अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० । णवरि तित्थ० ओरा०मिस्सभंगो ।

२०४. आहारमि० धुविगाणं भुज० [जह०] उक्क० अंतो० । एवं सव्वाणं । णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० ।

लेना चाहिए । औदारिकमिश्रकाययोगी आदि सब अनन्त संख्यावाली मार्गणाएँ हैं, इसलिए इनमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कालप्ररूपणा बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है ।

२०३. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । शेष प्रकृतियोंके भुजगारपदके बन्धक जीवोंका भङ्ग ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है । तथा अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोग यह सान्तर मार्गणा है और इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसीसे यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । शेष प्रकृतियोंके भुजगार पदवालोंका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकेसमान है, इसलिए कहा है कि इनके भुजगार पदवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है परन्तु इनका अवक्तव्यपद भी होता है, इसलिए इनके भुजगार पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है । इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है । तथा इनका प्रमाण असंख्यात है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें भी तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव अधिकसे अधिक संख्यात ही हो सकते हैं, इसलिए इनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

२०४. आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

विशेषार्थ—आहारकमिश्रकाययोगका नाना जीवोंकी अपेक्षा भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । मात्र अन्य प्रकृतियोंका अवक्तव्य पद भी होता है । किन्तु लगातार भी उसे संख्यात जीव ही कर सकते हैं, इसलिए इस पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय प्राप्त होनेसे तत्प्रमाण कहा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०५. कम्मइ० धुवियाणं भुज० सव्वद्धा। मिच्छ० अवत्त० ओघं। सेसाणं भुज०-अवत्त० सव्वद्धा। णवरि देवगदिपंचग० भुज० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम[1]०। एवं अणाहार०।

२०६. अवगदवे० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसम०। एवं सुहुमसं०। एसिमसंखेंज्जरासी[2] तेसिं णिरयभंगो। एसिं संखेंज्जरासी[3] तेसिं मणुसि०भंगो। सासण०-सम्मामि० मणुसअपज्जत्तभंगो।

एवं कालं समत्तं[4]

२०५. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार पदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका काल ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अवक्तव्यपदका काल सर्वदा है। इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चकके भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगी जीव अनन्त होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके भुजगार पदका काल सर्वदा बन जाता है। मात्र यहाँ मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद ऐसे हीजीवप्राप्त करते हैं जो कार्मणकाययोगके कालमें ऊपरके गुणस्थानोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होते हैं। यह सम्भव है कि ऐसे जीव एक समय तक हों और द्वितीयादि समयोंमें नहींहों और यह भी सम्भव है कि वे लगातार असंख्यात समय तक होते रहें, इसलिए यहाँ इसके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा यहाँ देवगतिपञ्चकके बन्धक जीव एक समयसे लेकर संख्यात समय तक ही हो सकते हैं, इसलिए इनके भुजगार पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। अनाहारक जीवोंमें यह प्ररूपणा बन जाती है, क्योंकि यहाँ संसार दशामें अनाहारकदशा और कार्मणकाययोगका सहभावी सम्बन्ध है, इसलिए उनमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन सुगम है।

२०६. अपगतवेदी जीवोंमें भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित और अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। तथा जिन मार्गणाओंमें जीवराशि असंख्यात है,उनमें नारकियोंके समान भङ्ग है और जिन मार्गणाओंमें जीवराशि संख्यात है, उनमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मनुष्यअपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—कर्मबन्ध करनेवाले अपगतवेदी जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

---

१. ता० प्रतौ 'ए० [उक्क०] संखेज्जस०' इति पाठः। २. ता० प्रतौ 'एवं (सिं) असंखेज्जरासी' इति पाठः। ३. ता० प्रतौ 'एवं (सिं) संखेज्जरासिं' इति पाठः। ४. ता० प्रतौ 'एवं कालं समत्तं' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरपरूवणा

२०७. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-[उप०]-णिमि०-पंचंत० तिण्णि पदा णत्थि अंतरं। अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुध० । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तिण्णि पदा णत्थि अंतरं । अवत्त० जह० एग०[1], उक्क० सत्तरादिंदियाणि । एवं अपच्चक्खाण०४ । [णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० चोंद्दस रादिंदियाणि । पच्चक्खाण०४ एवं चेव ।] णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० पण्णारसरादिंदियाणि । दोवेदणी०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगोद[2]० सव्वपदाणं णत्थि अंतरं । तिण्णि-आउगाणं भुज०-अप्प०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० चउवीसं मुहु० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखे० । वेउव्वियछक्कं आहारदुगं दोपदा णत्थि अंतरं । अवट्ठि०

तथा अपगतवेदको लगातार संख्यात समय तक संख्यात मनुष्य ही प्राप्त हो सकते हैं, इसलिए यहाँ अवस्थित और अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है। सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व ये सान्तर मार्गणाएँ हैं और इनका काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है, इसलिए इनमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

२०७. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तीन पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें जान लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन-रात है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका इसी प्रकार भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन-रात है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके सब पदोंका अन्तरकाल नहीं है। तीन आयुओंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विकके दो पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित-

१. ता०प्रतौ 'अवत्त० [ज०] ए०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ–'दसउ-(यु०) दोगोद०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक० सेढीए असंखें० । अवत्त० जह० एग०, उक० अंतो० । ओरालि० तिण्णि पदा णत्थि अंतरं । अवत्त० जह० एग,० उक० अंतो० । तित्थ भुज० अप्प० णत्थि अंतरं । अवट्ठि० जह० एग०, उक० सेढीए असंखें० । अवत्त० जह० एग०, उक० वासपुध० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-लोभ०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। औदारिकशरीरके तीन पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीर्थंकर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतरपदका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादि और स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके तीन पद एकेन्द्रियादि जीवोंके भी होते हैं, इसलिए इन पदोंका अन्तरकाल नहीं कहा है। तथा उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। तदनुसार सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अन्तरकाल भी उतना ही है, इसलिए स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात कहा है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके भुजगार आदि तीन पदोंका अन्तरकाल न होनेका वही कारण है जो पाँच ज्ञानावरणादिके समय कह आये हैं। तथा उपशमसम्यक्त्वके साथ संयतासंयतगुणस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन-रात है। और उपशमसम्यक्त्वके साथ संयतका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन-रात है। तदनुसार कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक चौदह और पन्द्रह दिन-रात तक जीव क्रमसे संयतासंयतसे अविरत अवस्थाको और विरतसे विरताविरत अवस्थाको नहीं प्राप्त होते, इसलिए अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे चौदह व पन्द्रह दिन-रात कहा है। दो वेदनीय आदिके चारों पद एकेन्द्रियादि जीव करते हैं, इसलिए इनके अन्तरकालका निषेध किया है, नरक, मनुष्य और देवगतिमें यदि कोई भी जीव उत्पन्न न हो तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक चौबीस मुहूर्ततक नहीं उत्पन्न होता। इसके अनुसार इन आयुओंके बन्धमें भी इतना अन्तर पड़ता है, इसलिए इन तीन आयुओंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त कहा है। मात्र इनके अवस्थितपदका अन्तर योगस्थानोंके अनुसार होता है, इसलिए इस पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विकके अवस्थितपदका अन्तरकाल इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए। तथा इन छह प्रकृतियोंका नाना जीव निरन्तर बन्ध करते रहते हैं, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतरपद किसी न किसीके होते ही रहते हैं, अतः इनके अन्तरकालका निषेध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०८. तिरिक्खेसु धुवियाणं तिण्णि पदा णत्थि अंतरं। सेसाणं ओघं। एवं णवुंसग०-कोध-माण-माय०-मदि-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अ भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति।

२०९. णेरइएसु तित्थ० ओघं। णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखें०। सेसाणं एसिं असंखेंज्जरासी तेसिं[1] ओघं देवगदिभंगो। एसिं संखेंज्जरासी तेसिं[2] ओघं आहारसरीरभंगो। एइंदिय-पंचकायाणं सव्वाणं णत्थि अंतरं। ओरालियमि० देवगदि०४ भुज० जह० एग०, उक्क० मासपुध०। तित्थ० भुज० जह० एग०, उक्क० वास-

किया है। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। औदारिकशरीरके तीन पद एकेन्द्रियादिके भी होते हैं, इसलिए इनके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा यह परावर्तमान प्रकृति है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका नाना जीवोंके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इसके भुजगार और अल्पतरपदके अन्तरकालका निषेध किया है। इसके अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर वैक्रियिकषट्कके समान घटित कर लेना चाहिए। कोई भी नया जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व तक बन्धका प्रारम्भ न करे यह सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। यहाँ काययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

२०८. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसीप्रकार नपुंसकवेदी, क्रोधकषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादि जीव भी तिर्यञ्च हैं, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके बन्धक जीव सर्वदा पाये जानेसे उनके अन्तरकालका निषेध किया है। तिर्यञ्चोंमें अपनी बन्धप्रकृतियोंको ध्यानमें रखकर शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ गिनाई गई नपुंसकवेदी आदि अन्य मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा बन जानेसे उनमें तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है।

२०९. नारकियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष मार्गणाओंमें जिनकी राशि असंख्यात है, उनमें ओघसे देवगतिके समान भङ्ग है और जिनकी राशि संख्यात है, उनमें ओघसे आहारकशरीरके समान भङ्ग है। एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिचतुष्कके भुजगारपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है। तीर्थङ्करप्रकृतिके भुजगारपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व-

१. ता०प्रतौ 'सेसाणं ए[सिं] असंखेजरासी' तेसिं आ०प्रतौ 'सेसाणं असंखेजरासीणं तेसिं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'एवं (सिं) संखेज्जरासी तेसिं' आ०प्रतौ 'एसिं संखेजरासिं तेसिं' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पुधत्तं० । एवं कम्मइ०-अणाहार० । एवं एदेण बीजेण याव सण्णि त्ति णेदव्वं ।

एवं अंतरं समत्तं[1] ।

भावपरूवणा

२१०. भावाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त०बंधगे त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

एवं भावो समत्तो[2] ।

अप्पाबहुअपरूवणा

२११. अप्पाबहुगाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० पंणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालि०-तेजो०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्तव्वबंधगा । अवट्ठिदबंधगा[3] अणंतगुणो । अप्प०बं० असंखें०गु० । भुज०

प्रमाण है । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार संज्ञी मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ कुछ स्फुट सूचनाएँ मात्र दी हैं । नरकमें दूसरे व तीसरेमें जो मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि होकर पुनः तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करे,ऐसा जीव कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे उत्पन्न हो सकता है, इसलिए यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । इसीप्रकार अन्य मार्गणाओंमें इस प्रकृतिके अवक्तव्यपद का जो अन्तर कहा है,वह यहाँ उतने अन्तरकालसे होता है,ऐसा जानना चाहिए । शेष प्ररूपणा विचारकर लगा लेना चाहिए । यहाँ बीजरूपसे कही गई सूचनानुसार विस्तार कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ ।

भाव

२१०. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ ।

अल्पबहुत्व

२११. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे

---

१. ता०प्रतौ 'एवं अंतरं समत्तं' इति पाठो नास्ति । २. ता०प्रतौ 'एवं भावो समत्तो' इति पाठो नास्ति । ३. आ०प्रतौ 'अवत्तव्वबंधगा य । अवट्ठिदबंधगा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बं० विसे० । सादासाद०-सत्तणोक०-चदुआउ०-चदुगदि-पंचजादि-वेउव्विय०-छस्संठा-दोअंगो०-छस्संघ०-चदुआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगोद० सव्वत्थोवा[1] अवट्ठि० । अवत्त० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । आहारदुगं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० संखेँज्जगु० । अप्प० संखे०गु० । भुज० विसे० । तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरा०-लोभक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

२१२. णिरएसु धुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्पद० असं०गु० । भुज० विसे० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेँ०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसाणं ओघं साद०भंगो । मणुसाउ० ओघं आहारसरीरभंगो । एवं सव्वणिरयाणं । णवरि सत्तमाए दोगदि-दोआणु०-दोगोद० थीणगिद्धिभंगो ।

२१३. तिरिक्खेसु धुवियाणं णिरयभंगो । सेसाणं ओघभंगो । सव्वपंचिंदि०-तिरि० णिरयभंगो । णवरि मणुसाउ० ओघं आहारसरीरभंगो ।

अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आहारकद्विकके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अल्परपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए ।

२१२. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तीर्थङ्करप्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघसे सातावेदनीयके समान है । मनुष्यायुका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है ।

२१३. तिर्यञ्चोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । शेष प्रकृतियोंका

---

१. आ० प्रतौ 'दोगदि० सव्वत्थोवा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१४. मणुसेसु पंचणा[1]०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०[2]-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं ओघं। णवरि संखेंज्जरासीणं आहारसरीरभंगो। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं। सव्वअपज्जत्त-सव्वदेवाणं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं च णिरयभंगो। णवरि सवट्ठे संखेंज्जं कादव्वं।

२१५. पंचिंदि०-तस०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि०। अवत्त० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। आहारदुगं ओघं।

२१६. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-

---

भङ्ग ओघके समान है। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है।

२१४. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें जिन प्रकृतियोंका संख्यात जीव बन्ध करते हैं, उनका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणा करना चाहिए। सब अपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है- सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात करना चाहिए।

२१५. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है।

२१६. पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर,

---

१. ता०प्रतौ 'ओघं। मणुसेसु पंचणा०' आ०प्रतौ 'ओघं आहारसरीरभंगो। पंचणा०' इति पाठः।
२. आ०प्रतौ 'भयदु० तेजाक०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवग०--ओरालि०--वेउव्वि०--तेजा०-क०--ओरालि०-वेउव्वि०अंगो०--देवाणु०--अगु०४-बादर[1]-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसाणं ओघभंगो । ओरालियमि० णिरयभंगो । णवरि मिच्छ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० अणंतगु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । वेउव्वियका० देवभंगो । वेउव्वियमि० धुवियाणं एगपदं० । परियत्तमाणिगाणं सव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० असं०गु० । आहारकायजो० सव्वट्ठ०भंगो । आहारमिस्से परियत्तमाणिगाणं सव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० संखेंज्जगु० । कम्मइ० सव्वत्थोवा मिच्छ० अवत्त० । भुज० अणंतगु० । सेसाणं सव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० असं०गु० ।

२१७. इत्थिवेदेसु पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-णिमि० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज०

कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगार पदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नारकियों के समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका एक भुजगारपद है। परावर्तमान प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारककाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें परावर्तमान प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। कार्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे भुजगार पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

२१७. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं।

१. आ० प्रतौ 'तेजाक० वेउव्वि०अंगो देवाणु० अगु-बादर' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसे० । आहारदुगं तित्थ० मणुसि०भंगो । एवं पुरिस० । णवरि तित्थ० ओघभंगो । णवुंसगेसु धुविगाणं अट्ठारसपगदीगं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्पद० असं०गु० । भुज० विसे० । सेसाणं ओघं ।

२१८. एवं कोधे० अट्ठारस० माणे सत्तारस० मायाए सोलस० । अवगदवे० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० संखेंज्जगु० । अप्प० संखेंज्जगु० । भुज० विसे० ।

२१६. मदि-सुद० धुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असंखेंज्जगु० । भुज० विसे० । सेसाणं ओघं । एवं असंजद[2]-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति । विभंगे धुवियाणं मदि०भंगो । सेसाणं मणजोगिभंगो

२२०. आभिणि-सुद-ओधिणा० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-दोगदि०-[पंचिंदि०-] चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० ।

उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है । नपुंसकवेदी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली अठारह प्रकृतियोंके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगार पदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

२१८. इसी प्रकार क्रोधकषायमें अठारह प्रकृतियोंके, मानकषायमें सत्रह प्रकृतियोंके और मायाकषायमें सोलह प्रकृतियोंके बन्धक जीवोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान जानना चाहिए । अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं ।

२१६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है । शेष प्रकृतियों का भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है ।

२२०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव

१. आ०प्रतौ 'अवत्त० अवट्ठि० असंखेज्जगु०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'सेसाणं मोह० । एवं असंजदा' आ०प्रतौ 'सेसाणं मोह० । एवं संजदा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सादासाद०-चदुणोक०-दोआउ०-थिरादितिण्णियुग० आहारदुगं ओघभंगो । एवं ओधिदंस०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम० । णवरि मणुसाउ० णिरयभंगो । खइगे दोआउ० मणुसि०भंगो । मणपज्जवे आभिणि०भंगो । णवरि संखेंज्जं कादव्वं । एवं संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० । संजदासंजदा० ओधि०भंगो । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

२२१. तेउए पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-बारसक०-देवगदि०४-ओरालि०-तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । अप्प० असं०गु । भुज० विसे० । सेसाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । अवत्त० असं०गु० । अप्प० असं०गु । भुज० विसे०[२] । एवं पम्माए वि । णवरि देवगदि०४-ओरा०-ओरा०अंगो०-तित्थ० अट्ठक०भंगो ।

असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो आयु, स्थिर आदि तीन युगल और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदगसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग नारकियोंके समान है । तथा क्षायिक सम्क्त्वमें दो आयुओंका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि संख्यात कहना चाहिए । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए । संयतासंयत जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

२२१. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यात गुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, देवगतिचतुष्क, औदारिकशरीर और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जान लेना चाहिए । इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्क, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिका आठ कषायोंके समान भङ्ग है ।

---

१. आ०प्रतौ चदुसंज० तेजाक०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'अवत्त० असं०गु० भुज० विसे०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२२. सुक्काए पंचणाणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसकसा०-भय-दु०-दोगदि-चदुसरीर-दोअंगो०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४-तस०४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसाणं सादादीणं एवं चेव। णवरि सव्वत्थोवा अवट्ठि०।

२२३. सासणे धुवियाणं णिरयभंगो। देवगदि०४-दोसरीर० तेउ०भंगो। सेसाणं ओघं। सम्मामि० धुविगाणं सासण०भंगो। सादादीणं ओघं। सण्णी० मणजोगिभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं भुजगारबंधो समत्तो।

पदणिक्खेवो समुक्कित्तणा

२२४. एत्तो पदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे त्ति। समुक्कित्तणाए दुवि०—जह० उक्क० च। उक्क० पगदं[1]। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्कस्सिया हाणी उक्कस्सयमवट्ठाणं[2]। एवं याव अणा-

---

२२२. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, दो गति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष सातावेदनीय आदिका भङ्ग इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं।

२२३. सासादनसम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। देवगतिचतुष्क और दो शरीरोंका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग सासादनसम्यक्त्वके समान है। सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। संज्ञी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार भुगजारबन्ध समाप्त हुआ।

पदनिक्षेप समुत्कीर्तना

२२४. आगे पदनिक्षेपका प्रकरण है। वहाँ ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

---

१. ता०प्रतौ 'उ०। [उ०] पगदं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'उक्कस्सिया (य) मवट्ठाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हारग त्ति णेदव्वं। णवरि वेउव्वि०मि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहार० सव्वपगदीणं अत्थि उक्क० वड्डी। ओरालि०मि० देवगदिपंचग० अत्थि उक्क० वड्डी।

२२५ जह० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं अत्थि जहण्णिगा वड्डी जहण्णिगा हाणी जह० अवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग[1] त्ति णेदव्वं। णवरि वेउव्वियमिस्स०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहार० सव्वपगदीणं अत्थि जह० वड्डी। ओरालियमि० देवगदिपंच० अत्थि जह० वड्डी।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता[2]।

सामित्तं

२२६. सामित्तं दुविधं--जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०जस०-उच्चा०-पंचंत० उक्कस्सिया वड्डी कस्स०? जो सत्तविधबंधगो[3] तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो तदो छव्विधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स? जो छव्विधबंधगो उक्कस्स-जोगी मदो देवो जादो तप्पाओग्गजहण्णए जोगट्ठाणे[4] पदिदो तस्स उक्क० हाणी।

इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगति-पञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धि है।

२२५. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि है। औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी जघन्य वृद्धि है।

विशेषार्थ—यहाँ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी आदि चार मार्गणाओंमें उत्तरोत्तर योगकी वृद्धि होनेसे मात्र वृद्धि सम्भव है। तथा यही बात औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगति-पञ्चकके विषयमें जानना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

इसप्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

२२६. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हो अनन्तर छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो उत्कृष्ट योगवाला जीव मरा और देव होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है।

१. ता०प्रतौ 'एवं अणाहारग' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'एवं समुक्कित्तणा समत्ता।' इति पाठो नास्ति। ३. ता०प्रतौ 'कस्स? सत्तविधबंधगो' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ '–जहण्णयं (ए) जोगट्ठाणे' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? जो छव्विधबंधगो उक्कस्सजोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजहण्णगे पडिदो तदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। उक्कस्सादो जो जोगट्ठाणादो पडिभग्गो यम्हि[1] जोगट्ठाणे पडिदो तं जोगट्ठाणं थोवं। जहण्णगादो जोगट्ठाणादो यम्हि उक्कसगं जोगट्ठाणं गच्छदि तं जोगट्ठाणमसंखेंज्जगुणं[2]। एवं उक्कस्सगस्स अवट्ठाणगस्स साधणं। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-असाद०-णवुंस०-णीचा० उक्क० वड्डी कस्स० ? जो अट्ठविधबंधगो तप्पाओंग्गजहण्णगो, तप्पाओंग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सजोगट्ठाणं गदो सत्तविध० जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तगेसु उववण्णो तप्पाओंग्गजहण्णगे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजह० जोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। णिद्दा-पयला-पच्चक्खाण०४-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं० उक्क० वड्डी कस्स० ? जो सम्मा० अट्ठविधबंधगो तप्पाओंग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सं जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? जो सम्मा० सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो देवो जादो तप्पाओंग्गजहण्णजोगट्ठाणे

उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो उत्कृष्ट योगवाला जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित हुआ और उसके बाद सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। उत्कृष्ट योगस्थानसे प्रतिभग्न होकर जिस योगस्थानमें पतित हुआ वह योगस्थान स्तोक है, जघन्य योगस्थानसे जिस उत्कृष्ट योगस्थानमें जाता है वह योगस्थान असंख्यातगुणा है। इस प्रकार यह उत्कृष्ट अवस्थानका साधनपद है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, असातावेदनीय, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगवाला जो जीव मरा और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो उत्कृष्ट योगवाला जीव प्रतिभग्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। निद्रा, प्रचला, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो सम्यग्दृष्टि जीव मरा और देव होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट

१. ता०प्रतौ 'पडिभंगो (ग्गो) यम्हि' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'जोगट्ठाणे पडिदो तं जोगट्ठाणमसंखेज्जगुणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। एवं पच्चक्खाण०४। णवरि संजदासंजदादो कादव्वं। कोधसंजलणाए उक्क० वड्ढी कस्स० ? जो मोहणीयपंचविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो तदो मोहणीयस्स चदुविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? जो मोहणीयस्स[1] चदुविधबंधगो मदो देवो जादो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? मोहणीयस्स चदुविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणे पडिदो मोहणीयस्स पंचविधबंधगो जादो तस्स उक्कस्सयं अवट्ठाणं। माणसं०-मायासं०-लोभसं० उक्क० वड्ढी कस्स० ? मोहणीयस्स चदुविधबंधगो तिविधबंधगो दुविधबंधगो तप्पाओग्गजह० जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तदो मोहणीयस्स तिविध० दुविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो मोहणीयस्स तिविध० दुविध० एयविधबंधगो मदो देवो जादो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? यो मोहणीय० तिविध० दुविध० एकविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्ग-

अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगमें पतित हुआ और अनन्तर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि आदिका स्वामी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संयतासंयतका अवलम्बन लेकर कहना चाहिए। क्रोध संज्वलनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? मोहनीयकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर मोहनीयकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा वह क्रोधसंज्वलनको उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? मोहनीयकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जो जीव मरा और देव होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित हुआ वह संज्वलन क्रोधकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? मोहनीयकी चार प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर मोहनीयकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा वह उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? मोहनीयके चार प्रकारके, तीन प्रकारके और दो प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर अनन्तर मोहनीयके तीन प्रकारके और दो प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? मोहनीयके तीन प्रकारके, दो प्रकारके और एक प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव मरा और देव होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित हुआ वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? मोहनीयके तीन प्रकारके, दो प्रकारके और एक प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला तथा उत्कृष्ट योगसे युक्त जो

१. ता०प्रतौ 'कस्स ? मोहणीयसस्स' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह०जोग० पडिदो तदो मोहणी० चदुविध० तिविध० दुविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। पुरिस० उक्क० वड्ढी कस्स० ? जो मोहणीयस्स णवविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सगं जोगट्ठाणं गदो तदो मोहणीयस्स पंचविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? जो मोहणी० पंचविध-बंध० उक्क०जोगी मदो देवो जादो तप्पाओग्गजह०जोग० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? जो मोहणी० पंचविधबं० उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्ग-जह०जोगट्ठाणे पडिदो[1] मोहणी० णवविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। इत्थिवे० उक्क० वड्ढी कस्स० ? जो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो असण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं।

२२७. अण्णदरे आउगे बंधमाणो पुरदो अंतोमुहुत्तमग्गदो[2] अंतोमुहुत्तं याव

जीव प्रतिभग्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें पतित होकर अनन्तर मोहनीयके चार प्रकारके, तीन प्रकारके और दो प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? मोहनीयके नौ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर अनन्तर मोहनीयके पाँच प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? मोहनीयके पाँच प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और देव होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? मोहनीयके पाँच प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर मोहनीयके नौ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

२२७. अन्यतर आयुका बन्ध करनेवाला जीव आगेका जो अन्तर्मुहूर्त है उस अन्तर्मुहूर्त कालके समाप्त होने तक आयुकर्मका बन्ध करता है। इस प्रकार इस कालमें यदि सम्यग्दृष्टि है तो

१. ता०प्रतौ 'जोगट्ठाणं पडिदो' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अंतोमुहुत्तं मं (?) गदो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउगं बंधदि। एवं एदं कालं सम्मादिट्ठी सम्मादिट्ठी चेव, मिच्छादिट्ठी मिच्छादिट्ठी चेव, यदि सासणो सासणो चेव, यदि असंजदो असंजदो चेव, यदि संजदासंजदो संजदासंजदो चेव[1], यदि संजदो संजदो चेव। एदं कारणं अट्ठस्स हेदू किंत्तिदं। एदं कारणं दंसणावरणस्स च पंचण्णं[2] पगदीणं मिच्छत्त-बारसक० एदेसिं कम्माणं यथोपदिट्ठाणं उक्कस्सपदणिक्खेवसामित्तसाधणत्थं यो संसयो तं संसयं णिस्संसयं काहिदि त्ति एदं कारणं हेदू किंत्तिदं। चदुण्णं आउगाणं उक्क० वड्ढी कस्स०? यो० अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं[3] गदो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स०? यो अट्ठविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। एवं आउगस्स सव्वत्थ याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

२२८. णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वि०-वेउ०अंगो०-दोआणु० उक्क० वड्ढी कस्स०? यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स०? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सगादो जोगट्ठाणादो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे[4] पडिदो अट्ठविधबंधगो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं।

सम्यग्दृष्टि ही रहता है, मिथ्यादृष्टि है तो मिथ्यादृष्टि ही रहता है, यदि सासादनसम्यग्दृष्टि है तो सासादनसम्यग्दृष्टि ही रहता है, यदि असंयतसम्यग्दृष्टि है तो असंयतसम्यग्दृष्टि ही रहता है, यदि संयतासंयत है तो संयतासंयत ही रहता है और यदि संयत है तो संयत ही रहता है। इस कारण विवक्षित विषयका हेतु कहा है। तथा इसी कारण यथोपदिष्ट दर्शनावरणकी पाँच प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व और बारह कषाय इन कर्मोंके उत्कृष्ट पदनिक्षेप सम्बन्धी स्वामित्वको सिद्ध करनेके लिए जो संशय है उस संशयको निःसंशय कर देता है। इस कारण हेतु कहा है। चार आयुओंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त हुआ है, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वह अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। आयुकर्मका सर्वत्र अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार स्वामित्व जानना चाहिए।

२२८. नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और दो आनुपूर्वीकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट योगस्थानसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योग-

---

१. ताप्रतौ 'मिच्छादिट्ठी चेव यदि असंजदो असंजदो चेव यदि संजदासंजदा संजदासंजदा चेव' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'च प (पं) चणं' इति पाठः। ३. आ०प्रतौ 'तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणं' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'उक्कस्सगादो पडिदो तप्पाओग्गजहण्ण [जो] गट्ठाणे' आ०प्रतौ 'उक्कस्सगादो जोगट्ठाणादो पडिदो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२९. तिरिक्खगदिणामाए उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो अट्ठविध० तप्पाओग्ग-जहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो तदो तेवीसदिणामाए सह सत्तविध-बंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्सजोगी मदो सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तगेसु उववण्णो तप्पाओग्गजह० पडिदो तीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्कस्स-जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो। ताधे ताओ चेव तेवीसदिणामाए बंधदि णो तीसं। केण[1] कारणेण ? आउगबंधस्स अभासे जाओ चेव णामाओ ताओ चेव बंधदि[2] याव आउगबंधगद्धा पुण्णो त्ति। अण्णं च[3] पुण पुरदो अंतोमुहुत्तमग्गदो अंतोमुहुत्तं णीचा। एदेण कारणेण तेवीसदिणामाओ बंधमाणगस्स उक्कस्सयं अवट्ठाणं णो तीसा। एवं ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-अथिर-असुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि० तिरिक्खगदिभंगो कादव्वो।

२३०. मणुसग० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो अट्ठविधबंधगो जहण्णगादो जोग-

---

स्थानको प्राप्त हुआ और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

२२९. तिर्यञ्चगति नामकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर अनन्तर नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर तथा तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त कर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। उस समय वह नामकर्मकी उन्हीं तेईस प्रकृतियोंका बन्ध करता है; तीस प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता; क्योंकि आयुकर्मका बन्ध प्रारम्भ होते समय नामकर्मकी जिन प्रकृतियोंका बन्ध करता है, आयु-बन्धके कालके पूर्ण होने तक उन्हीं प्रकृतियोंका बन्ध करता रहता है। और भी अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे अन्तर्मुहूर्त आगे तक उन्हीं प्रकृतियोंका बन्ध करता है। इस कारणसे नामकर्मकी तेईस प्रकृ-तियोंका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है; तीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला नहीं। इसीप्रकार औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान कहना चाहिए।

२३०. मनुष्यगतिकी उत्कृष्ट प्रदेशवृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी पचीस

---

१. ता०प्रतौ 'णो ति संकेण' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'जाओ चेव बंधदि' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'पुणो त्ति अण्ण च' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठाणादो उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो पणवीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबं० उक्क०जोगी मदो मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णो तप्पाओग्गजह० पडिदो एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो सत्तविध० उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजह० जोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो। ताधे ताओ चेव पणवीसदिणामाए बंधदि णो एगुणतीसं। केण कारणेण ? तं चेव कारणं यं तिरिक्खगदिणामाए भणिदं। एदेण कारणेण पणवीसदिणामाए बंधमाणगस्स उक्क० अवट्ठाणं णो एगुणतीसं।

२३१. एइंदिय-थावर० तिरिक्खगदिभंगो।[1] णवरि हाणी मदो छव्वीसदिणामाए। बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-पंचिंदि०-[तस०] उक्क० वड्ढी कस्स० ? मणुसगदिभंगो। णवरि उक्क० हाणी कस्स० ? बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि०-पंचिंदिएसु उववण्णो तीसदिणामाए बंधगो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्ग० पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो।

प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगको प्राप्त हुआ और नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। उस समय वह जीव नामकर्मकी उन्हीं पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है; उनतीस प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता। कारण क्या है ? वही कारण है जो तिर्यञ्चगतिनामके सम्बन्धमें कह आये हैं। इस कारणसे नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है; उनतीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला नहीं।

२३१. एकेन्द्रियजाति, और स्थावर प्रकृतिका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि जो मरनेके बाद नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति और त्रसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? इनका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगके साथ आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह इनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। वह उस समय नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंका

१. ता०प्रतौ 'एइंदि० थावरतिरिक्खगदि णवरि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताधेव[1] पणुवीसदिणामाओ[2] बंधदि णो तीसं। केण कारणेण ? तं चेव। एदं कारणं पण-वीसदिणामाओ बंधमाणगस्स उक० अवट्ठाणं णो तीसं।

२३२. आहारदुगं उक० वड्डी कस्स० ? यो अट्ठविधबंधगो। तप्पाओंग्गजह०[3] जोगट्ठाणादो उक० जोगट्ठाणं गदो तीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक० वड्डी। उक० हाणी कस्स ? यो सत्तविधबं० उक०जोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्ग-जह० पडिदो तस्स उक० हाणी। तस्सेव से काले उक० अवट्ठाणं।

२३३. समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० उक० वड्डी कस्स० ? यो अट्ठ-विधबंधगो तप्पाओंग्ग० उक० जोगट्ठाणं गदो अट्ठावीसदिणामाए सह सत्तविध-बंधगो जादो तस्स [उक०] वड्डी। उक० हाणी कस्स[4]० ? यो सत्तविधबंध० उक० जोगी मदो देवो जादो तप्पा०जह० पडिदो तीसदिणामाए सह बंधगो जादो तस्स उक०[5] हाणी। उक० अवट्ठाणं कस्स० ? यो सत्तविध० उक० जोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजहण्णगे० पडिदो अट्ठविधबंधगो[6] जादो। ताधे ताओ चेव अट्ठावीसदिणामाए

बन्ध करता है; तीस प्रकृतियोंका नहीं। कारण क्या है ? कारण वही पूर्वोक्त है। इस कारण नामकर्मकी पचीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है; तीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जीव नहीं।

२३२. आहारकद्विककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

२३३. समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योग स्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और देव हुआ। तथा तत्प्रायोग्य जघन्य योगको प्राप्तकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगको प्राप्त हुआ और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। उस समय वह नामकर्मकी उन्हीं अट्ठाईस प्रकृतियोंका बन्ध करता है; तीसका नहीं। कारण

---

१. ता०प्रतौ 'ताघे व' इति पाठः। २. आ०प्रतौ, 'पणुवीसदिणामाए' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'अप्पाओ जह०' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'हाणी० उ० (?) कस्स' इति पाठः। ५. ता०प्रतौ 'तीसदि-णामाए बंधगो' जादो तस्से० उक०' इति पाठः। ६. ता०आ०प्रत्योः 'अवट्ठिदबंधगो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधदि णो तीसं। केण कारणेण ? तं चेव कारणं। एदेण कारणेण अट्ठावीसदिणामाओ बंधमाण० उक्क० अवट्ठा० णो[1] तीसं बंधदि।

२३४. चदुसंठा०-पंचसंघ० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजह० जोगट्ठाणादो उक्क०[2] जोगट्ठाणं गदो एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो[3] तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबं० उक्क० जोगी मदो असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो तप्पाओग्गजह० पडिदो तीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क० जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णगे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो। ताधे ताओ चेव एगुणतीसदिणामाओ[4] बंधदि णो तीसं। केण कारणेण ? तं चेव कारणं।

२३५. ओरालियअंगो०-असंपत्तसे० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं च पंचिंदियभंगो। उक्क० हाणी बेइंदियअपज्जत्तगेसु उववण्णो तप्पा०जह० जोगट्ठाणे पडिदो[5] तीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। पर०-उस्सा०-पज्जत्त-थिर-सुभ० उक्क०

क्या है ? वही पूर्वोक्त कारण है। इस कारण नामकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जीव उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है; तीसका बन्ध करनेवाला नहीं।

२३४. चार संस्थान और पाँच संहननकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मर कर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। उस समय वह नामकर्मकी उन्हीं उनतीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है, तीसका बन्ध नहीं करता। कारण क्या है ? वही पूर्वोक्त कारण है।

२३५. औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और असम्प्राप्तासृपाटिका संहननकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, स्थिर, और शुभकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। उत्कृष्ट हानिका

---

१. आ०प्रतौ 'उक्क० असाद० णो' इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः 'जह० जोग० गदो उक्क०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'सत्तविधबंधो (धगो) जादो' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ '–णा [मा] ओ' इति पाठः। ५. ता०आ०प्रत्योः 'जह० जोगी पडिदो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्डी अवट्ठाणं च पंचिंदियभंगो। उक्क० हाणी [कस्स०]? मदो[1] सुहुमेइंदियपज्जत्तगेसु उववण्णो तप्पा०जह० जोगट्ठाणे तीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी।

२३६. आदाव० उक्क० वड्डी कस्स०? यो अट्ठविध० तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो[2] उक्क० जोगट्ठाणं गदो छव्वीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स? यो सत्तविधबं० उक्क० जोगी मदो बादरेइंदियपज्जत्तएसु उववण्णो जहण्णजोगट्ठाणे पडिदो छव्वीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स०? जो सत्तविधबंधगो उक्क० जोगी पडिभग्गो अट्ठविधबंधगो जादो। ताधे चेव छव्वीसदिणामाए बंधदि। उज्जोव० उक्क० वड्डी आदावभंगो। उक्क० हाणी० [कस्स]? मदो बादरएसु उववण्णो तीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स०? यो सत्तविध० उक्क० जोगी पडिभग्गो अट्ठविधबंधगो जादो। ताधे वि ताओ चेव छव्वीसदिणामाओ बंधदि णो तीसं। केण कारणेण? तं चेव कारणं। एदेण कारणेण छव्वीसदिणामाओ बंधमाणगस्स उक्क० अवट्ठाणं० णो तीसदि० बंध०।

स्वामी कौन है? जो मरकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है।

२३६. आतपकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर जघन्य योगस्थानको प्राप्त हुआ तथा नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह आतपके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। वह उस समय नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है। उद्योतकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी आतपके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो जीव मरा और बादरोंमें उत्पन्न होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उद्योतकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। वह उस समय भी नामकर्मकी उन्हीं छब्बीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है; तीसका नहीं। कारण क्या है? वही पूर्वोक्त कारण है। इस कारणसे नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जीव उद्योतके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है; तीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जीव नहीं।

---

१. ता०प्रतौ 'हाणी [कस्स?] मदो' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'यो अवट्ठिद० तप्पाओग्गजह०-जोगट्ठाणादो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३७. अप्पसत्थ०–दुस्सर० उक्क० वड्ढी देवगदिभंगो। उक्क० हाणी कस्स० ? मदो णेरइएसु उववण्णो तीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं समचदु०भंगो। सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० वड्ढी तिरिक्खगदिभंगो। हाणी तं चेव पणवीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? यो सत्तविधबंधगो एवं[1] याव अट्ठविधबं० जादो ताधे वि ताओ चेव तेवीसदिणामाए[2] बंधदि णो पणवीसं तस्स उक्क० अवट्ठाणं। बादरणामाए उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं तिरिक्खगदिभंगो। हाणी० ? मदो बादरएइंदियअपज्जत्तएसु उववण्णो तीसदिणामाए बंध० जादो तस्स उक्क० हाणी। पत्तेयसरीरं तिरिक्खगदिभंगो। णवरि णियोद वज्ज पत्तेयसरीरसुहुमेसु उववण्णो। तित्थ० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं णग्गोदभंगो। उक्क० हाणी कस्स ? जो सत्तविधबं० उक्क० जोगी मदो देव-णेरइएसु उववण्णो तप्पाओग्ग-जह० पडिदो तीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। एदेण बीजेण णेरइग-देवेसु सव्वपगदीणं उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं हाणीओ च ओघं देवगदिभंगो। एवं सव्वणिरय-देवाणं।

२३८. तिरिक्खेसु पंचणा०-दोवेदणी०-दोगोद०-पंचंत० वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणि

---

२३७. अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी देवगतिके समान है। इनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो जीव मरा और नारकियोंमें उत्पन्न होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इनके उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग समचतुरस्रसंस्थानके समान है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी तिर्यञ्चगतिके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? वही जीव जब नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंका बन्धक हुआ तब उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला इसी प्रकार आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला हुआ वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। वह तब भी नामकर्मकी उन्हीं तेईस प्रकृतियोंका बन्ध करता है; पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता। बादरनामकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो जीव मरा और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। प्रत्येकशरीरका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि निगोदको छोड़कर जो प्रत्येकशरीरसूक्ष्मोंमें उत्पन्न हुआ, ऐसा कहना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिकी वृद्धि और अवस्थानका स्वामी न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके समान है। इसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरकर देव नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इस बीजपदके अनुसार नारकी और देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामीका भङ्ग ओघसे देवगतिके समान है। इसी प्रकार सब नारकी और देवोंमें जानना चाहिए।

२३८. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट

---

१. ता०प्रतौ 'सत्तविधबंध०। एवं' इति पाठः। २. ता०आप्रत्योः 'तेत्तीसदिणामाए' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं थीणगिद्धिभंगो[1]। चदुआउ०-वेउव्वियछक्क-मणुस०-मणुसाणु०- उच्चा० तिण्णि वि सत्थाणे कादव्वं। ओघेण अट्ठावीसाए सह उक्कस्सं तेसिं कम्माणं[2] सत्थाणे कादव्वं। तिण्णि वि एसिं सम्मादिट्ठी सामित्तं तेसिं सत्थाणे कादव्वं। सेसाणं ओघं।

२३९. पंचिंदियतिरिक्ख०३ पंचणाणावरणदंडओ थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-असाद०-णवुंस०-णीचा० उक्क० वड्ढी कस्स०? यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सगं जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स०? जो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी मदो असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तगेसु उववण्णो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स? यो सत्तविध० उक्कस्सजोगी पडिभग्गो अट्ठविधबंधगो[3] जादो तस्स उक्कस्सं अवट्ठाणं। छदंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं० उक्क० वड्ढी कस्स०? अट्ठविधबं० तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणादो उक्कस्स-जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स? जो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। अपच्चक्खाण०४ असंजदसम्मादिट्ठि०,

---

वृद्धि, हानि और अवस्थानका स्वामी ओघसे स्त्यानगृद्धिके समान है। चार आयु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके तीनों पदोंका स्वामित्व स्वस्थानमें कहना चाहिए। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके साथ जिनका उत्कृष्ट स्वामित्व है, उनको स्वस्थानमें करना चाहिए। जिनके तीनों पदोंका सम्यग्दृष्टि स्वामी है, उनको स्वस्थानमें कहना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

२३९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण दण्डक, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, असातावेदनीय, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योग-स्थानको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। छह दर्शनावरण, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला-जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ और सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके

---

१. ता०प्रतौ 'ओघं। थीणगिद्धिभंगो' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'उक्कस्सं कम्माणं' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'अट्ठविधं बंध०' आ०प्रतौ 'अवट्ठिदबंधगो' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ '-जोगट्ठाणं उक्कस्स-जोगट्ठाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चक्खाण०४ संजदासंजदस्स। एवं संजलणचत्तारि[1] चदुआउ-चदुगदि-चदुजादि० एदाणि देवगदिभंगो। पंचिंदियजादि-चदुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ० उक्क० वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणि णाणावरणभंगो। णवरि हाणी असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तगेसु उववण्णो। चदुसंठा०-चदुसंघ० असण्णिपंचिंदियपज्जत्तगेसु उववण्णो।

२४०. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-छण्णोक०-पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-असंप० उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं तिरिक्खगदिभंगो[2]। णवरि हाणी असण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो। सेसाणं सत्थाणे वड्ढी हाणी अवट्ठाणं कादव्वं। एवं सव्वअपज्जत्तगाणं। णवरि अप्पप्पणो अपज्जत्तगेसु उववण्णो।

२४१. मणुस०३ तिरिक्खभंगो। णवरि सम्मादिट्ठि-उवसम - खवगपगदीणं वड्ढी अवट्ठाणं मूलोघं। हाणी अवट्ठाणम्हि कादव्वं।

२४२. एइंदिएसु दोआऊणि मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आदें०-उच्चा० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च

सब पदोंका स्वामी असंयतसम्यग्दृष्टि और प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके सब पदोंका स्वामी संयतासंयत जीव है। इसी प्रकार चार संज्वलनके स्वामित्वके विषयमें जानना चाहिए। चार आयु, चार गति और चार जाति इनका भङ्ग देवोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, चार संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और छह संहननकी उत्कृष्ट हानि, वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ, वह इनकी हानिका स्वामी है। तथा असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ जीव चार संस्थान और चार संहननकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है।

२४०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, छह नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है, वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान स्वस्थानमें करना चाहिए। इसी प्रकार सब अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ जीव स्वामी है।

२४१. मनुष्यत्रिकमें तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सम्यग्दृष्टिसम्बन्धी तथा उपशम और क्षपक प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानिका भङ्ग मूलोघके समान है। हानि अवस्थानमें करनी चाहिए।

२४२. एकेन्द्रियोंमें दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रकी वृद्धि, हानि और अवस्थान स्वस्थानमें करने चाहिए। शेष प्रकृतियोंके वृद्धि और

---

१. ता०प्रतौ 'संजदासंजदस्स एवं। संजलणचत्तारि' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'तिरिक्खिगदिभंगो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थाणे कादव्वं । सेसाणं वड्डी अवट्ठाणं बादरस्स कादव्वं । हाणी मदो सुहुमणिगोदेसु उववण्णो । आदाव० बादरपुढविपज्जत्त० सत्थाणे कादव्वं । एवं पंचकायाणं । विगलिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । णवरि पंचणा०-णवदंसणा० - दोवेदणी०-मिच्छ०--सोलसक०--सत्तणोक०--विगलिंदियजादि--ओरालि०अंगो०--असंप०--णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्डी अवट्ठाणं सत्थाणे कादव्वं । हाणी मदो अपज्जत्तगेसु उववण्णो० । सेसाणं सत्थाणे तिण्णि वि कादव्वं ।

२४३. पंचिंदिएसु सव्वपगदीणं ओघं । णवरि तिरिक्खगदि-चदुजादीणं ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०--अगु०--उप०--आदाउज्जो०-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमिणं एदाणं वड्डी अवट्ठाणं ओघं । हाणी अवट्ठाणम्हि कादव्वं । सेसाणं ओघं । एवं तस०२ ।

२४४. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जसगि०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० वड्डी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क० जोगी तप्पाओंग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सं जोगट्ठाणं गदो छव्विधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स० ? जो छव्विधबंधगो उक्कस्सजोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजहण्णगे जोगट्ठाणे पडिदो सत्तविध०तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं । थीणगि०३-

---

अवस्थान बादर जीवके करने चाहिए । तथा जो मरकर सूक्ष्म निगोद जीवोंमें उत्पन्न हुआ उसके हानि करनी चहिए । आतपकी उत्कृष्ट वृद्धि आदि बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तके स्वस्थानमें करनी चाहिए । इसी प्रकार पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए । विकलेन्द्रियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, विकलेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान स्वस्थानमें करने चाहिए । तथा जो मरकर अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ, वह इनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके तीनों ही स्वस्थानमें कहने चाहिए ।

२४३. पञ्चेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, चार जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, आतप, उद्योत, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण इनकी वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है । हानि अवस्थानके समय करनी चाहिए । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार त्रसद्विकमें जानना चाहिए ।

२४४. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा वही जीव अनन्तर समयमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छ०-अणंताणु०४– [-असाद०-] इत्थि०-णवुंस०-णीचा० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो अट्ठविध० तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्कस्सजोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णगे जोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। णिद्दा-पयला०-छण्णोक० उक्क० वड्ढी कस्स० ? सम्मादि० अट्ठविधबं० तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। अपच्च-क्खाण०४ असंजदसम्मादिट्ठिस्स चदुगदियस्स सत्थाणे वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च कादव्वं। पच्चक्खाण०४ संजदासंजदस्स च दुगदियस्स तिण्णि वि सत्थाणेण। चदु संजलणं पुरिस० वड्ढी अवट्ठाणं ओघभंगो। हाणि-अवट्ठाणेसु पढमसमए हाणी विदिय-समए अवट्ठाणं णादव्वं। चदुण्णं आउगाणं ओघं। णामाणं सव्वाणं वड्ढी हाणी अवट्ठाणं ओघभंगो। णवरि हाणी अप्पप्पणो अवट्ठाणेसु पढमसमए उक्कस्सिया हाणी विदियसमए उक्कस्सयमवट्ठाणं। सेसाणं सत्थाणे तिण्णि वि कादव्वाणि। एवं ओरालियकायजोगि०-कायजोगी० ओघं[1]।

उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, असाता-वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और नीचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। निद्रा, प्रचला और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ और सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा और वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्कके चार गतिके असंयतसम्यग्दृष्टिके स्वस्थानमें वृद्धि, हानि और अवस्थान करने चाहिए। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके तीनों ही पद दो गतिके संयतासंयत जीवके स्वस्थानमें कहने चाहिए। चार संज्वलन और पुरुषवेदकी वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। अपने अवस्थानमें प्रथम समयमें उत्कृष्ट हानि होगी और द्वितीय समयमें अवस्थान होगा। चार आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। नामकर्मकी सब प्रकृतियोंकी वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि हानि और अपने-अपने अवस्थान इनमेंसे उत्कृष्ट हानि प्रथम

१. आ०प्रतौ 'ओरालियकाजोगि ओघं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४५. ओरालियमि० पंचणा०-थीणगि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणुबं०४-णवुंस०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी कस्स० ? जो सत्तविधबं० तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सजोगट्ठाणं गदो से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क० जोगी मदो सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगेसु उववण्णो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क० जोगी पडिभग्गो अट्ठविधबंधगो जादो तप्पाओग्ग-जह० जोगट्ठाणे पडिदो तस्सेव से काले उक्कस्सयं अवट्ठाणं। छदंस०-बारसक०-सत्त-णोक० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो सम्मादिट्ठी तप्पाओग्गजहण्णगादो[1] जोगट्ठाणादो [उक्कस्सयं जोगट्ठाणं गदो] तस्सं उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी अवट्ठाणं णाणा०-भंगो। आयु० दो वि ओघं। णवरि अण्णदरस्स पंचिंदिय० सण्णि त्ति भणिदव्वं। णामाणं वड्ढी णाणाव०भंगो। हाणी अवट्ठाणं च अप्पप्पणो ओघं। णवरि देवगदि०४ उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्णदरस्स सम्मादि० तप्पाओग्गजहण्णगादो जोगट्ठाणादो उक्कस्सजोगट्ठाणं[2] गदो से काले सरीरपज्जत्तिं जाहिदि त्ति तस्स० उक्क० वड्ढी। समचदु०-

समयमें होती है और दूसरे समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। शेष प्रकृतियोंके स्वस्थानमें तीनों ही कहने चाहिए। इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। काययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

२४५. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त करेगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सम्यग्दृष्टि तत्प्रायोग्य जघन्य योग-स्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। तथा इनकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। दोनों आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञीके कहना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंकी वृद्धिका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा हानि और अवस्थानका भङ्ग अपने-अपने ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हो, अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करेगा, वह उनकी वृद्धिका स्वामी है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर

१. आ०प्रतौ 'सम्मादिट्ठि त्ति० तप्पाओग्गजह ण्णगादो' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'जोगट्ठाणादो जोगट्ठाणं० (?) उक्क० जोगट्ठाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च णिद्दाए भंगो। णवरि हाणी असण्णीसु उववण्णो। चदुसंठा०-पंचसंघ० वड्ढी अवट्ठाणं ओघं। हाणी असण्णीसु उववण्णो। तित्थयरं देवगदिभंगो। एवं सेसाणं वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणि णाणा०भंगो।

२४६. वेउव्वियका० देवभंगो[1]। वेउव्वियमि० पंचणा० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्णद० मिच्छादि० तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी। एवं थीणगि०३–दोवेदणी[2]०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णवुंस०- दोगोद०-पंचंत०। णवरि पंचणा०-दोवेदणी०-उच्चा०-पंचंत० सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा कादव्वं। छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० वड्ढी कस्स० ? यो अण्णद० सम्मादि० तप्पाओं०जहण्णजोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। एवं सव्वपगदीणं। आहार०-आहारमि० मणजोगिभंगो। णवरि आहारमि० से काले सरीरपज्जत्तिं गाहिदि त्ति।

२४७. कम्मइगे पंचणा०-थीणगि०३–दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४–इत्थि०[3] णवुंस०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी कस्स० ? तप्पाओग्गजह० जोगट्ठाणादो उक्क०

और आदेयकी वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग निद्राके समान है। इतनी विशेषता है कि हानि असंज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके कहनी चाहिए। चार संस्थान और पाँच संहननकी वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। इनकी हानि असंज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके कहनी चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग देवगतिके समान है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

२४६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करेगा,वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, नपुंसकवेद, दो गोत्र और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे जान लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, दो वेदनीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी सम्यग्दृष्टि भी है और मिथ्यादृष्टि भी है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ,वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जो अनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको ग्रहण करेगा,ऐसा और कहना चाहिए।

२४७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ,वह उनकी

---

१. आ०प्रतौ 'देवगादिभंगो' इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः 'उक्क० वड्ढी।......दोवेदणी०' इति पाठः। ३. ताप्रतौ 'अणंता। इत्थि०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठि० तप्पाओंग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। तिरिक्खगदिणामाए उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो तेवीसदिणामाए तप्पाओंग्गजह० जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क० -हुंडसं०-वण्ण०४–तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर०-बादर-सुहुम-पत्तेय०-साधार०अथिर-असुभ-दूभग-अणादें०-अजस०-णिमिण त्ति। मणुसगदिणामाए[1] उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो पणवीसदिणामाए तप्पाओंग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्कस्सं जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। एवं मणुसगदिभंगो चदुजादि-ओरालि०-अंगो०-असंप०-मणुसाणु०-पर०-उस्सा०-तस-पज्जत्त०-थिर-सुभ-जस०। देवगदि० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो सम्मादिट्ठी तप्पाओंग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। एवं देवगदि०४। एवं चेव तित्थय०। णवरि एगुणतीसदिणामाए बंधगो जादो तस्स० उक्क० वड्ढी। चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दुस्सर० उक्क० वड्ढी कस्स० ? एगुणतीसदिणामाए बंधगो तप्पाओंग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। आदाउज्जो० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो छब्बीसदिणामाए बंधगो

उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। तिर्यञ्चगतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी तेईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जो जीव जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इस प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माणकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी जानना चाहिए। मनुष्यगतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार मनुष्यगतिके समान चार जाति, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रस, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी जानना चाहिए। देवगतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? सम्यग्दृष्टि जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वी और वैक्रियिकद्विक इन तीन प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जो नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंका बन्धक है, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रा-योग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है।

१. ता०प्रतौ 'णिमिण त्थि (त्ति)। मणुसगदिणामाए' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप्पाओग्गजहण्णादो जोगट्ठाणादो उकस्सजोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्डी। एवं अणाहारगेसु।

२४८. इत्थिवेदेसु पंचणा०-थीणगि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थिवे०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्डी कस्स० ? जो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजह०-जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी मदो असण्णीसु उववण्णो तप्पाओग्ग-जह० जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? जो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क अवट्ठाणं। णिद्दा-पयला-छण्णोक० उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठि० यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क०जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उकस्सिगा वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? जो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णजोगट्ठाणे पडिदो[1] अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। एवं अपच्चक्खाण०४ असंजद० पच्चक्खाण०४ संजदा-

आतप और उद्योतकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? नामकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

२४८. स्त्रीवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और असंज्ञियोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। निद्रा, प्रचला और छह नोकषायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रति-भग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही जीव अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि आदि पदोंका स्वामित्व असंयत-सम्यग्दृष्टिके तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि आदि पदोंका स्वामित्व संयतासंयत

१. ता०प्रतौ '-जोगट्ठाणं पडिदो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजद० । णवुंस० तिण्णि वि मणुसभंगो । चदुदंसणा० उक्क० वड्ढी कस्स० ? जो छव्विध-बंधगो तप्पाओग्गजह०जोग०[1] उक्क० जोगट्ठाणं गदो चदुविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० ? जो चदुविधबंधगो[2] उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्ग-जह०जोगट्ठाणे पडिदो छव्विधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । चदुसंजल० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो अण्णद० पमत्तसंजदस्स अट्ठविध-बंधगो जादो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधब० पडिभग्गो अट्ठविध-बंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । पुरिस० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं ओघं । हाणी अवट्ठाणम्हि[3] कादव्वं । चदुआउ० ओघं । णामाणं सव्वाणं जोणिणिभंगो । णवरि तिरिक्खग० अण्णदर० दुगदि० । एवं सव्वाओ णामाओ । पुरिस० इत्थिवेदभंगो । णवरि सम्मादिट्ठिपगदीणं । हाणी मदो अण्णदरीए गदीए उववण्णो तप्पा०जह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी । सेसाणं हाणी अवट्ठाणम्मि कादव्वं ।

जीवके कहना चाहिए । नपुंसकवेदके तीनों ही पदोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है । चार दर्शनावरणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? छह प्रकारके दर्शनावरणका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर चार प्रकारके दर्शनावरणका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? चार प्रकारके दर्शनावरणका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और छह प्रकारके दर्शनावरणका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा वही अनन्तर समयमें उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । चार संज्वलनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करकेवाला जीव प्रतिभग्न होकर आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा अनन्तर समयमें वही जीव उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । पुरुषवेदकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ओघके समान है । हानि अवस्थानके समय करनी चाहिए । अर्थात् अवस्थानका स्वामित्व घटित करते समय पूर्व समयमें हानि होती है और अनन्तर समयमें अवस्थान होता है । चार आयुओंका भङ्ग ओघके समान है । नामकर्मकी सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिका भङ्ग अन्यतर दो गतिके जीवके कहना चाहिए । इसी प्रकार नाम-कर्मकी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए । पुरुषवेदी जीवोंमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि सम्यग्दृष्टि सम्बन्धी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानिका स्वामित्व कहते समय जो जीव मरा और अन्यतर गतिमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि अवस्थानमें करनी चाहिए ।

१. ता०प्रतौ [त] प्पाओग्गजह० जोग०' इति पाठः । २. आ०प्रतौ 'जो छव्विधबंधगो' इति पाठः । ३. ता०आ०प्रत्योः 'हाणी अवट्ठाणं हि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४९. णवुंसगे पंचणा० वड्डी अवट्ठाणं सत्थाणे। हाणी मदो सुहुमणिगोदजीवेसु उववण्णो। सम्मादिट्ठिपगदीणं वड्डी अवट्ठाणं सत्थाणे। हाणी अण्णदरस्स मदस्स वा सत्थाणे। णवरि णिद्दा-पयला०-अट्ठक०-छण्णोक० ओघं। सेसाणं सत्थाणे। णामाणं ओघभंगो। अवगदवेदे ओघभंगो। णवरि सत्थाणे हाणी। कोधादि०३ सत्तण्णं[1] क० णवुंसगभंगो। णामाणं ओघभंगो। लोभे ओघं।

२५०. मदि-सुद० पंचणा० उक्क० वड्डी कस्स०? यो अट्ठविधबंधगो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी[2] कस्स०? जो सत्तविधबंधगो उक्क० जोगी मदो सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएसु उववण्णो तप्पाओग्गजह०जोग० पडि० तस्स० उक्क० हाणी। अवट्ठाणं सत्थाणे णेदव्वं। णवदंसणा०-सादासाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगोद०-चदुआउ०[3] सव्वाओ णामपगदीओ ओघो भवदि। एवं मदि०भंगो अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि त्ति विभंगे पंचणाणावरणादीणं तिण्णि वि सत्थाणे कादव्वाणि।

२५१. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-जस०-उच्चा०-पंचंत०

२४९. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान स्वस्थानमें कहने चाहिए। तथा उत्कृष्ट हानि जो जीव मरकर सूक्ष्म निगोद जीवोंमें उत्पन्न हुआ है, उसके कहनी चाहिए। सम्यग्दृष्टि सम्बन्धी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान स्वस्थानमें कहने चाहिए। तथा उत्कृष्ट हानि अन्यतर मरे हुए जीवके अथवा स्वस्थानमें कहनी चाहिए। इतनी विशेषता है कि निद्रा, प्रचला, आठ कषाय और छह नोकषायका भङ्ग ओघके समान है। शेषका स्वामित्व स्वस्थानमें कहना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि हानि स्वस्थानमें कहनी चाहिए। क्रोधादि तीन कषायवाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग नपुंसकवेदवाले जीवोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। लोभ कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

२५०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी स्वस्थानमें ले जाना चाहिए। नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, दो गोत्र, चार आयु और सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ इनका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मत्यज्ञानियोंके समान अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादिके तीनों ही पद स्वस्थानमें कहने चाहिए।

२५१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और

१. आ०प्रतौ 'कोधादि०४सत्तण्णं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'तस्स उक्क०। हाणी' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'दोगदि० चदुआउ० 'इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं ओघं। णिद्दा-पचला-असादा०-छण्णोक० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्णद० यो अट्ठविधबं० तप्पाओंग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्कस्सजोगट्ठाणं गदो सत्तविध-बंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? सत्तविधबंधगो मदो तप्पा-ओंग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो[1] सत्तविधबं० उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजह० पडिदो अट्ठविधबंधगो जादो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। अपचक्खाण०४ असंजद० पच्चक्खाण०४ संजदासंजदस्स। चदुसंजल०-पुरिस०-दोआउ०, ओघभंगो। मणुसग० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो अट्ठविधबं० तप्पाओंग्ग-जह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओंग्गजह० पडिदो अट्ठविधबंधगो० तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। एवं[2] ओरा०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०। देवगदि०४ मूलोघं[3]। पंचिंदि० उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं देवगदिभंगो। हाणी मदो देवेसु उववण्णो एगुणतीसदिणामाए सह सत्त-

---

अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो अन्यतर जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त होकर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव मरा और तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके तीन पदोंका स्वामित्व असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके और प्रत्याख्याना-वरणचतुष्कके तीन पदोंका स्वामित्व संयतासंयत जीवके कहना चाहिए। चार संज्वलन, पुरुषवेद और दो आयुका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्तकर नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उसकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार औदारिकशरीर, औदारिक-शरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी वृद्धि आदि तीन पदोंका स्वामित्व जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कका भङ्ग मूलोघके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग देवगतिके समान है। उत्कृष्ट हानि—जो जीव मरा और देवोंमें उत्पन्न होकर नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह

---

१. ता०प्रतौ 'अवट्ठा० [क० ?] यो' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अवट्ठाण०। [क्रमागतताडपत्रस्या-भानुपलब्धिः। अक्रमयुक्तमन्यं समुपलभ्यते।] एवं' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'मणुसाणु० देवगदि४ मूलोघं' इति पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधबंधगो जादो तस्स उक्क० हाणी[1]। एवं सव्वाओ णामाओ। णवरि आहारदुगं तित्थ० ओघं। अथिर-असुभ-अजस० तिण्णि वि पंचिंदियभंगो। णवरि सत्तविधबंधगस्स कादव्वं। एवं ओधिदंस०-सम्मा०[2]-खइग०-वेदगस०-उवसमसम्मादिट्ठीसु। मणुसगदिपंचगस्स वड्ढी हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे कादव्वं।

२५२. मणपज्जवे० सत्तण्णं क० मणुसगदिभंगो। णामाणं देवगदिआदियाणं वड्ढी हाणी अवट्ठाणं आभिणि०भंगो। णवरि सत्थाणे हाणी णेदव्वं। एवं सव्वाणं णामाणं। अथिर-असुभ-अजस० सत्तविधबंध० कादव्वं। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०।

२५३. सुहुमसं० छण्णं[3] क० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणादो उक्क० जोगट्ठाणं गदो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? उक्कस्सगादो जोगट्ठाणादो पडिभग्गो तप्पाओग्गजह०जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। संजदासंजद० परिहारभंगो।

२५४. असंजदेसु पंचणा०-थीणगि०३-दोवेद०-मिच्छ०-अणंताणु४-इत्थि०-

पञ्चेन्द्रियजातिकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार नामकर्मकी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके तीनों ही पदोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके कहना चाहिए। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। मनुष्यगतिपञ्चककी वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग स्वस्थानमें कहना चाहिए।

२५२. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। नामकर्मकी देवगति आदिकी वृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि हानि स्वस्थानमें ले जानी चाहिए। इसी प्रकार नामकर्मकी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिकी वृद्धि आदि सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके कहनी चाहिए। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

२५३. सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हुआ है, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट योगस्थानसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा है, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। संयतासंयत जीवोंमें परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है।

२५४. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गोत्र और पाँच अन्तरायका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके

१. ता०प्रतौ 'उक्कसि [या] हाणी।' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'एवं ओधिदं०। सम्मा०' इति पाठः। ३. ताप्रतौ 'परिहार० सुहुमसं० छण्णं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवुंस०-दोगोद०-पंचंत० मदि०भंगो । छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स अट्ठविधबं० तप्पाओग्गजह० [उक्क०] जोगट्ठाणं गदो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स० ? जो सम्मादिट्ठी उक्क०जोगी मदो अण्णदरीए गदीए उववण्णो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी । उक्क० अवट्ठाणं कस्स० ? यो सत्तविधबं० उक्क०जोगी पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णगे जोगट्ठाणे पडिदो[1] अट्ठविधबंधगो जादो तस्स० उक्क० अवट्ठाणं । णामाणं मदि०भंगो । णवरि देवगदि०४—समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० ओघं ।

२५५. चक्खुदंसणी० तसपज्जत्तभंगो । णवरि चदुरिंदियपज्जत्तेसु उववण्णो० । अचक्खु० ओघं । किण्ण-णील-काऊणं असंजदभंगो । तेऊए पंचणा०-थीणगि०३—[दोवेद०-] मिच्छ०-अणंताणु०४—इत्थिवेद-दोगोद-पंचंत० उक्क० वड्ढी कस्स० ? अण्णदरस्स अट्ठविधबंधगो सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो सत्तविधबंधगो उक्क०जोगी मदो देवो जादो तस्स उक्क० हाणी । णवरि थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४—इत्थिवे० दुगदियस्स[2] । अवट्ठाणं सत्थाणे० । छदंस०-सत्त-

समान है। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानसे उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त कर सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट योगवाला सम्यग्दृष्टि जीव मरा और अन्यतर गतिमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला उत्कृष्ट योगसे युक्त जीव प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा और आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनके उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयका भङ्ग ओघके समान है ।

२५५. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रस पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुए जीवके कहना चाहिए। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। कृष्ण नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें असंयत जीवोंके समान भङ्ग है। पीतलेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, दो गोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला और उत्कृष्ट योगसे युक्त जो जीव मरा और देव हो गया, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेद इनका भङ्ग दो गतिवाले जीवके कहना चाहिए। तथा इनके अवस्थानका स्वामित्व

१. ता०प्रतौ 'तप्पाओग्गजहणं जोगट्ठाणं पडिदो' इति पाठः । २. ता०आ०प्रत्योः 'इत्थिवे० सेसाणं दुगदियस्स,' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णोक० उक्क० वड्डी कस्स० ? अण्णद० सम्मादिट्ठि० अट्ठविधबं० सत्तविधबंधगो जादो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स० ? यो उक्क०जोगी मदो जह०जोगट्ठाणे पडिदो तस्स उक्क० हाणी। अवट्ठाणं सत्थाणे कादव्वं। अपच्चक्खाण०४- [पच्चक्खाण०४] ओघं। संजलणं पमत्तसंजदस्स कादव्वं। तिण्णिआउ० ओघं०। तिरिक्खगदिणामाए पणवीसं संजुत्ताणं च। मणुसगदिपंचगं[1] आदाउज्जोवं सोधम्मभंगो। देवगदि०४ सत्थाणे कादव्वं। आहारदुगं ओघं। पंचिंदियणामाए वड्डी अवट्ठाणं देवगदिभंगो। हाणी मदो देवो जादो तीसदिणामाए बंधगो जादो तप्पाओग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। एवं समचदु०-पसत्थ०सुभग-सुस्सर-आदें०। णवुंस[2]० सत्थाणे कादव्वं। चदुसंठा०-पंचसंघ०- अप्पसत्थ०-दुस्सर० सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि णामाणं तिरिक्खगदि-मणुसगदिसंजुत्ताणं सहस्सारभंगो। एवं देवगदिसंजुत्ताणं आभिणि०भंगो। एवं सुक्काए वि। णवरि सम्मत्तपगदीणं ओघभंगो। सेसाणं आणदभंगो। अट्ठावीसदि-संजुत्ताणं आभिणि०भंगो। भवसिद्धिया० ओघभंगो।

स्वस्थानमें कहना चाहिए। छह दर्शनावरण और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करने लगा, वह उनकी उत्कृष्टि वृद्धिका स्वामी है। उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट योगवाला जीव मरा और जघन्य योगस्थानमें गिर पड़ा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इनका उत्कृष्ट अवस्थान स्वस्थानमें कहना चाहिए। अप्रत्याख्यानवरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। संज्वलनका भङ्ग प्रमत्तसंयतके कहना चाहिए। तीन आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चगतिकी उत्कृष्ट वृद्धि आदिका स्वामित्व नामकर्मकी पच्चीस प्रकृतियोंसे संयुक्त हुए जीवके होता है। मनुष्यगतिपञ्चक, आतप और उद्योतका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। देवगतचतुष्कका भङ्ग स्वस्थानमें कहना चाहिए। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिकी वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग देवोंके समान है। तथा उत्कृष्ट हानि—जो जीव मरा और देव होकर नामकर्मकी तीस प्रकृतियोंके साथ बन्धक होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वह उसकी उत्कृष्टि हानिका स्वामी है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी अपेक्षा जानना चाहिए। नपुंसकवेदका भङ्ग स्वस्थानमें कहना चाहिए। चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिसंयुक्त नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। इसी प्रकार देवगतिसंयुक्त प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वप्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग आनतकल्पके समान है। देवगति आदि अट्ठाईस संयुक्त प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

---

१. ता०प्रती–संजुत्ताणं च मणुसगदिपंचगं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'आदे० णवुंस०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५६. सासणे तिण्णिआऊणि देवगदि०४ तिण्णि वड्ढी हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे कादव्वं। सेसाणं वड्ढी अवट्ठाणं सत्थाणे०। हाणी अण्णदरो मदो अण्णदरेसु एइंदिएसु उववण्णो तप्पा०जह० पडिदो तस्स उक्क० हाणी। सम्मामि० सव्वाणं पगदीणं सत्थाणे कादव्वं। देवगदिअट्ठावीससंजुत्ताणं मणुसगदिपंचगस्स एगुणतीसदिणामाए सह सत्तविधबंधगस्स। सण्णी० ओघं। णवरि थावर-विगलिंदियसंजुत्ताओ संत्थाणे कादव्वाओ। असण्णि० तिरिक्खोघं। णवरि सव्वाओ पगदीओ मिच्छादिट्ठिस्स कादव्वाओ। आहारा० ओघं।

एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं।

२५७. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० णिरयाउ-देवाउ-णिरयगदि-देवगदि-वेउव्वि०-आहार०-दोअंगो०दोआणु०-तित्थ० जह० वड्ढी कस्स०? यो वा सो वा यत्तो[1] वा तत्तो वा हेट्ठिमाणंतरजोगट्ठाणादो उवरिमाणंतरजोगट्ठाणं गदो तस्स जह० वड्ढी। जद० हाणी कस्स०? यो वा सो वा यत्तो वा तत्तो वा उवरिमाणंतर-जोगट्ठाणादो[2] हेट्ठिमाणंतरं जोगट्ठाणं गदो तस्स जह० हाणी। एक्कदरत्थमवट्ठाणं। सेसाणं सव्वपगदीणं जह० वड्ढी कस्स०? यो वा सो वा परंपरपजत्तगो वा परंपरअपजत्तगो वा

२५६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीन आयु और देवगतिचतुष्कको तीनों ही वृद्धि, हानि और अवस्थान स्वस्थानमें कहने चाहिए। शेष प्रकृतियोंकी वृद्धि और अवस्थान स्वस्थानमें कहने चाहिए। हानि—जो अन्यतर जीव मरा और अन्यतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य योगस्थानमें गिरा, वह उनकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट वृद्धि आदि तीनों पद स्वस्थानमें कहने चाहिए। देवगति आदि अट्ठाईस संयुक्त प्रकृतियोंका और मनुष्यगतिपञ्चकका भङ्ग नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियोंके साथ सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवके कहना चाहिए। संज्ञी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्थावर और विकलेन्द्रिय संयुक्त प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानमें कहना चाहिए। असंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंका भङ्ग मिथ्यादृष्टिके कहना चाहिए। आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

२५७. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करप्रकृतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो कोई जीव जहाँ-कहींसे अधस्तन अनन्तर योगस्थानसे उपरिम अनन्तर योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी जघन्य वृद्धिका स्वामी है। उनकी जघन्य हानिका स्वामी कौन है? जो कोई जीव जहाँ कहींसे उपरिम अनन्तर योगस्थानसे अधस्तन अनन्तर योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी जघन्य हानिका स्वामी है। तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है। शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है? जो कोई परम्परा पर्याप्तक जीव या परम्परा अपर्याप्तक जीव

१. ताप्रतौ 'सो [वा] यत्तो' इति पाठः। २ ता. प्रतौ 'उवरिमाणंतरं जोगट्ठाणादो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्तो वा तत्तो वा हेट्ठिमाणंतरजोगट्ठाणादो उवरिमाणंतरजोगट्ठाणं गदो तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स० ? यो वा सो वा परंपरपज्जत्तगो वा परंपरअपज्जत्तगो वा यत्तो वा तत्तो वा उवरिमाणंतरादो जो०ट्ठाणादो हेट्ठिमाणंतरजोगट्ठाणं गदो तस्स जह० हाणी। एकदरत्थमवट्ठाणं। एवं ओघभंगो सव्वतिरिक्ख--सव्वमणुस-सव्वएइंदिय-सव्व-विगलिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तापज्जत्त--पंचकाय-सव्वतसकाय--कायजोगि०--इत्थि०--पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-आभिणि०-सुद-ओधि०--असंजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०--तिण्णिले०--भवसि०--अब्भवसि०-सम्मादि०--खइग०-वेदग०--मिच्छा०-सण्णि-असण्णि-आहारग त्ति।

२५८. णेरइएसु सव्वपगदीणं ओघं णिरयगदिभंगो। एवं सव्वणिरय-सव्वदेव पंचमण०-पंचवचि०-ओरालिय०-वेउव्वियका०--आहारका०-अवगद०--विभंग०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०--संजदासंज०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०। ओरालियमि० देवगदिपंचगस्स जह० वड्ढी क० ? अण्णदरस्स दुसमयओरालियकाय-जोगिस्स। सेसाणं ओघो। वेउव्वियमिस्स० सव्वपगदीणं जह० वड्ढी क० ? अण्ण-दरस्स दुसमयवेउव्वियका०मिस्सगस्स। एवं आहारमि०। कम्मइग०-अणाहारगेसु सव्व-

---

जहाँ-कहींसे अधस्तन अनन्तर योगस्थानसे उपरितन अनन्तर योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी जघन्य वृद्धिका स्वामी है। उनकी जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो कोई परम्परा पर्याप्तक जीव या परम्परा अपर्याप्तक जीव जहाँ-कहींसे उपरिम अनन्तर योगस्थानसे अधस्तन अनन्तर योगस्थानको प्राप्त हुआ, वह उनकी जघन्य हानिका स्वामी है। तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है। इस प्रकार ओघके समान सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय व पर्याप्त और अपर्याप्त, पाँच स्थावरकायिक, सब त्रसकायिक, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधि-दर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

२५८. नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघसे नरकगतिके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब देव, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी, अपगतवेदी, विभङ्गज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोप-स्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, संयतासंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जिसे औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुए दो समय हुए, ऐसा अन्यतर दो गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जिसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुए दो समय हुए हैं, ऐसा अन्यतर जीव उनकी जघन्य वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकायोगी जीवोंमें जानना चाहिए। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगदीणं जह० वड्डी कस्स० ? अण्णदरस्स सुहुम० दुसमय-विग्गहगदिसमावण्णस्स तस्स जह० वड्डी एगमेवपदं। णवरि देवगदिपंचगस्स ओरालियमिस्सभंगो। णवरि ओघो०[1]। किंचि विसेसो।

एवं जहण्णयं समत्तं।

एवं सामित्तं समत्तं।

अप्पाबहुअं

२५६. अप्पाबहुगं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्क० पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० चदुआउ० वेउव्वियछक्कं आहारदुगं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्डी। उक्क० हाणी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाधियाणि। सेसाणं पगदीणं सव्वत्थोवा उक्क० वड्डी। उक्क० अवट्ठाणं विसेसाधियं। उक्क० हाणी[2] विसे०। एवं ओघभंगो[3] पंचिंदिय-तस०२-कायजोगि[4]-कोधादि०४-मदि०-सुद०-आभिणि०-सुद-ओधि०-असंजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-तिण्णिले०-तेउ-पम्म-सुक्कले०-भवसि०-अभवसि०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सासण०-मिच्छा०-सण्णि-असण्णि-आहारग त्ति। णवरि एदेसिं सव्वेसिं पगदीणं अप्पाबहुगं। यासिं पगदीणं मरणं णत्थि० तेसिं आउगभंगो कादव्वो।

स्वामी कौन है ? जिसे विग्रहगतिको प्राप्त हुए दो समय हुए ऐसा अन्यतर सूक्ष्म जीव सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धिका स्वामी है। यहाँ एक ही पद है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवगतिपञ्चकका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि ओघसे कुछ विशेषता है।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्व

२५६. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे चार आयु, वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों परस्परमें तुल्य होकर भी विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है। उससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। इस प्रकार ओघके समान पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन सबमें अल्पबहुत्व है। तथा जिन प्रकृतियोंके बन्धके समय मरण नहीं है, उनका भङ्ग आयुकर्मके समान कहना चाहिए।

१. ता०प्रतौ 'मिस्सभंगो णवरि। ओघो' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'विसेसाधियं। हाणी' इति पाठः ३. ता०प्रतौ 'विसेसाधि०। ओघभंगो' इति पाठः। ४. आ०प्रतौ 'तस० कायजोगि०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६०. सव्वणेरइ०-देव०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरा०-वेउ०-आहार०-अवगदवे०-विभंग०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०-संजदासंजद-सम्मामिच्छा० एदेसिं वि याओ पगदीओ अत्थि तेसिं मूलोघं यथा आहारसरीरं तथा कादव्वं। ओरालियमि० दोआउ० ओघं। देवगदिपंचगं वज्ज। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क० अवट्ठाणं। उक्क०हाणी विसे०। उक्क० वड्ढी असंखेँज्जगु०। वेउव्वियमि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु हाणी अवट्ठाणं च णत्थि[1]। एक्कमेव वड्ढी।

एवं उक्कस्सयं अप्पाबहुगं समत्तं।

२६१. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं जह० वड्ढी जह० हाणी जह० अवट्ठाणं च तिण्णि वि तुल्लाणि। एस कमो याव अणाहारग त्ति। णवरि वेउव्वियमि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहार० जह० वड्ढी। हाणी अवट्ठाणं णत्थि[2]। ओरालियमिस्स० देवगदिपंचगस्स एक्कमेव पदं वड्ढी अत्थि। सेसं णत्थि।

एवं जहण्णं अप्पाबहुगं समत्तं।

२६२. एसिं पगदीणं अणंतभागवड्ढी अणंतभागहाणी वा तेसिं पगदीणं तम्हि चेवं समए अजहण्णिया वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठणं वा होज्ज, ण पुण एरिसलक्खणं पत्तेगम्हि।

---

२६०. सब नारकी, सब देव, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी, अपगतवेदवाले, विभङ्गज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, संयतासंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन मार्गणाओंमें जो प्रकृतियाँ हैं, उनका अल्पबहुत्व मूलोघसे जिस प्रकार आहारकशरीरका कहा है, उस प्रकार करना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। तथा देवगतिपञ्चकको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। उससे उत्कृष्ट वृद्धि असंख्यातगुणी है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें हानि और अवस्थान नहीं है, एकमात्र वृद्धि है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

२६१. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान तीनों ही तुल्य हैं। यह क्रम अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जघन्य वृद्धि है। हानि और अवस्थान नहीं हैं। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चकका एकमात्र वृद्धिपद है, शेष दो पद नहीं है।

इस प्रकार जघन्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

२६२. जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि या अनन्तभागहानि होती है, उन प्रकृतियोंकी उसी समयमें अजघन्य वृद्धि, हानि या अवस्थान होवे, पर इस प्रकारका लक्षण प्रत्येकमें नहीं है।

---

१. ता०प्रतौ 'हाणि-अवट्ठाणं णत्थि' इति पाठः। २. ताप्रतौ 'जह० वड्ढिहाणिअवट्ठाणं णत्थि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढिबंधो समुकित्तणा

२६३. एत्तो वड्ढिबंधे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि। तं जहा—समुकित्तणा[1] याव अप्पाबहुगे त्ति १३। समुकित्तणाए दुविधो णिद्देसो—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुआउ०-पंचंत० अत्थि [असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणी संखेंज्जभागवड्ढि-हाणी[2] संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० अत्थि अणंतभागवड्ढि-हाणी असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणी संखेंज्जभागवड्ढि-हाणी संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा[3] य। दोवेदणीयं सव्वाओ णामपगदीओ दोगोदं अत्थि चत्तारिवड्ढि-हाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-सुक्कले०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति।

२६४. णिरएसु छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० अत्थि पंचवड्ढी पंचहाणी अवट्ठा०। सेसाणं[4] धुविगाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिदबंधगा य। सेसाणं परियत्तमाणियाणं पगदीणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठाणं अवत्तव्वबंधगा य। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेव-वेउव्वि०-असंजद०-पंचलेस्सा०।

वृद्धिबन्ध समुत्कीर्तना

२६३. आगे वृद्धिबन्धका प्रकरण है। उसमें ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। यथा—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक १३। समुत्कीर्तनाका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु और पाँच अन्तरायकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि, असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। दो वेदनीय, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ और दो गोत्रकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

२६४. नारकियोंमें छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थान पदके बन्धक जीव हैं। शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अव-

---

१. ता०प्रतौ 'सम (मु) कित्तणा' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अत्थि संखेज्जभागवड्ढि संखेजभाग-वड्ढिहाणि' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'अवट्ठा (ट्ठिद) अवत्तव्वबंधगा' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'अवट्ठा (ट्ठिद०)। सेसाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६५. सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं थावराणं च सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं धुविगाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिदबंधगा य। सेसाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठि० अवत्तव्वबंधगा य।

२६६. ओरालियमि० अपज्जत्तभंगो। णवरि देवगदिपंचगस्स अत्थि असंखेंज-गुणवड्ढिबंधगा य। सेसाणं णत्थि। वेउव्वियमि०-आहारमि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु धुविगाणं एक्कवड्ढी। सेसाणं परियत्तमाणियाणं अत्थि असंखेंज्जगुणवड्ढि० अवत्तव्व-बंधगा य।

२६७. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधेसु पंचणाणावरणीयाणं चदुदं०-चदुसंज०-पंचंत० अवत्त० णत्थि। सेसपदा अत्थि। सेसाणं पगदीणं ओघं। एवं माणे। णवरि पंचणा०-चदुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत०। एवं मायाए। णवरि पंचणा०-चदुदंस०-दोसंज०-पंचंत०। एवं लोभे। णवरि पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत०। अवगदवे० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-चदुसंज०-जसगि०-उच्चा०-पंचंत० अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य।

स्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब देव, वैक्रियिककाययोगी, असंयत और पाँच लेश्यावाले जीवोंमें जानना चाहिए।

२६५. त्रस और स्थावरके सब अपर्याप्तक, सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेष प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं।

२६६. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपर्याप्तक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव हैं। शेष पदोंके बन्धक जीव नहीं हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी एक वृद्धि है। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं।

२६७. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और क्रोधकषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका अवक्तव्य पद नहीं है। शेष पद हैं। तथा इनमें शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार मानकषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायका अवक्तव्यपद नहीं है। इसी प्रकार मायाकषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तरायका अवक्तव्यपद नहीं है। इसी प्रकार लोभकषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका अवक्तव्यपद नहीं है। अपगतवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं।

१. ता०प्रतौ 'पंचलेस्सा सव्वअपज्जत्तगाणं तसाणं थावराणं च। सव्वएइंदिय-' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६८. मदि-सुद० धुविगाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिदबंधगा य। सेसाणं परियत्तमाणिगाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। एवं विभंग०-अब्भव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति। णवरि मदि-सुद० विभंग०भंगो। मिच्छा० सादभंगो[1]।

२६९. आभिणि-सुद-ओधि० चदुदंस०-अट्ठक० अत्थि पंचवड्ढी पंचहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। सेसाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। एवं ओधिदंस०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम० त्ति। णवरि वेदगे धुविगाणं अवत्तव्वं णत्थि। छदंसणा० णाणा०भंगो।

२७०. मणपज्जवे सव्वपगदीणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। चदुदंसणा० अत्थि पंचवड्ढी पंचहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० - संजदासंजद० - सासण०। सम्मामि० धुविगाणं अत्थि चत्तारिवड्ढि-हाणी अवट्ठाणं। सेसाणं अत्थि चत्तारिवड्ढी चत्तारिहाणी अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता

---

२६८. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेष परावर्तमान प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इस प्रकार विभङ्गज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें विभङ्गज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। तथा मिथ्यात्वका भङ्ग सातावेदनीयके समान है।

२६९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार दर्शनावरण और आठ कषायकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। शेष प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है। तथा छह दर्शनावरणका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

२७०. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। चार दर्शनावरणकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, संयतासंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेष प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्य-पदके बन्धक जीव हैं।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

---

१. आ०प्रतौ 'असादभंगो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामित्तं

२७१. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप० - णिमि० - पंचंत० चत्तारिवड्ढि - हाणि-अवट्ठिदबंधगो कस्स० ? अण्णदरस्स। अवत्तव्वबंध० कस्स० ? अण्णद० उवसमग० परिपदमाण० मणुसस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबं० कस्स ? अण्ण०। अवत्त० कस्स० ? अण्ण० संजमादो वा संजमासंजमादो वा सम्मत्तादो वा सम्मामिच्छत्तादो वा परिपदमाणगस्स पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा। णवरि मिच्छा० अवत्त० सासणसम्मत्तादो वा त्ति भणिदव्वं। णिद्दा-पयला-भय-दुगं०चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ? अण्ण०[1]। अवत्तव्व० णाणा०भंगो। अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्ण० पढमसमयसम्मादिट्ठि० संजदासंजद० संजदस्स वा। अणंतभागहाणी कस्स० ? अण्णद० सम्मत्तादो परिपदमाणगस्स पढमसमयमिच्छा० [सासण०]। चदुदंस० णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्ढी[2] कस्स ? अण्णद० पढमसमयअसंजदसम्मा० संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा पढमसमए वड्ढमाणगस्स। अणंतभागहाणी कस्स० ? अण्णद० अपुव्व-

स्वामित्व

२७१. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है। अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला अन्यतर मनुष्य और मनुष्यिनी तथा प्रथम समयवर्ती देव उनके अवक्तव्यबन्धके स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है। उनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? संयम, संयमासंयम, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसे गिरकर जो प्रथम समयमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि हुआ है, वह उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धका सासादनसम्यक्त्वसे च्युत होकर जो प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि हुआ है, वह जीव भी स्वामी है-ऐसा कहना चाहिए। निद्रा, प्रचला, भय और जुगुप्साकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है। अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। उनकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत जीव उनकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी है। उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो सम्यक्त्वसे च्युत होकर प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि जीव है, वह उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी है। चार दर्शनावरणका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि उनकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? प्रथम समयवर्ती अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासयत और संयत जीव उनकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी है। उनकी अनन्त-

१. ता०प्रतौ 'अणु (ण्ण०)' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'णवरि अवत्त० अणंतभागवड्ढी' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणस्स वा णिद्दा-पयलाणं पढमसमयबंधगस्स पढमसमयमिच्छादिट्ठिस्स [सासण०] वा । सेसाणं पदाणं णाणा०भंगो । दोवेदणी० सव्वाओ णामपगदीओ दोगोद० चत्तारि-वड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ? अण्णद० । अवत्तव्वं कस्स० ? अण्णद० परियत्तमाणगस्स पढमसमयबंधगस्स । अपच्चक्खाण०४ अणंतभागवड्ढी कस्स ? अण्ण० पढमसमय० असंजदस्स । अणंतभागहाणी कस्स० ? अण्णद० सम्मत्तादो परिपडमाणपढमसमय-मिच्छादि० वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा । सेसाणं पदाणं णाणा०भंगो । पच्चक्खाण०४ अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्ण० पढमसमयअसंजदस्स वा संजदासंजदस्स वा । हाणी कस्स० ? अण्ण० संजमादो वा संजमासंजमादो वा परिपडमाणगस्स पढमसमय-मिच्छादिट्ठिस्स वा असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा । सेसाणं पदाणं णाणावरणभंगो[1] । णवरि अट्ठक० अवत्तव्वं भुजगारभंगो । चदुसंजलणाणं[2] अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्ण० पढमसमयअसंजदसम्मा० वा संजदासंजदस्स वा संजदस्स वा । हाणी कस्स० ? अण्ण० संजमादो वा संजमासंजमादो वा सम्मत्तादो वा परिपडमाणगस्स पढमसमय-मिच्छादिट्ठिस्स वा सासण० वा सम्मामि० वा असंजदस्स वा संजदासंजदस्स वा । सेसाणं पदाणं णाणा०भंगो । चदुण्णं आउगाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ?

भागहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर लौटते हुए निद्रा और प्रचलाका बन्ध करनेवाला, ऐसा प्रथम समयवर्ती अपूर्वकरण जीव और प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी है। शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। दो वेदनीय, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ और दो गोत्रकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है। उनके अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर परावर्तमान प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला जीव स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। उनकी अनन्त-भागहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सम्यक्त्वसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्ककी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव स्वामी है। उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयमसे और संयमासंयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंके अवक्तव्यपदका भङ्ग भुजगारके समान है। चार संज्वलनोंकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत जीव स्वामी है। उनकी अनन्त-भागहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयम, संयमासंयम और सम्यक्त्वसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव स्वामी है। शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। चार आयुओंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है। अवक्तव्यपदका स्वामी कौन

१. ता०प्रतौ 'पदा [णं] णाणावरण-भंगो' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'चदुसंजलणाणा (णं)' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्णद० । अवत्त० कस्स० ? अण्णद० पढमसमयआउगबंधमाणगस्स । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि० - कायजोगि-ओरालि०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति । णवरि मणुस०३-पंचमण०-पंचवचि० ओरा० अवत्त[1]० देवो त्ति ण भाणिदव्वं ।

२७२. णिरएसु धुवियाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ? अण्णद० । छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्णद० पढमसमयसम्मादिट्ठिस्स । अणंतभागहाणी कस्स० ? अण्णद० पडिमाण० पढमसमयमिच्छादिट्ठि० वा सासणसम्मा० वा । सेसाणं भुजगारभंगो । एवं सत्तसु पुढवीसु । सव्वतिरिक्ख-सव्वदेव-वेउव्वियका०-असंजद०-किण्ण-णील-काऊणं णिरयभंगो । णवरि तिरिक्खेसु अणंतभागवड्ढि-हाणी० संजदासंजदादो अत्थि त्ति णादव्वं ।

२७३. सव्वअपज्जत्तगेसु[2] धुविगाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ? अण्णद० । सेसाणं परियत्तियाणं ओघभंगो । एवं सव्वअपज्जत्तगाणं एइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं च ।

है ? प्रथम समयमें आयुबन्ध करनेवाला अन्यतर जीव स्वामी है । इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें अवक्तव्यपदका स्वामी देव है, ऐसा नहीं कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ ओघसे सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंका स्वामी कहा है । मात्र तीन वेद और चार नोकषायोंके सम्भव पदोंका स्वामित्व उपलब्ध नहीं होता सो जान कर घटित कर लेना चाहिए ।

२७२. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है । अनन्तभागहानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगार अनुयोगद्वारके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए । सब तिर्यञ्च, सब देव, वैक्रियिककाययोगी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि संयतासंयतके सम्पर्कसे भी होती है । अर्थात् संयतासंयतमें भी अनन्तभागवृद्धि होता है और उससे गिरनेवाले जीवके भी अनन्तभागहानि होती है, ऐसा जानना चाहिए ।

२७३. सब अपर्याप्तक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । शेष परावर्तमान प्रकृतियोंका भङ्ग

---

१. आ०प्रतौ 'तस० पंचमण पंचवचि० ओरा० अवत्त०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'सव्वा (व्व) अपज्जत्तगेसु' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७४. ओरालियमि० धुविगाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ? अण्णद० । सेसाणं परियत्तमाणिगाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० कस्स० ? अण्णद० । अवत्त० कस्स० ? अण्णद० परियत्तमाण० पढमसमयबंधगस्स । देवगदिपंचग० संखेँज्जगुणवड्ढि० कस्स० ? अण्णद० सम्मादि० ।

२७५. वेउव्वियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० असंखेँज्जगुणवड्ढी कस्स० ? अण्णद० । सेसाणं असंखेँज्जगुणवड्ढी कस्स ? अण्णद० । अवत्त० कस्स० ? अण्णद० परियत्तमाणपढमसमयपढमबंधगस्स[1] । एवं आहारमि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु । णवरि अप्पप्पणो धुविगाओ णादव्वाओ ।

२७६. इत्थिवेदगेसु ओघं । णवरि अवत्त० मणुसि०भंगो । एवं णवुंसगे । पुरिस० ओघं । अवगदवेदे ओघं । णवरि अवत्त० परिपदमाण० उवसम० पढमसमयबंधगस्स । एवं सुहुमसं० । णवरि अवत्त० णत्थि । कोधादि०४ ओघं । णवरि अप्पप्पणो धुविगाओ णादव्वाओ ।

ओघके समान है । इसी प्रकार सब अपर्याप्तक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए ।

२७४. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । शेष परावर्तमान प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? अन्यतर परावर्तमान प्रकृतियोंका प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला जीव स्वामी है । देवगतिपञ्चककी संख्यातगुणवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है ।

२७५. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायकी असंख्यातगुणवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । शेष प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव स्वामी है । अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है ? परावर्तमान प्रकृतियोंका प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर जीव स्वामी है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ जाननी चाहिए ।

२७६. स्त्रीवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपदका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंमें जानना चाहिए । पुरुषवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें जो उपशमश्रेणिसे गिरनेवाला जीव प्रथम समयमें बन्ध करता है, वह उनके अवक्तव्यपदका स्वामी है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी

---

१. आ० प्रतौ '-पढमसयबंधगस्स' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७७. आभिणि[1]-सुद-ओधि० चदुदंस० अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्ण० अपुव्वकरणस्स णिद्दा-पयलाबंधवोच्छिण्णपढमसमयबंधगस्स[2]। अणंतभागहाणी कस्स[3]० ? अण्ण० अपुव्वकरणस्स णिद्दा-पयलापढमसमयबंधगस्स। पच्चक्खाण०४ अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्णदरस्स संजदासंजदस्स पढमसमयबंधमाणगस्स। हाणी कस्स० ? अण्णद० संजमासंजमादो परिपडमाण० पढमसमयबंध०असंजदसम्मादिट्ठि०। चदुसंज० अणंतभागवड्ढी कस्स० ? अण्ण० पढमसमयसंजदासंजदस्स [संजदस्स] वा। अणंतभागहाणी कस्स० ? अण्ण० संजमादो संजमासंजमादो वा परिपडमाणपढमसमयअसंजद० वा संजदासंजदस्स वा। सेसाणं ओघं। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणी णत्थि। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदगस०-उवसम०। मणज्जव[4]० ओघं। णवरि चदुदंस० अणंतभागवड्ढि-हाणी अत्थि। सेसाणं णत्थि। ताओ वि पगदीओ ओधि०भंगो। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०। णवरि एदाणं दोण्णं अणंतभागवड्ढि-हाणी

विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं है। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

२७७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्तिके प्रथम समयमें विद्यमान अन्यतर अपूर्वकरण जीव स्वामी है। उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी कौन है ? उतरते समय प्रथम समयमें निद्रा और प्रचलाका बन्ध करनेवाला अन्यतर अपूर्वकरण जीव स्वामी है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? चढ़ते समय प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर संयतासंयत जीव स्वामी है। उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी कौन है ? संयमासंयमसे गिरनेवाला और प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। चार संज्वलनकी अनन्तभागवृद्धिका स्वामी कौन है ? चढ़ते समय प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर संयतासंयत जीव और संयत जीव स्वामी है। उनकी अनन्तभागहानिका स्वामी कौन है ? संयमसे और संयमासंयमसे गिरनेवाला अन्यतर प्रथम समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि शेष प्रकृतियोंमेंसे किसीकी भी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि नहीं है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है तथा शेषकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि नहीं है। फिर भी उन प्रकृतियोंका भंग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अन्तके इन दोनों संयमोंमें

---

१. ता०प्रतौ 'धुविगाओ। आभिणि०' इति पाठः। २. ता० प्रतौ '-वोच्छिण्णा पढमसमयबंधगं' इति पाठः। ३. आ०प्रतौ 'अणंतभागवड्ढी कस्स०' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'उवसमा (म०) मणपज्जव०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि । एदेण कमेण सामित्तं णेदव्वं ।

एवं सामित्तं समत्तं[1] ।

कालो

२७८. कालाणुगमेण–दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सव्वपगदीणं असंखेंजगुण-वड्डि-हाणिबं० केवचिरं कालादो होदि ? जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । असंखेंज-भागवड्डि-हाणि-संखेंजभागवड्डि-हाणि-संखेंजगुणवड्डि-हाणिबंधकालं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें० । अवड्डि०बंध० जह० एग०, उक्क० पवाइज्जंतेण उवदेसेण एँक्कारससमयं । अण्णेण पुण उवदेसेण पण्णारससमयं । एसिं कम्माणं अणंतभागवड्डि-हाणी अत्थि तेसिं सव्वेसिं च अवत्त० सव्वत्थ कालो एयसमयं । दोण्णं आउगाणं[2] चत्तारिवड्डि-हाणि-अवत्त० णाणा०भंगो । अवड्डिदबंध० केवचिरं कालादो० ? जह० एग०, उक्क० सत्तसमयं । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । णवरि ओरालियमिस्स० देवगदिपंचग० असंखेंजगुणवड्डी केवचिरं कालादो० ? जह० उक्क० अंतोमु० । वेउव्वियमि० सव्वपगदीणं० असंखेंजगुणवड्डिबंधकालो केवचिरं० ? जह०

अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि नहीं है । इस प्रकार इस क्रमसे स्वामित्व ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

काल

२७८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल प्रवर्तमान उपदेशके अनुसार ग्यारह समय है और अन्य उपदेशके अनुसार पन्द्रह समय है । जिन कर्मोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है उनके उन दोनों पदोंका तथा सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका सर्वत्र एक समय काल है । दो आयुओंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवस्थितबन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि बन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

---

१. ता०प्रतौ 'एवं सामित्तं समत्तं' इति पाठो नास्ति । २. ता०प्रतौ 'एगसम [यं दोण्णं] आउगाणं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एग०, उक्क० अंतोमु० । एवं आहारमि० । णवरि एसिं अवत्त० अत्थि तेसिं एयसमयं । कम्मइ०-अणाहारगेसु सव्वपगदीणं असंखेँज्जगुणवड्डी जह० एग०, उक्क० तिण्णिसमयं । देवगदिपंचग० असंखेँज्जगुणवड्डी जह० एग०, उक्क० बेसमयं । एसिं० अवत्त० अत्थि तेसिं एगसमयं । णवरि अवगद० कोधसंजलणाए अवट्ठिदबंधकालं जह० एग०, उक्क० सत्तसमयं । सेसाणं अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० ऍक्कारससमयं । सुहुमसं० अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्तसमयं । उवसम० णिद्दा-पयला-अपच्चक्खाण०४ सव्वाओ णामपगदीओ जसगित्ति वज्ज अवट्ठि० जह० उक्क० सत्तसमयं । सेसाणं अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० ऍक्कारससमयं । अथवा पण्णारससमयं ।

एवं कालं समत्तं ।

अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जिनका अवक्तव्यपद है उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा इनमें जिन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद है उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी जीवोंमें क्रोधसंज्वलनके अवस्थित बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है । शेष प्रकृतियोंके अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ग्यारह समय है । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और यशःकीर्तिको छोड़कर नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ इनके अवस्थितबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल सात समय है । शेष प्रकृतियोंके अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ग्यारह समय अथवा पन्द्रह समय है ।

विशेषार्थ—यहाँ ओघसे जिस प्रकृतिके जितने पद बतलाये हैं,उनमेंसे प्रत्येक एक समय तक हों और दूसरे समयमें अन्य पद हों,यह सम्भव है; इसलिए सबका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । जैसा कि स्वामित्वसे विदित होता है कि अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि जिन प्रकृतियोंकी होती है,एक समयके लिए ही होती है, इसलिए इसके कालके समान उत्कृष्ट काल भी एक समय कहा है । अवस्थितपदके उत्कृष्ट कालके विषयमें दो उपदेश मिलते हैं—एक ग्यारह समयका और दूसरा पन्द्रह समयका, इसलिए यहाँ इन दोनों उपदेशोंका संकलन कर दिया है । उनमेंसे ग्यारह समयवाला उपदेश प्रवर्तमान बतलाया है । और पन्द्रह समयवाले उपदेशको अन्य कहा है । अवक्तव्यपद तो बन्धके प्रथम समयमें ही होता है; इसलिए उसका उत्कृष्ट काल भी एक समय है,यह स्पष्ट ही है । यह ओघप्ररूपणा अनाहारक मार्गणा तक अपने-अपने पदोंके

१. ता० प्रतौ 'ए० अंतो० (?) उ० अंतो०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'ऐ (ए) सिं' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ 'वज्ज । अवट्ठि०' इति पाठः । ४. ता०प्रतौ 'एवं कालं समत्तं ।' इति पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं

२७६. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० दोवड्ढि-हाणिबंधंतरं केवचिरं कालादो० ? जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधंतरं केवचिरं० ? जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखेंज०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणि-असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० वेछावट्ठि० देसू०। दोवड्ढि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० णाणा०भंगो। छदंस०-चदुसंज०-

---

अनुसार सर्वत्र बन जाती है, इसलिए अनाहारक मार्गणातक इसी प्रकार जानना चाहिए-यह कहा है। मात्र जिन मार्गणाओंमें कुछ विशेषता है उनमें उसका अलगसे निर्देश किया है। यथा—औदारिकमिश्रकाययोगी मार्गणामें अन्य प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका काल तो ओघके समान बन जाता है,पर देवगतिपञ्चककी मात्र असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है, और इस मार्गणाका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें इन पाँच प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें यद्यपि सामान्यसे सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है,पर यह काल परावर्तमान प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका जानना चाहिए। ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त यहाँ भी है। आहारक-मिश्रकाययोगी जीवोंमें भी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है, इसलिए उनमें 'इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए' यह कहा है। इन दोनों मार्गणाओंमें जिनका अवक्तव्यपद है,उनके उस पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है,यह स्पष्ट ही है। कार्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणाका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय होनेसे इनमें सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। मात्र देवगतिपञ्चकका बन्ध करनेवाले जीवोंका इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट काल दो समय ही प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ इनकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा यहाँ जिनका अवक्तव्यपद है,उनके इस पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, यह भी स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्य मार्गणाओंमें जो विशेषता बतलाई है उसे जानकर घटित कर लेनी चाहिए।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

२७६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके दो वृद्धिबन्ध और दो हानिबन्धका कितना अन्तरकाल है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितबन्धका कितना अन्तर है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है। दो वृद्धि, दो हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय और जुगुप्साकी अनन्तभागवृद्धि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भय-दु० अणंतभागवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल० । सेसपदा णाणा०भंगो । सादासाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०दोवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । मज्झिल्लाओ वड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अंतो०[1] । अट्ठक० अणंतभागवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल० । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । दोण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णाणा०भंगो । इत्थि० मिच्छ०भंगो । णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० देसू० । णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादें० दोवड्ढि-हाणि० अंतिल्लाओ[2] जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । मज्झिल्लाओ दोवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णाणा०भंगो । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । पुरिस० अणंतभागवड्ढि-हाणि० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल० । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० । सेसाणं साद०भंगो । तिण्णिआउ० वेउव्वियछक्कं चत्तारिवड्ढि-चत्तारि हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त०[3] जह० अंतो०, उक्क० सव्वाणं अणंतकालं० ।

अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी दो वृद्धि और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मध्यकी वृद्धि और हानिका तथा अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आठ कषायकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । स्त्रीवेदका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयकी अन्तकी दो वृद्धि और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक छयासठ सागरप्रमाण है । मध्यकी दो वृद्धि और दो हानिका तथा अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर है । पुरुषवेदकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । शेष पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । तीन आयु और वैक्रियिक षट्ककी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका

---

१. ता०प्रतौ 'अवत्त० उक्क० अंतो०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'अत्थिल्लाओ' इति पाठः । ३. ता०आ०प्रत्योः 'ज० ए० उ० अवत्त०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खाउ० दोवड्ढि-हाणि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसद-पुधत्तं०। दोण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० दोवड्ढि-हाणी० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं। दोण्णि-वड्ढि-हाणि-अवट्ठि० साद०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। णवरि उज्जो० अवत्त० जह[1]० अंतो०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं। मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ दोवड्ढि-हाणि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं[2]। दोण्णिवड्ढि-हाणि०-अवट्ठाणं णाणाभंगो। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ चत्तारिवड्ढि[3]-हाणि-अवट्ठि० णाणा०भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० दोवड्ढि-हाणि० अंतिमाओ जह० एग०, उक्क० तिण्णि-पलिदो० सादि०। दोण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०।

जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्चायुकी दो वृद्धि और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। तथा इसकी दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतकी दो वृद्धि और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितपदका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि उद्योतके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारकी दो वृद्धि और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। तथा दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्ककी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननकी अन्तिम दो वृद्धि, और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। औदारिकशरीरके अवक्तव्य

---

१ आ०प्रतौ 'उज्जो० अह०' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'पंचसागरोवमसदं' इति पाठः। ३. आ०प्रतौ 'तस० ३ चत्तारिवड्ढि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखें०। ओरालि०अंगो०-वजरि० अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। आहारदुगं चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोंग्गल०। समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० चत्तारिवड्डि-हाणि-[अवट्ठि०] णाणा०भंगो[1]। अवत्त० ज० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णिपलिदो० देसू०। तित्थ० दोवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० [जह०] अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। णीचा० णवुंसगभंगो। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा।

पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विककी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। तीर्थङ्कर प्रकृतिकी दो वृद्धि और दो हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नीचगोत्रका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। इनका अवक्तव्य बन्धका अन्तर दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़े हुए जीवके इन प्रकृतियोंका अबन्धक होकर और पुनः बन्ध करानेपर ही सम्भव है और इस प्रकार दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर दो बार अबन्धक होनेके बाद पुनः बन्धक होनेका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इनकी शेष वृद्धि, हानि और अवस्थितपद एक समयके अन्तरसे हो सकते हैं, इसलिए तो उनका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। आगे भी सब प्रकृतियोंकी इन वृद्धियों, हानियों और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। अब रहा इन वृद्धियों, हानियों और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर सो इनमेंसे दो वृद्धियों और दो हानियोंकी प्राप्ति यदि अधिकसे अधिक कालमें हो तो वह नियमसे अन्तर्मुहूर्तके बाद सम्भव है, इसलिए इनका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और शेष वृद्धियाँ, हानियाँ व अवस्थित पद यदि अधिकसे अधिक कालमें प्राप्त हों, तो उनकी दो बार प्राप्तिके मध्य अधिकसे अधिक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका अन्तर पड़ सकता है, क्योंकि सब योगस्थान जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं, अतः इनका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिक आदि आठ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट बन्धान्तर

१. आ०प्रतौ 'हाणि० णाणा०भंगो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण होनेसे यहाँ असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। मात्र इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल प्राप्त करनेके लिए इसके स्वामित्वका विचार कर घटित कर लेना चाहिए। छह दर्शनावरण आदि बारह प्रकृतियोंके स्वामित्वके अनुसार अवक्तव्यपदके समान अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव हैं और अवक्तव्यपदके समान इन दोनों पदोंका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण बन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। मात्र इन प्रकृतियोंके इन तीनों पदोंका यह अन्तर काल अपने-अपने स्वामित्वके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका विचार करके ही घटित करना चाहिए। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदि यद्यपि परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, फिर भी योगस्थानोंके अनुसार इनकी दो वृद्धियों और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा मध्यकी दो वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इनके बन्धका एक बार प्रारम्भ होकर व्युच्छित्ति हो जाने पर पुनः दूसरी बार बन्धका प्रारम्भ होनेमें कमसे कम और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त लगता है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आठ कषायोंकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका जो स्वामी कहा है, उसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होनेसे इन पदोंका भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इन आठ कषायोंका उत्कृष्ट बन्धान्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण बतलाया है, इसलिए यहाँ असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेदका बन्धान्तर मिथ्यात्वके समान प्राप्त होनेसे इसका भङ्ग मिथ्यात्वके समान कहा है। किन्तु यह परावर्तमान प्रकृति है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर मिथ्यात्वके समान नहीं प्राप्त होनेसे उसका निर्देश अलगसे किया है। नपुंसकवेद आदि पन्द्रह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट बन्धान्तर कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए इनकी दोनों ओरकी दो वृद्धियों और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर काल भी उक्तप्रमाण बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। पुरुषवेदकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि का जो स्वामी है, उसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होनेसे पुरुषवेदके इन दोनों पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा पुरुषवेदका बन्ध साधिक दो छयासठ सागर तक निरन्तर होता रहे, यह सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा यह परावर्तमान प्रकृति है, इसलिए इसके शेष पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान बन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। तीन आयु आदिका बन्ध अनन्त काल तक न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। तिर्यञ्चायुका अधिकसे अधिक सौ सागर पृथक्त्व काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इसकी दो वृद्धियों, दो हानियों और अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इसके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तिर्यञ्चगति आदि तीनका बन्ध एक सौ त्रेसठ सागर काल तक न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनकी दो वृद्धियों और दो हानियोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८०. णिरएसु धुविगाणं असंखेंजभागवड्डि-हाणि-असंखेंजगुणवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । दोण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । एसिं अणंतभागवड्डि-हाणि० अत्थि तेसिं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । एवं

उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगतिद्विकका अग्निकायिक और वायुकायिक जीव निरन्तर बन्ध करते रहते हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। पर यह बात उद्योतके विषयमें नहीं है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर इसकी दो वृद्धियों और दो हानियोंके उत्कृष्ट अन्तरके समान एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। इन तीनों प्रकृतियोंका शेष भङ्ग सातावेदनीयके समान है,यह स्पष्ट ही है। अग्निकायिक और वायु-कायिक जीव मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करते, इसलिए इनके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। चार जाति आदिका एक सौ पचासी सागर प्रमाण काल तक बन्ध न हो,यह सम्भव है, इसलिए इनकी दो वृद्धि, दो हानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। तथा इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। पञ्चेन्द्रियजाति आदिका निरन्तर बन्ध एक सौ पचासी सागर तक होता रहे, यह सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। औदारिकशरीर आदि तीन प्रकृतियोंका साधिक तीन पल्य तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनकी दो छोर की दो वृद्धियों और दो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनकी दो वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तथा औदारिक शरीरका अनन्त काल तक निरन्तर बन्ध होता रहे, यह सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। और औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग व वज्रर्षभ नाराचसंहननका साधिक तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इन दोनोंके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकद्विकका कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदिका कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छयासठ सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तेतीस सागर काल सम्भव है, इसलिए इसमें मध्यकी दो वृद्धियों, दो हानियों, अवस्थित और अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है,यह स्पष्ट ही है। नीचगोत्रका अग्नि-कायिक और वायुकायिक जीव निरन्तर बन्ध करते रहते हैं, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इसके शेष पदोंका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है, यह स्पष्ट ही है।

२८०. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है,उनके इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेण बीजेण भुजगारभंगो कादव्वो। णवरि असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणि० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० भुजगार-अप्पदरभंगो कादव्वो। दोण्णिवड्ढि-हाणि०-अवट्ठिदस्स अवट्ठिदंतरं कादव्वं। एसिं अणंतभागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं पगदिअंतरं कादव्वं। एवं सव्वणेरइगाणं।

२८१. तिरिक्खेसु सव्वपगदी० भुजगारभंगो। णवरि एसिं पगदीणं अणंतभाग-वड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं जह० अंतो०, उक० अद्धपोंग्गल०। असंखेंज्ज [भागवड्ढि-हाणि० असंखेंज्ज०] गुणवड्ढि-हाणि० भुजगार-अप्पदरं कादव्वं। दोण्णिवड्ढि-हाणि०-अवट्ठि०

है। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार भुजगारके समान भङ्ग करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका भङ्ग भुजगारपद और अल्पतरपदके समान करना चाहिए। तथा दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थितपदका अन्तर काल भुजगारके अवस्थित पदके अन्तरके समान करना चाहिए। जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनका प्रकृतिबन्धके समान अन्तर काल करना चाहिए। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकियोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी मध्यकी दो हानि, दो वृद्धि तथा अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। इन प्रकृतियोंका शेष भङ्ग सुगम है। यहाँ छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी अनन्तभागवृद्धि सम्यक्त्व प्राप्तिके प्रथम समयमें होती है। तथा इनकी अनन्त-भागहानि गिरते समय मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें होती है। यतः यह अवस्था दो बार कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तरसे और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरके अन्तरसे प्राप्त हो सकती है, अतः इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहाँ इनके शेष पदोंका तथा शेष प्रकृतियोंके सब पदोंका भङ्ग भुजगारके समान जाननेकी सूचना करके भी यहाँके किस पदका अन्तर काल भुजगारके किस पदके समान है, इसका स्पष्ट निर्देश मूलमें ही कर दिया है। तात्पर्य यह है कि इन प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुण-वृद्धि और असंख्यातगुणहानिका भङ्ग भुजगारके भुजगार और अल्पतर पदके समान है, इसलिए उसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। तथा संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यात-गुणवृद्धि और संख्यातगुणहानि तथा अवस्थितपदका अन्तर काल भुजगारके अवस्थित पदके समान होनेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। सम्यग्दृष्टिके जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, उनके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त हो जाता है, इसलिए विशेष ज्ञान करानेके लिए मूलमें यह कहा है कि जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि नहीं होती उनमें प्रकृतिबन्धके समान अन्तर काल जान लेना चाहिए। इसी प्रकार अपनी-अपनी भवस्थितिको जानकर प्रथमादि सब नरकोंमें वहाँ बँधनेवाली प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका अन्तर काल ले आना चाहिए।

२८१. तिर्यञ्चोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान है। इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके उक्त पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल भुजगार और अल्पतरके समान करना चाहिए। दो वृद्धि, दो हानि और अवस्थित पदका अन्तरकाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुजगारअवट्ठिदंतरं कादव्वं। अवत्त० भुजगारअवत्तव्वंतरं कादव्वं।

२८२. सव्वपंचिंदियतिरिक्खेसु सव्वपगदीणं भुजगार०भंगो। णवरि एसिं अणंतभागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तं०। असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० भुजगार-अप्पदरं कादव्वं। तिण्णिवड्ढि-हाणि० अवट्ठिदस्स अवट्ठिदंतरं कादव्वं। एसिं अवत्तव्वं अत्थि तेसिं अवत्तव्वंतरं कादव्वं।

२८३. सव्वअपज्जत्तगाणं सव्वपगदीणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एसिं अवत्त० अत्थि तेसिं जह० उक्क० अंतो०।

२८४. मणुसेसु सव्वपगदीणं भुजगारभंगो कादव्वो। णवरि विसेसो अणंतभागवड्ढि-हाणि० छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलि०

भुजगारके अवस्थित पदके अन्तरके समान करना चाहिए। तथा अवक्तव्य पदका अन्तर भुजगारके अवक्तव्य पदके अन्तरकालके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि सम्भव है। तथा तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति अनन्त काल है, इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त हो जानेसे उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२८२. सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान है। इतनी विशेषता है कि जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके उन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल भुजगारके अल्पतरके समान करना चाहिए। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका अन्तरकाल भुजगारके अवस्थित पदके समान करना चाहिए। तथा जिन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद है, उनके उस पदका अन्तरकाल भुजगारके अवक्तव्य के समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इसलिए इनमें अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२८३. सब अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा जिन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद है उनके इस पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति ही अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे उक्तप्रमाण कहा है। तथा अवक्तव्य पदका सर्वत्र जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं बनता, इसलिए यहाँ जिन प्रकृतियोंका यह पद सम्भव है, उनके इस पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२८४. मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्त भागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वकोडिपुध० । सेसाणं असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० भुज०-अप्प०अंतरभंगो । तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० अवट्ठिदंतरं कादव्वं । अवत्त० अवत्तव्वंतरं कादव्वं[1] ।

२८५. देवेसु भुजगारभंगो । णवरि एसिं अणंतभागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं पगदीणं अंतरं कादव्वं । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० भुजगार-अप्पदरंतरं कादव्वं । सेसाणं अवट्ठिदभंगो कादव्वो । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो अंतरं कादव्वं ।

२८६. सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं भुजगारभंगो कादव्वो । पंचिंदि०-तस०२ सव्वपगदीणं भुजगारभंगो । णवरि एसिं अणंतभागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं अंतरं सगट्ठिदि० कादव्वं । असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० भुज०-अप्पदरंतरं कादव्वं । तिण्णि वड्ढि-हाणि-अवट्ठिदस्स अवट्ठिदंतरं कादव्वं । सव्वपगदीणं अवत्त० अप्पप्पणो भुजगार-अवत्त०भंगो कादव्वो ।

पल्य है । शेष प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका अन्तर भुजगारके अल्पतरके समान है । तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका अन्तर भुजगारके अवस्थित पदके अन्तरके समान है । तथा अवक्तव्यपदका अन्तर भुजगारके अवक्तव्यके समान है ।

विशेषार्थ—मनुष्योंकी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इसलिए इनमें छह दर्शनावरण आदिकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य बन जाता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

२८५. देवोंमें भुजगारके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान कर लेना चाहिए । असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका अन्तर भुजगारके अल्पतरके समान करना चाहिए । तथा शेष पदोंका भुजगारके अवस्थितके समान अन्तर करना चाहिए । इसी प्रकार सब देवोंमें अपना-अपना अन्तर करना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवोंमें उत्कृष्ट भवस्थिति तेतीस सागर है, इसलिए इनमें जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

२८६. सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें भुजगारके समान भङ्ग करना चाहिए । पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनका अन्तर अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार करना चाहिए । असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका भुजगारके अल्पतरके समान अन्तर कर लेना चाहिए । तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितका अवस्थितके समान अन्तर कर लेना चाहिए । तथा सब प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका अपने-अपने भुजगारके अवक्तव्यके समान अन्तर कर लेना चाहिए ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है । तथा त्रसकायिक जीवोंकी

---

१. आ०प्रतौ 'अवत्त० अवत्तव्वगंतरं कादव्वं' इति पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८७. पंचपण०-पंचवचि० पंचणा० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्त० णत्थि अंतरं । एवं थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुआउ० सव्वाओ णामपगदीओ गोद-पंचंतरं । णवरि दोवेदणीयादि[1]परियत्त-माणिगाणं भुजगारभंगो कादव्वो । छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० एवं चेव । णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि० णत्थि अंतरं ।

२८८. कायजोगीसु पंचणा० असंखेँज्जगुणवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखेँज्जदिभा० । अवत्त० णत्थि अंतरं । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि-पंचंत० णाणा०भंगो । छदंस०-बारसक०-भय-दु० णाणा०भंगो । णवरि

कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंकी कायस्थिति दो हजार सागर प्रमाण है । यहाँ इस कायस्थितिका विचार कर यथायोग्य अन्तरकाल ले आना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

२८७. पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्यपदका अन्तर काल नहीं है । इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके विषयमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि दो वेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान करना चाहिए । छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायका भङ्ग इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका अन्तर-काल नहीं है ।

विशेषार्थ—इन योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ मूलमें जो यह कहा है कि वेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान करना चाहिए सो उसका अभिप्राय इतना ही है कि भुजगार-बन्धमें इनके अवक्तव्यबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जो अन्तर्मुहूर्त कहा है वह यहाँ इनके अवक्तव्यबन्धका जानना चाहिए । तथा यहाँ छह दर्शनावरण आदिकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके निषेधका यह कारण है कि इन मार्गणाओंका काल अल्प होनेसे इनमें उक्त प्रकृतियोंका अन्तर देकर दो बार अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । शेष कथन सुगम है ।

२८८. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका

---

१. आ०प्रतौ 'णवरि वेदणीयादि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतभागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-पंचजादि-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-पर० - उस्सा० - आदाउज्जो०[दोविहा०-] तस-थावरादिदसयुगल-[णीचा०] णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग० एवं चेव। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। दोआउ० वेउव्वियछक्कं० आहारदुगं० तित्थ० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं। तिरिक्खाउ० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि सादि०। तिण्णि वड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। मणुसाउ० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० [जह०] अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा। मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० चत्तारि[1]वड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० असंखेंज्जा लोगा।

भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका अन्तर काल नहीं है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर अङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और नीचगोत्रका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्त-भागहानिका अन्तर काल नहीं है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चायुकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अव-स्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यायुकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तिर्यञ्च गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

विशेषार्थ—काययोगका उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है, क्योंकि एकेन्द्रियोंमें सामान्यसे काययोग ही पाया जाता है, इसलिए इसमें पाँच ज्ञानावरणके विवक्षित पदोंका उत्कृष्ट अन्तर-काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, अतः यह उक्त

---

१. आ०प्रतौ 'मणुसाणु० चत्तारि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८६. ओरालियका० पंचणाणावरणादीणं असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० बावीसं वास-सहस्साणि देसू० । अवत्त० णत्थि अंतरं । एवं थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-

कालप्रमाण कहा है। काययोगमें एक बार इनका अवक्तव्यपद प्राप्त होनेके बाद पुनः उसके प्राप्त करनेमें कमसे कम भी जितना काल लगता है उस कालके भीतर यह योग बदल जाता है, इसलिए इसमें उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके सब पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए इसे ज्ञानावरणके समान जाननेकी सूचना की है। तथा छह दर्शनावरण आदिका भङ्ग भी ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। मात्र इन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी होती है। पर इनके उक्त पदोंका यहाँ अन्तरकाल सम्भव नहीं है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंके अन्तरकालमें जितना समय लगता है उस कालके भीतर काययोग बदल जाता है। दो वेदनीय आदि प्रकृतियोंका अन्य भङ्ग तो ज्ञानावरणके ही समान है। मात्र यहाँ इनके अवक्तव्यपदका अन्तर काल बन जाता है, इसलिए उसका अलगसे निर्देश किया है। यतः ये सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। पुरुषवेद आदिका सब भङ्ग सातावेदनीयके समान है, इसलिए उसे सातावेदनीयके समान जाननेकी सूचना की है। परन्तु इन पाँच प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी होती हैं। पर इनका इस योगमें अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। कारणका निर्देश पहले कर आये हैं। नरकायु, देवायु और वैक्रियिकषट्क आदिका बन्ध पञ्चेन्द्रिय जीव ही करते हैं और इनमें काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यके सिवा शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ यद्यपि इनका अवक्तव्य-पद होता है, पर एक बार इनका बन्ध प्रारम्भ होकर बन्धव्युच्छित्तिके बाद पुनः इनका बन्ध प्रारम्भ होनेमें कमसे-कम जितना काल लगता है उसमें यह योग बदल जाता है, अतः यहाँ इनके अवक्तव्य पदके अन्तरकालका निषेध किया है। काययोग चालू रहते हुए तिर्यञ्चायुका दो बार बन्ध होनेमें साधिक बाईस हजार वर्षका उत्कृष्ट अन्तर पड़ता है, इसलिए इसके विवक्षित पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। तथा इसके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है, क्योंकि लगातार यदि कोई जीव तिर्यञ्च होता रहे तो वह तिर्यञ्चायुका बन्ध करते समय अधिकसे-अधिक इतने कालतक उक्त पद न करे, यह सम्भव है। मनुष्यायुका तिर्यञ्च अनन्त कालतक बन्ध न करे,यह सम्भव है, इसलिए इसके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। अग्निकायिक और वायु-कायिक जीव तिर्यञ्चगतिद्विक और नीचगोत्रका उत्कृष्टसे असंख्यात लोकप्रमाण काल तक निरन्तर बन्ध करते रहते हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीव मनुष्यगतिद्विकका बन्ध नहीं करते, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर-काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२८६. औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादिकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यात-गुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत।[1] छदंस०[2] बारसक०[3] - भय - दु० एवं चेव। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणीणं णत्थि अंतरं। दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगोद० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। पंचणोक० एवं चेव। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणीणं णत्थि अंतरं। दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहारदुगं तित्थ० मणजोगिभंगो। दोआउ० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सव्वपदाणं सत्तवाससहस्साणि सादि०।

बन्धी चतुष्क, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका सब पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल जानना चाहिए। छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका अन्तरकाल नहीं है। दो वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल और दो गोत्रका भङ्ग ज्ञानावरण के समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पाँच नोकषायका भङ्ग इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभाग वृद्धि और अनन्तभागहानिका अन्तरकाल नहीं है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। यहाँ असंख्यातगुणवृद्धि आदि पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और शेषका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्षप्रमाण बन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनका यहाँ अवक्तव्यपद तो सम्भव है, पर दूसरी बार इस पदके प्राप्त होनेके पहले यह योग बदल जाता है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके इस पदके अन्तरकालका निषेध किया है। आगे दूसरे दण्डकमें कही गई स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके सब पदोंका भङ्ग इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए उसे इसीके समान जाननेकी सूचना की है। तीसरे दण्डकमें कही गई छह दर्शनावरण आदिका और चौथे दण्डकमें कही गई दो वेदनीय आदिका भङ्ग भी इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए उसे पाँच ज्ञानावरणके समान ही जाननेकी सूचना की है। साथ ही इन दो दण्डकोंमें जो विशेषता है, उसका अलगसे निर्देश किया है। बात यह है कि छह दर्शनावरण आदिकी यहाँ अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव है पर उनका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंमें इनके अन्तरकालकी अपेक्षा इस योगका काल छोटा है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंका निर्देश करके उनके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा दो वेदनीय आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे उनके अवक्तव्यपदके साथ उसका अन्तरकाल भी सम्भव है, इसलिए इस विशेषताका अलगसे निर्देश किया है। पाँच नोकषायका अन्य सब भङ्ग तो दो वेदनीय आदिके समान बन जाता है,

१. ता०प्रतौ 'अणंताणु०४। ओरा०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'पंचंत० छदंस०' इति पाठः। ३. आ०प्रतौ 'बारसक० एवं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९०. ओरालियमि० धुविगाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० [एग०], उक्क० अंतो० । सेसाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्त० जह० उक्क० अंतो० । देवगदिपंचग० असंखेंज्जगुणवड्ढी० णत्थि अंतरं ।

२९१. वेउव्विय०-आहारका० मणजोगिभंगो । वेउव्वियमि० धुविगाणं असंखेंज्जगुणवड्ढी० णत्थि अंतरं । सेसाणं पि असंखेंज्जगुणवड्ढीणं णत्थि अंतरं । अवत्त० जह० उक्क० अंतो० । णवरि मिच्छ० अवत्त० णत्थि अंतरं । एवं आहारमि०-कम्मइ०-अणाहार० । णवरि एदाणं अवत्त० णत्थि अंतरं ।

क्योंकि ये भी परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए उन्हें दो वेदनीय आदिके समान जाननेकी सूचना की है । पर इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव है,पर अन्तरकाल सम्भव नहीं है; इसलिए इनकी इस विशेषताका अलगसे निर्देश किया है । नरकायु, देवायु और वैक्रियिकषट्क आदिका बन्ध पञ्चेन्द्रिय जीव ही करते हैं और उनके इस योगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान बन जानेसे उसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बन्ध एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं और उनके इस योगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है, इसलिए उत्कृष्ट त्रिभागका ख्यालकर यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक सात हजार वर्ष कहा है ।

२९०. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—जिन औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके देवगतिपञ्चकका बन्ध होता है उनके इनकी असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है, इसलिए यहाँ इसके अन्तरकालका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

२९१. वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तरकाल नहीं है । शेष प्रकृतियोंकी भी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तरकाल नहीं है । तथा इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—पर्याप्त योगोंको छोड़कर शेष योगोंमें उत्तरोत्तर वृद्धिंगत योगस्थान होता है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी एक मात्र असंख्यातगुणवृद्धि होनेसे उसके अन्तरकालका निषेध किया है । पर जो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं उनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल केवल वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें ही बनता है, इसलिए वहाँ उनका विधान कर अन्यत्र निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६२. इत्थिवेदगेसु पंचणा० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। एवं पंचंत०। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०-४ असंखेंज्ज[गुण]वड्ढि-हाणि०[1] जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। णिद्दा-पयला-भय-दुगुं० णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणी० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। अवत्त० णत्थि अंतरं। चदुदंस०-चदुसंज० एवं चेव। णवरि अवत्त० णत्थि। दोवेदणी०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। अट्ठकसा० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी[2]० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडि० देसूणं। सेसाणं थीणगिद्धिभंगो। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणी० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। इत्थि०-णवुंस० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-

२६२. स्त्रीवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार पाँच अन्तरायके विषयमें जानना चाहिए। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। निद्रा, प्रचला, भय और जुगुप्साका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका भङ्ग इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद नहीं है। दो वेदनीय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंकी असंख्यात गुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। शेष पदोंका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत,

१. आ०प्रतौ, असंखेज्ज वड्ढि हाणि' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अट्ठकस (सा०) असंखेज्जगुणवड्ढि हाणि०' आ०प्रतौ 'अट्ठकसा० संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावर-दूभग-दुस्सर-अणादें०-णीचा० इत्थि०भंगो। पुरिस० णिद्दाए भंगो। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। एवं हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं। णवरि अवत्त० साद०भंगो। णिरयाउ० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० पगदि-अंतरं कादव्वं। [दो] आउ० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। देवाउ० असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणी० जह० एग०, अवत्त जह० अंतो०, उक्क० अट्ठावण्णं पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तं। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। दोगदि-तिण्णिजादि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-सुहुम०-अपज्जत्त-साधारणं असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणी० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सगट्ठिदी०[1]। मणुसगदि०४ असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणी० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलि० देसू०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० कायट्ठिदी०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। एवं ओरालि०। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि०। पंचिंदि०-समचदु०-पसत्थ०-तस-सुभग-सुस्सर-

अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। पुरुषवेदका भङ्ग निद्राके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। इसी प्रकार हास्य, रति, अरति और शोकका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग साता-वेदनीयके समान है। नरकायुकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका प्रकृति-बन्धके समान अन्तरकाल कहना चाहिए। दो आयुकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित-पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। देवायुकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य है। तथा इसकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। दो गति, तीन जाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। मनुष्यगतिचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। इसी प्रकार औदारिकशरीरका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। पञ्चेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, त्रस,

१. ता०प्रतौ 'ए० सगट्ठिदी' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदें०-उच्चा० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० मणुसगदिभंगो। आहारदुगं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। पर०-उस्सा०-बादर-पज्ज०-पत्तेय० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सगट्ठिदी०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादिरे०। तित्थ० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। अवत्त० णत्थि अंतरं। [धुवियाणं सेसाणं भुजगारभंगो।]

सुभग,सुस्वर,आदेय और उच्चगोत्रका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। आहारकद्विककी चार वृद्धि,चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येककी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। ध्रुवबन्धवाली शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदी जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्यपृथक्त्व प्रमाण है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणके विवक्षित पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। पाँच अन्तरायोंका भङ्ग पाँच ज्ञानावरणके समान बन जाता है, इसलिए उनका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। स्त्रीवेदी जीवोंमें स्त्यानगृद्धित्रिक आदिका कुछ कम पचपन पल्य तक बन्ध न हो,यह सम्भव है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि आदि दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है,यह स्पष्ट ही है। निद्रादिक चार प्रकृतियोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह भी स्पष्ट ही है। मात्र इनकी यहाँ अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके साथ उनका अन्तरकाल भी सम्भव है, इसलिए उसका अलगसे उल्लेख किया है। स्त्रीवेदी जीवके अन्तर्मुहूर्त कालमें दो बार सम्यक्त्वपूर्वक मिथ्यात्वकी प्राप्ति सम्भव है, इसलिए तो यहाँ उक्त पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और यह विधि कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हो, यह भी सम्भव है, इसलिए इन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। निद्रादिकका अवक्तव्यपद उतरते समय आठवें गुणस्थानमें सम्भव है, पर स्त्रीवेदी जीव उपशमश्रेणिपर चढ़ते समय नौवें गुणस्थानमें अपगतवेदी हो जाता है, इसलिए स्त्रीवेदके रहते हुए उपशमश्रेणिका चढ़ना और उतरना सम्भव न होनेसे यहाँ इनके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका अन्य सब भङ्ग निद्रादिकके समान बन जानेसे इसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इन आठ प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे उतरते समय दसवें गुणस्थानमें होता है;पर ऐसा जीव स्त्रीवेदी नहीं होता, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्यपदका निषेध किया है। दो वेदनीय आदिका अन्य सब भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। पर परावर्तमान प्रकृतियाँ होनेसे यहाँ इनका अवक्तव्यपद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उसका अन्तरकाल सम्भव है, इसलिए उसे अलगसे कहा है। आठ कषायोंका यहाँ कुछ कम एक पूर्वकोटि कालतक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है, यह स्पष्ट ही है। पर यहाँ इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि ये दो पद तथा उनका अन्तरकाल सम्भव होनेसे इसका अलगसे उल्लेख किया है। इनके उक्त दोनों पदोंके अन्तरकालका खुलासा निद्रादिकके इन्हीं पदोंके अन्तरकालके समान कर लेना चाहिए। स्वामित्वकी विशेषता अलगसे जान लेनी चाहिए। सम्यग्दृष्टिके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इन असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य कहा है। इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। सम्यग्दृष्टि जीवके तिर्यञ्चगति आदिका भी बन्ध नहीं होता, इसलिए इनका भङ्ग स्त्रीवेदके समान बन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। पुरुषवेदका अन्य सब भङ्ग निद्राके समान बन जाता है, पर इसके अवक्तव्यपदका यहाँ अन्तरकाल सम्भव होनेसे उसका अलगसे उल्लेख किया है। पुरुषवेदके इस पदके अन्तरकालका खुलासा स्पष्ट ही है; क्योंकि सम्यग्दृष्टिके एकमात्र पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य कहा है। हास्य आदि चार प्रकृतियोंका अन्य सब भङ्ग तो पुरुषवेदके ही समान है, फरक केवल अवक्तव्य पदके अन्तरकालमें है। बात यह है कि एक तो ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और दूसरे सम्यग्दृष्टिके भी इनका बन्ध होता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग सातावेदनीयके समान बन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। नरकायुकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका प्रकृतिबन्धके समान अन्तर करना चाहिए, यह सामान्य कथन है। विशेषरूपसे इसकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर प्रकृतिबन्धके उत्कृष्ट अन्तरके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके सब पद कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हों यह सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। अट्ठावन पल्य और पूर्वकोटिपृथक्त्वके आदिमें और अन्तमें देवायुका बन्ध हो यह सम्भव है, क्योंकि जो जीव पचपन पल्यकी देवायु बाँधकर देवियोंमें उत्पन्न होता है। पुनः वहाँसे च्युत होकर और पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यके अन्तमें पुनः देवायुका बन्ध करता है, उसके दो बार देवायुका बन्ध होनेमें उक्त कालप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है, इसलिए इसकी असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकालप्रमाण कहा है। तथा शेष पद कायस्थितिके आदिमें और मध्यमें देवायुका बन्ध करते समय हों और मध्यमें न हों यह सम्भव है, इसलिए इसके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदी जीवोंके दो गति आदि प्रकृतियोंका अधिकसे अधिक साधिक पचपन पल्यतक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य कहा है। तथा इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेदी जीवोंके मनुष्यगति आदिका अधिकसे अधिक कुछ कम तीन पल्यतक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। इनका देवियोंमें सम्यक्त्वदशामें कुछ कम पचपन पल्य तक निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इस कालके आगे पीछे अवक्तव्यपद करानेसे अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य कहा है। तथा इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। औदारिकशरीरका भङ्ग इसी प्रकार है। मात्र देवीके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६३. पुरिसेसु[1] पंचणा० असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी० जह० एग०, उक्क० अंतो० । तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसदपुध० । एवं पंचंत० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ एकवड्ढि-हाणी० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठि० देसू० । तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । णिद्दा-पयला० अणंतभागवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । सेसपदा० आभिणि०भंगो । एवं भय-दु० । चदुदंस०-चदुसंज० एवं चेव । णवरि अवत्त० णत्थि ।

इस प्रकृतिका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य कहा है । पञ्चेन्द्रियजाति आदिका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है । पर इनका यहाँ अवक्तव्यपद सम्भव है जो कि मनुष्यगतिके समान प्राप्त होता है, इसलिए उसका भङ्ग मनुष्यगतिके समान जाननेकी सूचना की है । आहारकद्विकके सब पद कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें हों,यह सम्भव है, इसलिए इनके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति-प्रमाण कहा है । परघात आदि ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनका मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि सबके बन्ध सम्भव है, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा सम्यग्दृष्टिके इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है और आगे पीछे भी इनका बन्ध सम्भव है,इसलिए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य कहा है । इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है । तीर्थङ्कर-प्रकृतिका बन्ध प्रारम्भ होनेपर उसकी अबन्धक दशा इतनी नहीं प्राप्त होती जिससे उसकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक बन सके,अतः इसके इन पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा स्त्रीवेदी जीवोंमें कुछ कम एक पूर्व-कोटि कालतक ही इसका निरन्तर बन्ध होता है,इसलिए इसके अवक्तव्यपदके सिवा शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कालप्रमाण कहा है । उपशमश्रेणिमें नौवेंके आगे जीवके स्त्रीवेद नहीं रहता, अतः स्त्रीवेदी जीवके इसका अवक्तव्यपद होकर भी उसका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है ।

२६३. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सौसागरपृथक्त्वप्रमाण है । इसी प्रकार पाँच अन्तरायका भङ्ग जानना चाहिए । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी एक वृद्धि और एक हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । निद्रा और प्रचलाकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । शेष पदोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान है । इसी प्रकार भय और जुगुप्साका भङ्ग समझना चाहिए। चार दर्शनावरण

---

१. ता०आ०प्रत्योः अवत्त० णत्थि अंतरं इत्यतः पश्चात् पुरिसेसु इतः प्राक् 'पुरिसेसु पंचणाणा० असंखेज्जगुणवड्ढिहाणि० ज० ए० उक्क० अंतो० । तिण्णिवड्ढिहाणिअवट्ठि० ज० ए० उ० सगट्ठिदी० अवत्त० ज० अंतो० उ० पणवण्णं पलि० सादि० । तित्थ० असंखेज्जगुणवड्ढिहाणि ज० ए० उ० अंतो० । तिण्णिवड्ढि-हाणिअवट्ठि० ज० ए० उ० पुव्वकोडिदे० अवत्त० णत्थि अंतरं । इत्यधिकः पाठ उपलभ्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोवेदणी०-थिरादितिण्णियुग० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। अट्ठक० ओघं। णवरि सगट्ठिदी०। इत्थि० थीणगिद्धिभंगो। णवरि अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० वेछावट्ठि० देसू०। एदेण कमेण भुजगारभंगो सव्वाणं। णवरि असंखेॅज्ज-गुणवड्ढि-हाणी० [भुज०-अप्पदरभंगो। तिण्णिवड्ढि-तिण्णिहाणि-अवट्ठिद०] अवट्ठि०दभंगो। अवत्त० अप्पप्पणो अवत्त०भंगो।

और चार संज्वलनका भङ्ग भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद नहीं है। दो वेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए। स्त्रीवेदका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। इस क्रमसे सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारपदके समान करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका भङ्ग भुजगारके अल्पतरपदके समान करना चाहिये। तीन वृद्धि, तीन हानि, और अवस्थितपदका भङ्ग भुजगारके अवस्थितपदके समान करना चाहिए। तथा अवक्तव्यपदका भङ्ग अपने-अपने अवक्तव्यपदके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—एक तो पाँच ज्ञानावरण ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। दूसरे पुरुषवेदी जीवकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणकी असंख्यातगुण-वृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण कहा है। पाँच अन्तरायका भङ्ग इसी प्रकार है, इसलिए उसे पाँच ज्ञाना-वरणके समान जाननेकी सूचना की है। पुरुषवेदी जीवके कुछ कम दो छ्यासठ सागर काल तक स्त्यानगृद्धित्रिक आदिका बन्ध न करे, यह सम्भव है, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अपनी कायस्थिति प्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। निद्राद्विककी असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यात-गुणहानि और अवक्तव्यपद अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे हों, यह भी सम्भव है और अपनी कायस्थितिके अन्तरसे हों, यह भी सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण कहा है। तथा इनके शेष पदोंका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। निद्राद्विकके समान भय और जुगुप्साका भी भङ्ग होता है, इसलिए इसे निद्राद्विकके समान जाननेकी सूचना की है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका अन्य सब भङ्ग तो निद्राद्विकके ही समान है। मात्र इन प्रकृतियोंका पुरुषवेदी जीवके अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, क्योंकि निद्राद्विक, भय और जुगुप्साकी बन्धव्युच्छित्ति अपूर्वकरणमें होती है, इसलिए इन जीवोंके उक्त प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे उतरते समय कराके और पुनः अन्तर्मुहूर्तमें उपशमश्रेणिपर चढ़ाकर अपूर्वकरणमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद मरण कराकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर पुनः अवक्तव्यबन्ध करानेसे यहाँ इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद भी बन जाता है और उसका अन्तर काल भी घटित हो जाता है। यह क्रिया यदि अन्तर्मुहूर्तके भीतर कराते हैं तो अन्तर्मुहूर्त अन्तर काल आ जाता है और कायस्थितिके प्रारम्भमें एक बार अवक्तव्यपद तथा कायस्थितिके अन्तमें दूसरी बार अवक्तव्यपद करानेसे कायस्थितिप्रमाण अन्तरकाल आ जाता है। पर चार दर्शनावरण और चार संज्वलनकी बन्धव्युच्छित्ति अपगतवेदी होनेपर होती है, इसलिए पुरुषवेदीके उनका अवक्तव्यपद सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। दो वेदनीय आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६४. णवुंसगवेदेसु सव्वपगदीणं भुजगारभंगो। कोधादि०४- मदि-सुद-विभंग० भुजगारभंगो।

२६५. आभिणि-सुद-ओधिणा० पंचणाणा० - णिद्दा-पयला-पुरिस०-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णि-वड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि०।

सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे उक्त प्रमाण कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। आठ कषायोंका भङ्ग ओघके समान यहाँ बन जाता है,पर अपनी कायस्थिति कालतक ही पुरुषवेद रहता है, इसलिए जिन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पुरुषवेदकी कायस्थितिसे अधिक कहा है वह पुरुषवेदकी कायस्थितिप्रमाण है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए उसकी अलगसे सूचना की है। पुरुषवेदी जीवके स्त्रीवेदका बन्ध कुछ कम दो छयासठ सागर कालतक न हो,यह सम्भव है, क्योंकि इसके बाद यदि जीव मिथ्यात्वमें आता है तो उसका बन्ध नियमसे होने लगता है, इसलिए यहाँ अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदका शेष भङ्ग स्त्यानगृद्धित्रिकके समान है,यह स्पष्ट ही है। यहाँ तक कुछ प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका अलग-अलग अन्तरकाल कहा है। इनके सिवा जो प्रकृतियाँ रह जाती हैं,उनका अन्तरकाल भुजगार अनुयोगद्वारके समान यहाँ भी घटित हो जाता है। मात्र यहाँ सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका भङ्ग भुजगार और अल्पतरपदके समान प्राप्त होता है, क्योंकि किसी भी प्रकृतिका बन्ध होनेपर जैसे उसके भुजगार और अल्पतरका नियम है,उसी प्रकार असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानि-का भी नियम है। तथा जिस प्रकार भुजगारके अवस्थितपदका नियम है,उसी प्रकार यहाँ तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका नियम है। तथा जिस प्रकार भुजगारके अवक्तव्यपदका नियम है,उसी प्रकार यहाँ भी अवक्तव्यपदका नियम है, इसलिए यहाँ अनुयोगद्वारके समान जाननेकी सूचना करके इन विशेषताओंका अलगसे उल्लेख किया है।

२६४. नपुंसकवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान है। क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभङ्गज्ञानी जीवोंमें भुजगारके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पूर्व पुरुषवेदी जीवोंमें असंख्यातगुणवृद्धि आदि किन पदोंका भुजगार अनुयोगद्वारके किन पदोंके साथ साम्य है, इस बातको जानकर यहाँ सब प्रकृतियोंका इन मार्गणाओंमें कहे गये भुजगार अनुयोगद्वारके समान अन्तरकाल घटित हो जाता है, इसलिए उसे भुजगारके समान जाननेकी सूचना की है।

२६५. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, निद्रा, प्रचला, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है

---

१. ता०प्रतौ 'णवुंसके (ग) वेदेसु' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुदंस०-चदुसंज० णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि-अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० छावड्ठि० सादि०। साद०दंडओ णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० जह० उक्क० अंतो०। अपच्चक्खाण०४ एकवड्डि-हाणी० ओघं। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० णाणा०-भंगो। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। एवं पचक्खाण०४। णवरि अणंतभागवड्डि-हाणी० जह० अंतो०, उक्क० छावड्डिसाग० सादि०। मणुसाउ० असंखेंज्ज-गुणवड्डि-हाणी० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० छावट्ठि० सादि०। एवं देवाउ०। णवरि छावड्डिसागरो० देसू०। मणुसगदिपंचगस्स असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणी० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी सादि०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० छावट्ठि० सादि०। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं सादि०। देवगदि०४ असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणी० जह० एग०, अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० छावड्डिसाग० सादि०। एवं आहारदुगं। तित्थ० ओघं।

और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इस दण्डकके अवक्तव्य पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्ककी एक वृद्धि और एक हानिका भङ्ग ओघके समान है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। मनुष्यायुकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। इसी प्रकार देवायुका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम छयासठ सागर कहना चाहिए। मनुष्यगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। इसी प्रकार आहारकद्विकका भङ्ग जानना चाहिए। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादिका केवल उपशमश्रेणिमें ही बन्धका अन्तर पड़ता है, वैसे अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति तक उनका निरन्तर बन्ध होता रहता है। उपशमश्रेणिमें भी अन्तर होकर वह अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता, इसलिए यहाँ इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा यहाँ इनका साधिक छ्यासठ सागर काल तक निरन्तर बन्ध सम्भव है, अतः इतने कालका अन्तर देकर इनकी तीन वृद्धि, तीन हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपद भी सम्भव हैं, इसलिए इनके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़ाकर और दो बार अवक्तव्यबन्ध कराकर ले आना चाहिए। चार दर्शनावरण और चार संज्वलनका अन्य सब भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, पर यहाँ इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके साथ उक्त पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है। सातावेदनीयदण्डकमें सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे उक्तप्रमाण कहा है। शेष भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका कुछ कम एक पूर्व कोटि तक बन्ध न हो, यह सम्भव है, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान बन जानेसे वह ओघके समान कहा है। इनकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा इनका अवक्तव्य पद अन्तर्मुहूर्तमें भी दो बार सम्भव है और साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी दो बार सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका अन्य सब भङ्ग अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके समान बन जानेसे उसके समान कहा है। मात्र यहाँ इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव हैं, इसलिए इनके इन पदोंका अन्तरकाल अलगसे कहा है। चौथेसे पाँचवेंमें जानेपर अनन्तभागवृद्धि होती है और पाँचवेंसे चौथेमें आनेपर अनन्तभागहानि होती है। दो बार यह क्रिया अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे भी सम्भव है और साधिक छ्यासठ सागरके अन्तरसे भी सम्भव है, इसलिए इनके उक्त दो पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ मनुष्यायुका दो बार बन्ध होनेमें साधिक तेतीस सागरका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है, इसलिए इसकी असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंके साधिक छ्यासठ सागर कालके भीतर अपने बन्धकालके योग्य समयके प्राप्त होने पर कई बार मनुष्यायुका बन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इसके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ आरम्भमें और अन्तमें आयुबन्धके समय विवक्षित पद कराके उसका अन्तर ले आना चाहिए। सर्वत्र यही विधि जाननी चाहिए। देवायुका भङ्ग इसी प्रकार है। विशेष बात इतनी है कि यहाँ कुछ कम छ्यासठ सागरके भीतर ही यथासम्भव देवायुका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर कहा है। यहाँ मनुष्यगतिपञ्चकका एक पूर्वकोटि कालतक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। इन मार्गणाओंका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर कहा है। तथा तेतीस सागरकी आयुवाले विजयादिकके देवने भवके प्रथम समयमें इनका अवक्तव्यपद किया। पुनः तेतीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६६. मणपज्जव०-संजदा० भुजगारभंगो। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणी० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०।

२६७. सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस०-लोभसंज०-उच्चा०-पंचंत० मणपज्जव०-भंगो। णवरि अवत्त० णत्थि। सेसाणं मणपज्जव०भंगो[1]। तिण्णिसंज०-देवगदिअट्ठावीसं सव्वपदा णाणाभंगो। णवरि अवत्त० णत्थि अंतरं। परिहार० भुजगारभंगो। सुहुमसंप० सव्वपगदीणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। संजदासंजद०

सागर काल तक इनका निरन्तर बन्ध करता रहा। पुनः एक पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य होकर इनका अबन्धक हो गया और दूसरी बार देव होनेपर भवके प्रथम समयमें पुनः इनका अवक्तव्य बन्ध किया। इस प्रकार इनके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है। तथा सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेसे इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है। उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद देवगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होता। देवपर्यायमें तो होता ही नहीं, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि मनुष्य पर्यायमें यथासम्भव अधिकसे अधिक काल तक सम्यक्त्व रखनेके पूर्व मिथ्यात्वमें इनका अवक्तव्यपद कराकर यह अन्तर लावे। इन मार्गणाओंका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। आहारकद्विकका भङ्ग इसी प्रकार प्राप्त होने से उसे इनके समान जाननेकी सूचना की है। ओघमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका अन्तरकाल इन्हीं मार्गणाओंकी मुख्यतासे कहा है, इसलिए यहाँ उसे ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

२६६. मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें भुजगार अनुयोगद्वारके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—यहाँ चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि सम्भव है। तथा इनके ये पद अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे हों, यह भी सम्भव है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर आरोहण कराने और उतारनेसे अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे ये दोनों पद बन जाते हैं, इसलिए तो इनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और प्रारम्भमें व अन्तमें उपशमश्रेणिपर आरोहण करानेसे और उतारनेसे कुछ कम एक पूर्वकोटिके अन्तरसे भी ये पद बन जाते हैं, इसलिए इनका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२६७. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभसंज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ पर इनका अवक्तव्यपद नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। तीन संज्वलन और देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें भुजगार अनुयोगद्वारके समान भङ्ग है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय

१. ता०प्रतौ 'मणपज्जत्त (व) भंगो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहार०भंगो। असंजद-चक्खु०-अचक्खु० ओघं। ओधिदं०[1] ओधिणा०भंगो।

२६८. किण्णाए पंचणा० - तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु-उप०-णिमि०-पंचंत० असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवड्डि० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं सादि०। एवं सव्वपगदीणं भुजगारभंगो। णवरि दोआउ०-दोगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि०४-तित्थ० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवड्डि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं। ओरा०-ओरा०अंगो० एक्कवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवड्डि० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० देसू०। अवत्त० णत्थि अंतरं। पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ एक्कवड्डि-हाणि० जह० एग०,

है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। संयतासंयत जीवोंमें परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है। असंयत, चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थापना संयम नौवें गुणस्थान तक होते हैं, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्यपदका निषेध किया है। तथा यहाँ तीन संज्वलन और देवगति आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद तो होता है, क्योंकि इन मार्गणाओंके कालके भीतर ही इनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए लौटते समय इनका अवक्तव्यपद बन जाता है। पर इन मार्गणाओंके कालके भीतर दो बार इनका अवक्तव्यपद प्राप्त होना सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अन्तरकालका निषेध किया है। इन मार्गणाओंमें शेष कथन स्पष्ट ही है। परिहारविशुद्धिसंयत छठे और सातवें गुणस्थानमें होता है, इसलिए भुजगार अनुयोगद्वारसे यहाँ कोई विशेषता नहीं आती, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान जाननेकी सूचना की है। सूक्ष्मसाम्परायसंयतका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंके यहाँ सम्भव सब पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त काल प्रमाण कहा है। यहाँ जिन मार्गणाओंमें जिनके समान जाननेकी सूचना की है वह स्पष्ट ही है, इसलिए उस विषयमें विशेष नहीं लिखा जाता है।

२६८. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका भुजगार अनुयोगद्वारके समान भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि दो आयु, दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप, स्थावर आदि चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। औदारिकशरीर और औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्गकी एक वृद्धि और एक हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, और त्रसचतुष्ककी एक वृद्धि और एक हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर

१. आ०प्रतौ 'अचक्खु० ओधिदं०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० अंतो० । तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादि० । अवत्त० णत्थि अंतरं । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिण्णिवड्डि-तिण्णिहाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० बावीसं० सादि० । अवत्त० भुजगारभंगो । एवं णील-काऊणं । णवरि काउए तित्थ० णिरयभंगो । तिण्णि लेस्साणं एसिं अणंतभागवड्डि-हाणी अत्थि तेसिं अंतरं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरो० देसू० । सेसाणं भुजगारभंगो ।

अन्तर्मुहूर्त है । तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । इनके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर है । इनके अवक्तव्यबन्धका भङ्ग भुजगारके समान है । इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्यामें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है । तीन लेश्याओंमें जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है उनके इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है । शेष पदोंका भङ्ग भुजगारके समान है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है । तथा इस लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है । इस प्रकार यद्यपि भुजगार अनुयोगद्वारके समान यहाँ सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका अन्तरकाल प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए अलगसे उसके निर्देश करनेकी आवश्यकता नहीं है । फिर भी कुछ प्रकृतियोंमें विशेषताका ज्ञान करानेके लिए मूलमें उनके विषयमें अलगसे सूचना की है । यथा—मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर आदि चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदको छोड़कर सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ यद्यपि इनका अवक्तव्यपद होता है, पर इनके दूसरी बार अवक्तव्यपदके प्राप्त होने तक लेश्या बदल जाती है, इसलिए इस लेश्यामें उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध किया है । नरकमें औदारिकशरीरद्विकका निरन्तर बन्ध होता रहता है और तिर्यञ्चों व मनुष्योंमें यथासम्भव ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है । नरकमें कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसके प्रारम्भमें और अन्तमें उक्त दोनों प्रकृतियोंको तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपद हों तथा मध्यमें न हों, यह सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । नरकमें तो इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, तिर्यञ्चों और मनुष्योंके सम्भव है, पर इन जीवोंके इस लेश्याके कालमें दो बार अवक्तव्यपद नहीं होता, अतः यहाँ इनके अवक्तव्यपदके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६६. तेऊए पंचणा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० एकवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । एसिं अणंत०वड्डि-हाणी अत्थि तेसिं जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि० । देवगदि०४ तिण्णिवड्डि-चत्तारिहाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । असंखेंज्जगुणवड्डी० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । ओरालि०

अन्तरकालका निषेध किया है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि एक तो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। दूसरे इनका निरन्तर बन्ध भी सम्भव है, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा नरकमें व वहाँ जानेके पूर्व और बादमें अन्तर्मुहूर्त कालतक इनका नियमसे बन्ध होता रहता है, इसलिए इनकी आदि और अन्तमें तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका प्राप्त होना सम्भव होनेसे इनके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। इनके भी अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं होता, इसका खुलासा पूर्वके समान जानकर कर लेना चाहिए। तिर्यञ्च और मनुष्य वैक्रियिकद्विकका बन्ध करते हैं और इनके कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित-पदका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अब एक ऐसा जीव लो जिसने नरकमें जानेके पूर्व इनकी असंख्यातगुणवृद्धि की। बादमें वह छठे नरकमें उत्पन्न हुआ। सातवेंमें तो इसलिए नहीं उत्पन्न कराया है कि वहाँसे निकलनेके बाद भी वह अन्तर्मुहूर्त कालतक औदारिकद्विकका ही बन्ध करता है और उसके बाद लेश्या बदल जाती है। परन्तु छठे नरकके लिए ऐसा नियम इसलिए नहीं है, क्योंकि वहाँसे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं और ऐसे जीवोंके यहाँ उत्पन्न होनेपर प्रथम समयसे ही इस लेश्याके रहते हुए वैक्रियिकद्विकका बन्ध होने लगता है। यतः प्रारम्भमें अवक्तव्यपद होकर असंख्यातगुणवृद्धि और अन्तमें परिमाणयोगस्थान होनेपर असंख्यातगुणहानि होती है। इसके बाद लेश्या बदल जाती है, इसलिए यहाँ इन दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर कहा है। इनके भुजगार अनुयोगद्वारमें अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक सत्रह सागर और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर प्राप्त होता है। यह यहाँ भी बन जाता है, इसलिए यहाँ इसके अवक्तव्यपदका भङ्ग भुजगारके समान कहा है। इसी प्रकार नील और कापोतलेश्यामें अपने-अपने कालके अनुसार यह प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें कृष्णलेश्याके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र कापोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान बन जानेसे उसमें इसके सम्बन्धमें नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। इन तीन लेश्याओंमें जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव हैं उन प्रकृतियोंके इन पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अलगसे कहा है। तथा इन प्रकृतियोंके शेष पदोंका भङ्ग भुजगार अनुयोगद्वारके समान है, यह स्पष्ट ही है।

२६६. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायकी एक वृद्धि और एक हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके उन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। देवगतिचतुष्ककी तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुण-वृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। औदारिकशरीरका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० णत्थि अंतरं। एवं एदेण सव्वकम्माणं भुजगारभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि एसिं अणंतभागवड्डि-हाणी अत्थि तेसिं जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादि०। देवगदि०४ असंखेंज्जगुणवड्डी० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि०। ओरालि०अंगो० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० णत्थि अंतरं।

भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार इस विधिसे सब कर्मोंका भङ्ग भुजगारके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। देवगतिचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग का भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी एक वृद्धि और एक हानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा इस लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर है, अतः यहाँ इनके शेष पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है। इस लेश्यामें जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि सम्भव है, उनका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर बन जाता है, इसलिए यह उक्त कालप्रमाण कहा है। इन पदोंके अन्तरकालका खुलासा पहले अनेक बार कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। मात्र पीतलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर होनेसे इन पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी उस कालके भीतर प्राप्त किया जा सकता है, इस बातको ध्यानमें रखकर उक्तप्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कका बन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं और इनके पीतलेश्याका काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंकी तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा किसी जीवने देवोंमें उत्पन्न होनेके पूर्व इनकी असंख्यातगुणवृद्धि की और वहाँसे आकर पुनः मनुष्योंमें इनकी असंख्यातगुणवृद्धि की, यह सम्भव है, क्योंकि देवोंमें से आनेके बाद औदारिकमिश्रकाययोगमें इनकी असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है और देवोंमें उत्पन्न होनेके पूर्व भी यह सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। औदारिकशरीरका बन्ध तिर्यञ्चों और मनुष्योंके भी होता है और देवोंमें यह ध्रुवबन्धिनी है, इसलिए इसका भङ्ग ज्ञानावरण के समान बन जानेसे उसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इसका अवक्तव्यपद या तो देवोंके प्रथम समयमें सम्भव है या तिर्यञ्चों और मनुष्योंके सम्भव है। पर इस लेश्याके रहते हुए यह पद दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए इस प्रकृतिके उक्त पदके अन्तरकालका निषेध किया है। इस प्रकार यहाँ जिन प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका अन्तरकाल कहा है, उसे ध्यानमें रखकर शेष प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका अन्तरकाल भुजगार अनुयोगद्वारके समान यहाँ भी घटित हो जाता है, इसलिए यहाँ शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान घटित कर लेनेकी सूचना की है। पद्मलेश्यामें भी इसी विधिसे अन्तरकाल ले आना चाहिए। मात्र इस लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक अठारह सागर है, इसलिए इस कालको ध्यानमें रखकर अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिए। यही कारण है कि यहाँ जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभाग वृद्धि और अनन्तभागहानि सम्भव है, उनके इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है। तथा यहाँ एकेन्द्रियजातिसम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध न होनेके कारण देवोंमें औदारिकआङ्गो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३००. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज-भय-दु०-पंचिंदि०-तेजा०क०-वण्ण०-४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० एकवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। अवत्त० णत्थि अंतरं। एसिं अणंतभागवड्डि-हाणी अत्थि तेसिं जह० अंतो०, उक्क० ऍक्कत्तीसं० देसू०। मणुसगदि०४ धुविगाण भंगो। णवरि तेंत्तीसं० देसू०। देवगदि०४ असंखेंज्जगुणवड्डि० जह० एग०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। सेसपदाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० जह० अट्ठारससाग० सादि०, उक्क० तेंत्तीसं० सादि०। एवं० भुजगारभंगो कादव्वो।

पाङ्ग भी ध्रुवबन्धिनी प्रकृति हो जाती है, अतः इसका भङ्ग ज्ञानावरणके समान प्राप्त होनेसे उसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। परन्तु यहाँ औदारिक आङ्गोपाङ्गका अवक्तव्यपद भी सम्भव है, पर उसका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, इसलिए इस प्रकृतिके उक्त पदके अन्तरकालका निषेध किया है। खुलासा पहले औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके अन्तरकालका निषेध करते समय कर आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए।

३००. शुक्लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायकी एक वृद्धि और एक हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यगतिचतुष्कका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इनके शेष पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक अठारह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इस प्रकार भुजगार अनुयोगद्वारके समान भङ्ग करना चाहिए।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें उपशमश्रेणिमें बन्धव्युच्छित्तिके बादके कालको छोड़कर पाँच ज्ञानावरणादिका निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसलिए यहाँ इनकी एक वृद्धि और एक हानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा इस लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। यह सम्भव है कि इसके कालके प्रारम्भमें और अन्तमें उक्त प्रकृतियोंकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपद हों तथा मध्यमें न हों, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहाँ उपशमश्रेणिसे उतरते समय यद्यपि इनका अवक्तव्यपद होता है, पर इस लेश्याके उसी कालमें दूसरी बार उपशमश्रेणिपर चढ़ना और उतरना सम्भव नहीं है, क्योंकि उपशमश्रेणिसे उतरकर सातवें गुणस्थानमें आनेपर लेश्या बदल जाती है। इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद होकर भी उसका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, अतः उसका निषेध किया है। यहाँ जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि होती है,उनके इन पदोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त तो पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिए। पर उत्कृष्ट अन्तर जो कुछ कम इकतीस सागर बतलाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०१. भवसि०-अभवसि०-सम्मा०-खइग०-वेदग० भुजगारभंगो । णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि०अंतरं ओघि०भंगो । अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वं ।

३०२. उवसम० चदुदंस०-चदुसंज० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणंतभागवड्डि-हाणि-अवत्त० णत्थि अंतरं । पच्चक्खाण०४ अणंतभागवड्डि-हाणि-अवत्त० जह० उक्क० अंतो० । सेसाणं भुजगारभंगो । सासण०-

है, उसका कारण यह है कि इकतीस सागरसे अधिक स्थितिवाले देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं और ऐसे देवोंके उक्त प्रकृतियोंके उक्त दोनों पद नहीं बनते । अतः यहाँ इन दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है । एक मनुष्यने उपशमश्रेणिपर आरोहण करते समय देवगतिचतुष्ककी असंख्यातगुणवृद्धि की । उसके बाद उतरते समय इनका अवक्तव्यबन्ध किया और मरकर तेतीस सागरकी आयुके साथ देव हो गया । पुनः वहाँसे च्युत होकर प्रथम समयमें अवक्तव्यबन्ध करके द्वितीय समयमें असंख्यातगुणवृद्धि की । इस प्रकार इनके उक्त पदका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । इनके शेष पद तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें होते हैं और वहाँ इस लेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके उक्त पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । अब रहा एक अवक्तव्यपद सो मनुष्योंमें इनका अवक्तव्यपद करावे । बादमें देवोंमें उत्पन्न करावे और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य होनेपर पुनः अवक्तव्यपद करावे और अन्तरकाल ले आवे । यतः यहाँ इस प्रकार दो बार अवक्तव्यपद प्राप्त करनेमें कमसे कम साधिक अठारह सागर और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल लगता है, अतः इन प्रकृतियोंके उक्त पदका जघन्य अन्तरकाल साधिक अठारह सागर और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है । इस प्रकार यहाँ तक जो अन्तरकाल कहा है, उसके आगे शेष प्रकृतियोंका उनके अपने-अपने पदोंके अनुसार अन्तरकाल भुजगार अनुयोगद्वार को लक्ष्यमें रखकर प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए उसे भुजगारके समान जाननेकी सूचना की है ।

३०१. भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें भुजगारके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका अन्तर अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । मात्र सर्वत्र अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए । अर्थात् जिस मार्गणाका जो उत्कृष्ट काल है उसे जानकर उत्कृष्ट अन्तरकाल लाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ अभव्य मार्गणामें किसी भी प्रकृतिकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि सम्भव नहीं है । शेषमें सम्भव है सो अवधिज्ञानमार्गणाके अनुसार वह घटित कर लेना चाहिए । पर जिसकी जो कायस्थिति हो उसे जानकर घटित करना चाहिए । यहाँ इतना और विशेष जानना चाहिए कि भव्य मार्गणामें मिथ्यात्वादि सब गुणस्थान सम्भव हैं, इसलिए इसमें अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिका भङ्ग ओघके समान बन जाता है ।

३०२. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें चार दर्शनावरण और चार संज्वलनकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है । प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

१ ता० प्रतौ 'कादव्वो भव अब्भव० । सम्मा०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामि० - मिच्छादि० - सण्णि-असण्णि - आहारका० - अणाहार त्ति भुजगारभंगो कादव्वो ।

एवं अंतरं समत्तं ।

णाणाजीवेहि भंगविचओ

२०३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसकसा०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णियमा अत्थि । अवत्तव्वगा भयणिज्जा[1] । तिण्णि भंगो । तिण्णिआउगाणं सव्वपदा भयणिज्जा । वेउव्वियछक्कं आहारदुगं तित्थ० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणी० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । सेसाणं पगदीणं सव्वपदा णियमा अत्थि । णवरि छदंस०-बारसक०-सत्तणोक० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० णियमा अत्थि । अणंतभागवड्ढि-हाणिबंधगा भयणिज्जाणि । ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालिका० - ओरालि०मि० - णवुंसग०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-

---

शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भुजगारके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें भुजगारके समान भङ्ग कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्वका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें चार दर्शनावरण और चार संज्वलनकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है । यहाँ इनकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्य पद तो सम्भव हैं, पर ये पद यहाँ दो बार नहीं हो सकते; इसलिए उक्त प्रकृतियोंके इन पदोंके अन्तरकालका निषेध किया है । मात्र उपशमसम्यक्त्वके कालमें संयमासंयम और संयमकी दो बार प्राप्ति और दो बार च्युति सम्भव है, इसलिए यहाँ प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपद दो बार बन जानेसे उनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । शेष कथन स्पष्ट है ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय

२०३. नाना जीवोंका अवलम्बन लेकर भङ्गविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीव नियमसे हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव भजनीय हैं । भङ्ग तीन होते हैं । तीन आयुओंके सब पद भजनीय हैं । वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुण-हानि नियमसे है । शेष पद भजनीय हैं । शेष प्रकृतियोंके सब पद नियमसे हैं । इतनी विशेषता है कि छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपद नियमसे हैं । अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव भजनीय हैं । इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाय-

---

१. आ०प्रतौ 'अवत्तव्वगा य भयणिज्जा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहारग त्ति। णवरि ओरालि०मि० देवगदिपंचगस्स असंखेंज्जगुणवड्ढिबंधगा भयणिज्जा। एवं कम्मइ०-अणाहारगेसु।

योगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव भजनीय हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीव अनन्त हैं। इन प्रकृतियोंका उक्त पदोंके साथ नाना जीव निरन्तर बन्ध करते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंके बन्धक जीव नियमसे हैं, यह कहा है। किन्तु इनमेंसे बहुतसी प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें प्राप्त होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्यपद उपशम सम्यग्दृष्टिके सासादनमें या मिथ्यात्वमें आनेपर प्राप्त होता है। मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद उपरिम गुणस्थानवालोंके मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर होता है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद पञ्चमादि गुणस्थानवाले जीवोंके नीचेके गुणस्थानोंको प्राप्त होनेपर होता है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद संयत जीवोंके पञ्चमादि गुणस्थानोंको प्राप्त होनेपर होता है और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद असंज्ञी आदि जीवोंके इसके बन्धके प्रथम समयमें प्राप्त होता है। यतः ऐसे जीव जो इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद कर रहे हैं सर्वदा नहीं पाये जाते, अतः इस पदवाले भजनीय कहे हैं। उसमें भी उक्त प्रकृतियोंका इस पदवाला कभी एक भी जीव नहीं होता, कभी एक जीव होता है और कभी नाना जीव होते हैं, इसलिए इस पदवाले जीवोंकी अपेक्षा तीन भङ्ग कहे हैं। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके बन्धवाले जीव ही जब सर्वदा नहीं पाये जाते, ऐसी अवस्थामें इसके सब पदवाले जीव सर्वदा पाये जावेंगे, यह सम्भव ही नहीं है, इसलिए इनके सब पद भजनीय कहे हैं। वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, यह स्पष्ट ही है। उसमें भी बहुलतासे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानि ही होती है, इसलिए इनका नैरन्तर्य सम्भव होनेसे इनके ये पद नियमसे हैं, यह कहा है। तथा इनके शेष पदोंके विषयमें यह स्थिति नहीं है, इसलिए उन्हें भजनीय कहा है। शेष प्रकृतियोंका सब पदोंकी अपेक्षा नाना जीव निरन्तर बन्ध करते रहते हैं, इसलिए उनके सब पदवाले जीव नियमसे हैं, यह कहा है। मात्र छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके विषयमें यह बात नहीं है; क्योंकि अधस्तन गुणस्थानोंसे उपरिम गुणस्थानोंमें जाते समय अपने-अपने योग्य स्थानमें इनकी अनन्तभागवृद्धि होती है और उपरिम गुणस्थानोंसे नीचे आते समय अपने-अपने योग्य स्थानमें इनकी अनन्तभागहानि होती है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पद भी भजनीय कहे हैं। शेष कथन सुगम है। यह ओघप्ररूपणा है जो मूलमें निर्दिष्ट सामान्य तिर्यञ्च आदि मार्गणाओंमें बन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धि सर्वदा सम्भव नहीं है, क्योंकि किसी सम्यग्दृष्टिके इस योगको प्राप्त होनेपर यथासम्भव इनका बन्ध होता है। परन्तु ऐसी योग्यतावाले औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका निरन्तर होना सम्भव नहीं है, इसलिए इस योगमें उक्त प्रकृतियोंके इस पदवाले जीव भजनीय कहे हैं। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंकी स्थिति औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान ही है, इसलिए उनमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान प्ररूपणा जाननेकी सूचना की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०४. णिरएसु असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणी णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । मणुसअपज्जत्त–वेउव्वि०मि०–आहार०–आहारमि०–अवगद०–सुहुमसंप० – उवसम०–सासण०-सम्मामि० सव्वपगदीणं सव्वपदा भयणिज्जा । एदेण कमेण णेदव्वं ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं ।

भागाभागो

३०५. भागाभागाणुगमेण दुवि०–ओघे० आदे० । ओघेण पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० -पंचंत० असंखेंज्जगुणवड्डिबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? दुभागो सादिरेयो । असंखेंज्ज-गुणहाणिबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? दुभागो देसूणो । तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? असंखेंज्जदिभागो । अवत्त०बंध० सव्वजीवाणं केवडि० ? अणंतभागो । एसिं[1] अणंतभागवड्डि-हाणि० अत्थि तेसिं सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभागो । सेसाणं पगदीणं एक्कवड्डि० के० ? दुभागो सादिरेगो । एक्कहाणि० दुभागो देसू० । सेसपदा सव्वजीवाणं केवडियो भागो० ? असंखेंज्जदिभागो ।

३०४. नारकियोंमें असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारक-मिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इस क्रमसे ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—मनुष्य अपर्याप्त आदि सान्तर मार्गणाएँ हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय होना स्वाभाविक है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ।

भागाभाग

३०५. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। असंख्यातगुण-हानिके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं ? तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भाग-प्रमाण हैं। जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। शेष प्रकृतियोंकी एक वृद्धिके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। एक हानिके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं। शेष पदोंके बन्धक

१. ता०प्रतौ 'केवडि ? अणंतभागो । एसिं अणंतभागो एसिं' आ०प्रतौ 'केवडि ? अणंता भागा । एसिं अणंतभागो एसिं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं आहारदुगं। णवरि संखेंज्जं कादव्वं। तित्थय० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० साद०-भंगो। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंजद-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारग त्ति। णवरि ओरालियमि० देवगदिपंचगस्स ऍक्कवड्ढि०। कम्मइ०-अणाहारग० एसिं अवत्त० अत्थि तेसिं असंखेंज्जगुणवड्ढि० असंखेंज्जा भागा। अवत्त० असंखेंज्जदिभागो। सेसाणं णिरयादीणं एसिं असंखेंज्जजीवा तेसिं ओघं साद०भंगो। एसिं संखेंज्जजीविगा तेसिं ओघं आहारसरीरभंगो[1]। एवं णेदव्वं।

एवं भागाभागं समत्तं[2]।

जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका भागाभाग करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यात करना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवोंका भागाभाग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका भागाभाग सातावेदनीयके समान है। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी एक वृद्धि है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जिनका अवक्तव्यपद है, उनकी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। शेष नरकादि मार्गणाओंमें जिनका परिमाण असंख्यात है, उनका ओघसे सातावेदनीयके समान भङ्ग है और जिन मार्गणाओंका परिमाण संख्यात है, उनमें ओघसे आहारकशरीरके समान भङ्ग है। इस प्रकार ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—जो कुल जीवराशि है, उसमें सब प्रकृतियोंके सम्भव सब पदोंके बन्धकोंका यदि बटवारा किया जाय तो कितना हिस्सा किसे मिलेगा, इसका विचार भागाभागमें किया गया है। तदनुसार पाँच ज्ञानावरणादिकी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव आधेसे कुछ अधिक प्राप्त होते हैं। असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव आधेसे कुछ कम प्राप्त होते हैं। फिर भी इन दोनों पदोंके बन्धक जीवोंका कुल परिमाण मिलाकर सम्पूर्ण जीव राशि नहीं होता है। जो परिमाण बच रहता है उसमें शेष पदोंके बन्धक जीव होते हैं। भागाभागकी दृष्टिसे उनका विचार करनेपर तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीव सब जीव राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। अर्थात् सब जीवराशिमें असंख्यातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने इन पदोंके बन्धक जीव होते हैं और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव अनन्तवें भाग-प्रमाण होते हैं। अर्थात् सब जीवराशिमें अनन्तका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतने इस पदके बन्धक जीव होते हैं। कारणका विचार पहले कर आये हैं। यहाँ इतना विशेष समझ लेना चाहिए कि आगे परिमाण अनुयोगद्वारमें जो प्रत्येक प्रकृतिके विवक्षित पदके बन्धक जीवोंका परिमाण बतलाया है, उसे प्रतिभाग बनाकर यहाँ सर्वत्र भागहार प्राप्त करना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादिमें पाँच नोकषायोंको छोड़कर शेष ऐसी प्रकृतियाँ भी सम्मिलित हैं, जिनकी

१. ता० प्रतौ 'असंखेज्जजीविगा तेसिं ओघं। आहारसरीरभंगो' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'एवं भागाभागं समत्तं।' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

परिमाणं

३०६. परिमाणाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे० । ओघेण पंचणा०-छदंसणा०-[पच्चक्खाण०४]–चदुसंज०–भय-दु०-तेजा०-क०–वण्ण०४-अगु०–उप०–णिमि०-पंचंत० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० केंत्तिया ? अणंता । अवत्तव्व० केंत्तिया ? संखेंज्जा । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अट्ठक०-ओरालि० णाणा०भंगो । णवरि अवत्त० केंत्तिया ?

अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव है। पाँच नोकषायोंके साथ उनके इन पदवालोंका भागाभाग कितना है,यह बतलानेके लिए उसको अलगसे सूचना की है। ये पाँच ज्ञानावरणादि सब ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके पूर्व इनका सब जीव नियमसे बन्ध करते हैं। इनमें औदारिकशरीर ऐसा है जो सप्रतिपक्ष प्रकृति कही जा सकती है,परन्तु सब अपर्याप्तक और एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके जीव उसका नियमसे बन्ध करते हैं, इसलिए उन जीवोंकी अपेक्षा वह भी ध्रुवबन्धिनी है। अब शेष जो प्रकृतियाँ रहती हैं, वे परावर्तमान हैं, इसलिए उनके अवक्तव्य पदकी परिगणना तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदके साथ की गई है। अतः पाँच ज्ञानावरणादिके अवक्तव्यपदवालोंका भागाभाग जो अलगसे कहा गया है, उसे यहाँ अलगसे नहीं दिखलाया गया है। मात्र आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके विषयमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि आहारकद्विकका बन्ध करनेवाले जीव ही संख्यात होते हैं, इसलिए असंख्यातवें भागप्रमाणके स्थानमें यहाँ संख्यातवें भागप्रममाण होते हैं,ऐसा कहनेकी सूचना की गई है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृति ध्रुवबन्धिनी ही है,यह दिखलानेके लिए उसका भङ्ग ज्ञानावरणके समान जाननेकी सूचना की है,पर इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका भागाभाग सातावेदनीयके समान है। क्योंकि तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यात होते हैं और इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात होते हैं,इसलिए यहाँ इस पदकी अपेक्षा भागाभाग सातावेदनीयके समान बन जानेसे उसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि कुछ अन्य मार्गणाएँ गिनाई हैं,जिनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। उसका कारण इतना ही है कि ये सब मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली हैं, इसलिए उनमें ओघप्ररूपणा बन जाती है। मात्र अपनी-अपनी बन्धयोग्य प्रकृतियोंको जानकर भागाभाग कहना चाहिए। किन्तु उनमें औदारिकमिश्रकाययोग एक ऐसी मार्गणा है जिसमें देवगतिपञ्चककी एकमात्र असंख्यातगुणवृद्धि होती है, इसलिए यहाँ इसका भागाभाग सम्भव नहीं है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक ये दो ऐसी मार्गणाएँ हैं,जिनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है, इसलिए इनका भागाभाग सम्भव नहीं है। शेष प्रकृतियोंकी अवश्य ही असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्यपद होते हैं, इसलिए इनका भागाभाग अलगसे कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाण

३०६. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेंज्जा। तिण्णिआउगाणं वेउव्वियछक्कं तित्थ० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० केंत्तिया ? असंखेंज्जा। णवरि तित्थ० अवत्त० कैंत्तिया ? संखेंज्जा। आहारदुगस्स सव्वपदा कैंत्तिया ? संखेंज्जा। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वपदा कैंत्तिया ? अणंता। एसिं अणंतभागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं असंखेंज्जा। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंजद-अचक्खुदं०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारग त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहार० देवगदिपंचग० असंखेंज्जगुणवड्ढि० कैंत्तिया ? संखेंज्जा। कम्मइग०-अणाहार० सव्वपदा कैंत्तिया ? अणंता। णवरि धुविगाणं एगपदं अणंता। णवरि मिच्छ० अवत्त० कैंत्तिया? असंखेंज्जा। एदेण बीजेण णेदव्वं याव अणाहारग त्ति।

असंख्यात हैं। तीन आयु, वैक्रियिकषट्क और तीर्थङ्करप्रकृतिकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करप्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके एक पदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे पाँच ज्ञानावरणादिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका बन्ध अन्यतर जीव करते हैं और सब जीवराशि अनन्त है, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका परिमाण अनन्त कहा है। परन्तु इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें ही सम्भव है, अतः इनके इस पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिके विषयमें यही बात है, अतः उनका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। मात्र उनके अवक्तव्यपदके स्वामित्वमें विशेषता है। बात यह है कि इनका अवक्तव्यपद यथायोग्य प्रथम गुणस्थानसे पाँचवें गुणस्थान तक होता है। यथा—गिरते समय स्त्यानगृद्धिका पहले और दूसरे गुणस्थानमें, मिथ्यात्वका पहले गुणस्थानमें, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका प्रथमादि चारमें प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका प्रथमादि पाँचमें और औदारिकशरीरका असंज्ञी आदि जीवोंके अवक्तव्यपद होता है और ऐसे जीवोंका परिमाण असंख्यात सम्भव है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। तीन आयुके उदयवाले जीव असंख्यात हैं। इस न्यायसे इनका बन्ध करनेवाले जीव भी असंख्यात होते हैं। यही कारण है कि यहाँ इनके सब पदवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। वैक्रियिकषट्कका असंज्ञी आदि जीव और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०७. णेरइएसु धुविगाणं चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० केत्तिया ? असंखेंज्जा। मणुसाउ० सव्वपदा केत्तिया ? संखेंज्जा। सेसाणं पगदीणं सव्वपदा असंखेंज्जा। एसिं अणंतभागवड्डि-हाणि० अत्थि तेसिं असंखेंज्जा। णवरि तित्थ० अवत्त० केत्तिया ? संखेंज्जा। एवं सव्वणेरइय-देव-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढ०-आउ० - तेउ-वाउ० - बादरपज्जत्तपत्ते०-वेउव्विय०-[वेउव्वियमि० - इत्थिवे०-पुरिसवे०-विभंग०-सासणसम्मादिट्ठि त्ति।] णवरि[1] पंचिंदियतिरिक्ख०-विभंग०-सासणे[2] देवाउ०

तीर्थङ्करप्रकृतिका सम्यग्दृष्टि कुछ जीव बन्ध करते हैं। यतः ये जीव भी असंख्यात हैं, अतः इनके सब पदोंके बन्धक जीव भी असंख्यात कहे हैं। मात्र तीर्थङ्करप्रकृतिका अवक्तव्यपद एक तो उपशमश्रेणिमें सम्भव है, दूसरे आठवें गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिके बाद जो जीव मरकर देव होते हैं, उनके प्रथम समयमें सम्भव है और तीसरे जो इसका बन्ध करनेवाले जीव दूसरे-तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनके सम्भव है। यतः ये मिलकर भी संख्यात ही होते हैं, अतः यहाँ इसके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। आहारकद्विकके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं, यह स्पष्ट ही है। अब रहीं शेष परावर्तमान प्रकृतियाँ सो उनके सब पद एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए उनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण अनन्त कहा है। यहाँ छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी होती है, पर उनके इन पदवालोंका परिमाण अभी तक नहीं कहा गया था, इसलिए उसका अलगसे उल्लेख किया है। तात्पर्य यह है कि ये पद भी यथासम्भव गुणस्थान चढ़ते समय और उतरते समय होते हैं। चढ़ते समय अनन्तभागवृद्धि होती है और उतरते समय अनन्तभागहानि। विशेष जानकारी स्वामित्वको देखकर कर लेनी चाहिए। यतः ऐसे जीव असंख्यात हो सकते हैं, अतः उक्त प्रकृतियोंके इन पदवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। यहाँ मूलमें गिनाई गई सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य मार्गणाओंमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें तथा इनके साथ कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं और यहाँ इनकी एकमात्र असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है, इसलिए यहाँ इनके उक्त पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका एक असंख्यातगुणवृद्धि पद और शेषके असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्य ये दो पद होते हैं तथा इनका परिमाण अनन्त है, यह स्पष्ट ही है।

३०७. नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, देव, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, बादर पर्याप्त प्रत्येक वनस्पतिकायिक, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, विभङ्गज्ञानी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें

१ ता०प्रतौ 'बादर० पत्ते० वेउव्विय०''''''[सासण० स] म्मामि० णवरि' आ० प्रतौ बादर पज्जत्तपत्ते० वेउव्विय०''''''सासण० सम्मामि०। णवरि' इति पाठः। २ ता०प्रतौ 'विभंग०। सासणे' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेंज्जा। केसिं च मणुसाउ० सव्वपदा असंखेंज्जा। सेसाणं संखेंज्जा[1]। वेउव्वियमि० धुविगाणं एगपदं असंखेंज्जा। सेसाणं असंखेंज्जगुणवड्डि-अवत्त० असंखेंज्जा। तित्थ० एयपदं संखेंज्जा। [इत्थि० तित्थ० सव्वपदा संखेंज्जा।]

३०८. मणुसेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालि०-

जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, विभङ्गज्ञानी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें देवायुके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव किन्हींमें असंख्यात हैं और शेषमें संख्यात हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके एक पदके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिके एक पदके बन्धक जीव संख्यात हैं। तथा स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—नारकियोंका परिमाण असंख्यात है, इसलिए उनमें सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात बन जाता है। मात्र इसके दो अपवाद हैं—एक तो मनुष्यायुके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीव और दूसरे तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव। नारकी जीव गर्भज मनुष्योंकी आयुका ही बन्ध करते हैं और गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं, इसलिए नारकियोंमें मनुष्यायुके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं,उन्हींके वहाँ सम्यग्दर्शन होनेपर तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद होता है। यतः ऐसे जीव संख्यात ही हो सकते हैं, अतः नारकियोंमें इसके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यहाँ गिनाई गई सब नारकी आदि मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनमें सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इन मार्गणाओंमेंसे तीन प्रकारके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, विभङ्गज्ञानी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें देवायुका भी बन्ध होता है, इसलिए इनमें देवायुके सब पदवाले जीवोंका कितना परिमाण होता है,यह अलगसे बतलाया है। तथा इन सब मार्गणाओंमें यद्यपि मनुष्यायुका बन्ध होता है, पर उनमेंसे वैक्रियिककाययोगी और सासादनसम्यग्दृष्टि इन दो मार्गणाओंमें संख्यात जीव ही इस आयुका बन्ध करते हैं,किन्तु अन्य मार्गणाओंमें असंख्यात जीव मनुष्यायुका बन्ध करते हैं, इसलिए उक्त मार्गणाओंमें मनुष्यायुसम्बन्धी उक्त विशेषताका उल्लेख करनेके लिए इसकी प्ररूपणा भी अलगसे की है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका परिमाण असंख्यात है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके एक पदवाले जीव और तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके दो पदवाले जीव असंख्यात हैं,यह स्पष्ट ही है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य मर कर देव होते हैं और प्रथम नरकके नारकी होते हैं,उन्हींके इस योगमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है। ऐसे जीव संख्यातसे अधिक नहीं हो सकते, इसलिए यहाँ इसके सब पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा मनुष्योंमें ही स्त्रीवेदी जीव तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करते हैं, इसलिए इस मार्गणामें इसके सब पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण अलगसे कहा है।

३०८. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच

१. ता०आ०प्रत्योः 'सेसाणं असंखेज्जा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० असंखेँज्जा। अवत्त० संखेँज्जा। एसिं अणंतभागवड्ढि-[हाणि० अत्थि तेसिं संखेँज्जा। दोआउ०-वेउव्वियछक्कं] आहारदुगं तित्थय[1]० सव्वपदा केँत्तिया? संखेँज्जा। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वपदा असंखेँज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदा केँत्तिया? संखेँज्जा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं०।

३०६. एइंदि०-वणप्फदि-णिगोद० सव्वपगदीणं सव्वपदा केँत्तिया? अणंता। णवरि मणुसाउ० सव्वपदा केँत्तिया? असंखेँज्जा।

अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यात हैं। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं। यहाँ जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है उनमें इन पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं। दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्य पर्याप्त जीवोंके समान सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंका परिमाण असंख्यात है। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य भी पाँच ज्ञानावरणादिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका बन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। परन्तु इनका अवक्तव्यपद लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यहाँ विवक्षित प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि ये पद भी लब्ध्य-पर्याप्तक मनुष्योंके नहीं होते, इसलिए इन पदवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध गर्भज मनुष्य यथासम्भव करते हैं, यह स्पष्ट ही है; इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके सब पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शेष सब प्रकृतियों और उनके सब पदोंका बन्ध मनुष्योंमें यथायोग्य सबके सम्भव है, इसलिए उनके सब पदवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी इनका परिमाण ही संख्यात है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके सम्भव सब पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। यहाँ गिनाई गईं अन्य सब मार्गणाओंमें जीवोंका परिमाण संख्यात है, इसलिए उनमें अन्तके इन दो प्रकारके मनुष्योंके समान जाननेकी सूचना की है।

३०६. एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—इन तीन मार्गणाओंमें परिमाण अनन्त है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके

---

१ ता०प्रतौ 'अणंतभागव [ड्ढि······आहारदुगं] तित्थय' आ०प्रतौ अणंतभागवड्ढि······आहारदुगं तित्थय०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१०. एदेण कमेण आभिणि-सुद०-[ओधि० पंचणा०-देवग०-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि० अंगो०-वण्ण०४-देवाणुपु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें० - णिमि०-तित्थ० - उच्चा०-पंचंत० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० केंत्तिया ? असंखेंज्जा । अवत्त० संखेंज्जा । एवं णिद्दा-पयला-पुरिस०-भय-दु० । एवं चदुदंसणा० । णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि० संखेंज्जा । चदुसंज०-पच्चक्खाण०४ णाणा०भंगो । णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि० केंत्तिया ? असंखेंज्जा । [दोवेदणी०-अपच्चक्खाण०४-चदुणो०-देवाउ०-मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०-थिरादितिण्णियुग० सव्वपदा० केंत्तिया० ?] असंखेंज्जा । मणुसाउ०-आहारदुगं सव्वपदा केंत्तिया ? संखेंज्जा । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग० ।

सब पदवाले जीवोंका परिमाण अनन्त बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । पर कुल मनुष्य ही असंख्यात होते हैं, इसलिए मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीव कहीं असंख्यातसे अधिक नहीं हो सकते । यही कारण है कि यहाँ इसके सब पदवाले जीवोंका परिमाण असंख्यात कहा है ।

३१०. इस क्रमसे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कर्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार निद्रा, प्रचला, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका भङ्ग जानना चाहिए । तथा इसी प्रकार चार दर्शनावरणका भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव संख्यात हैं । चार संज्वलन और प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । दो वेदनीय, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार नोकषाय, देवायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ये तीन मार्गणावाले जीव असंख्यात हैं, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यात कहे हैं । परन्तु इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उक्त पदके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं । निद्रादिक पाँचका भङ्ग इसी प्रकार है, इसलिए उनके विषयमें पाँच ज्ञानावरणादिके समान जाननेकी सूचना की है । चार दर्शनावरणका भङ्ग भी इसीप्रकार बन जाता है । मात्र इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव होनेसे इन पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण अलगसे कहा

१ ता०प्रतौ 'अभिणिसुद······[केवल०] पंचिं०' आ० प्रतौ 'आभिणि-सुद०······केवल० पंचिंदि०' इति पाठः । २ आ०प्रतौ 'वण्ण० देवाणुपु० अगु० पसत्थ०' इति पाठः । ३ ता०प्रतौ 'केत्ति० १ असं[खेज्जा ।······असंखेज्जा] । मणुसाउ०' आ०प्रतौ 'केत्तिया ? असंखेज्जा ।······असंखेज्जा । मणुसाउ०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३११. संजदासंजद[1]० सव्वपगदीणं सव्वपदा केँत्तिया ? असंखेँज्जा। णवरि तित्थ० सव्वपदा संखेँज्जा।

३१२. तेउ०-पम्म० [पच्चक्खाण०४-] देवगदि०४-तित्थ० अवत्त[2]० केँत्तिया ? संखेँज्जा। सेसपदा असंखेँज्जा। सेसपगदीणं सव्वपदा केँत्तिया ? असंखेँज्जा। [मणुसाउ०-आहारदु० सव्वपदा केँत्तिया ? संखेँज्जा।]

है जो संख्यात प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ इनके ये दो पद उपशमश्रेणिमें ही सम्भव हैं। चार संज्वलन और प्रत्याख्यानावरण चतुष्ककी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि ये दो पद चौथेसे पाँचवेंमें जाते समय और ऊपरके गुणस्थानोंसे चौथेमें आते समय भी सम्भव हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदवालोंका परिमाण असंख्यात कहा है। इनके शेष पदोंका भङ्ग पाँच ज्ञानावरणके समान है,यह स्पष्ट ही है। दो वेदनीय आदि कुछ तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, अप्रत्याख्यानावरणका चतुर्थ गुणस्थानमें बन्ध होता है तथा मनुष्यगतिद्विक, औदारिक-शरीरद्विक और वज्रर्षभनाराचसंहननका अविरतसम्यग्दृष्टि सब देव और नारकी बन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण असंख्यात प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं,यह स्पष्ट ही है। अवधिदर्शनवाले आदि मूलमें कही गई तीन मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनमें आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है।

३११. संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंमें मनुष्य ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करते हैं, इसलिए इनमें इस प्रकृतिके सब पदवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३१२. पीत और पद्मलेश्यामें प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, देवगतिचतुष्क, और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ? तथा मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

विशेषार्थ—जो संयत मनुष्य नीचेके गुणस्थानोंमें आते हैं या मरकर देव होते हैं उनके ही प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद होता है, इसलिए तो इन लेश्याओंमें अप्रत्याख्याना-वरण चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा देव और नारकियोंके तो देवगतिचतुष्कका बन्ध ही नहीं होता, इसलिए वहाँ इनके अवक्तव्यपदकी बात ही नहीं। जो मिथ्यादृष्टि देव मरकर अन्य गतियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए वहाँ भी इनके अवक्तव्य पदकी बात नहीं। हाँ,जो उक्त लेश्यावाले सम्यग्दृष्टि देव मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं,उनके देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद मुख्यरूपसे सम्भव है और ऐसे जीव संख्यात होते हैं, इसलिए यहाँ देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। तथा इन लेश्याओंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका अवक्तव्यपद मनुष्योंमें ही सम्भव है, इसलिए यहाँ इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव भी संख्यात कहे हैं। यहाँ इन प्रकृतियोंके शेष पदोंके तथा मनुष्यायु और आहारकद्विकको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके

१. ता०प्रतौ 'वेदग० संजदासंजदा' इति पाठः। २. आ०प्रतौ देवगदि ४ मिच्छ० अवत्त०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१३. सुक्काए धुविगाणं चत्तारि [वड्ढि-हाणि-अवट्ठि केँत्तिया० । असंखेंज्जा । अवत्त० केँत्तिया० । संखेंज्जा । दोआउ०-आहार० सव्वपदा केँत्तिया० ? संखेँज्जा । सेसाणं सव्वप० के० असंखेंज्जा]। णवरि[1] मणुसगदिपंच०-देवगदि४-तित्थ० अवत्त० केँत्तिया ? संखेंज्जा । सेसपदा असंखेंज्जा । [खइय० एवमेव ।]

३१४. उवसम० धुविगाणं मणुसगदिपंचग०-देवगदि०४ अवत्त० केँत्तिया ? संखेंज्जा। सेसपदा असंखेंज्जा। चदुदंस० अणंतभागवड्ढि-हाणि० संखेज्जा। सेसपदा केँत्तिया ? असंखेंज्जा। आहारदुगं तित्थ० सव्वपदा केँत्तिया ? संखेंज्जा। सेसाणं पगदीणं सव्वपदा केँत्तिया ? असंखेंज्जा।

सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं,यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं,यह भी स्पष्ट है।

३१३. शुक्ललेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। दो आयु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिपञ्चक, देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा शेष पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे उतरते समय होता है, इसलिए यहाँ इनके उक्त पदवाले जीव संख्यात कहे हैं। जो शुक्ललेश्यावाले उपशमश्रेणिसे उतरते समय देवगतिचतुष्कका बन्ध करते हैं,उनके इन प्रकृतियोंका अवक्तव्य पद होता है और जो मरकर देव होते हैं, उनके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मनुष्यगति पञ्चकका अवक्तव्यपद होता है। यतः ये जीव संख्यात होते हैं, अतः यहाँ इनके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शुक्ललेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ एक तो मनुष्य करते हैं। दूसरे उपशमश्रेणिमें तीर्थङ्कर प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद जो मर कर देव होते हैं या नीचे उतर आते हैं,वे भी इसके बन्धको पुनः प्रारम्भ करते हैं। अतः ये संख्यात होते हैं, अतः इस लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव भी संख्यात कहे हैं। शेष कथन सुगम है। यहाँ मूलमें कुछ पाठ त्रुटित है और गड़बड़ भी है। सुधारकर पाठ बनानेका प्रयत्न किया है। क्षायिकसम्यक्त्वमें प्रायः शुक्ललेश्याके समान भङ्ग बन जाता है, इसलिए उसमें भी शुक्ललेश्याके समान जाननेकी सूचना कर दी है। जो विशेषता है उसे जान लेना चाहिये।

३१४. उपशमसम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके और मनुष्यगति पञ्चक तथा देवगति चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव संख्यात हैं। शेष पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

---

१ ता० प्रतौ 'चत्तारि [वड्ढि हाणि] ······एवमेव णवरि' आ०प्रतौ 'चत्तारि······एवमेव णवरि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१५. सासण०-सम्मामि० सव्वपगदीणं सव्वपदा असंखेँज्जा। णवरि सासणे मणुसाउ० सव्वपदा संखेँज्जा।

एवं परिमाणं समत्तं[1]।

खेत्तं

३१६. खेँत्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक० - भय - दु०-ओरालि० - तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधगा केवडि खेँत्ते? सव्वलोगे। अवत्त० केवडि खेँत्ते? लोगस्स असंखेँज्जदिभागे[2]। एसिं अणंतभागवड्ढि-हाणी अत्थि तेसिं लोगस्स

विशेषार्थ—जो मनुष्य उपशमसम्यक्त्वके साथ मर कर देव होते हैं, उनके प्रथम समयमें मनुष्यगति पञ्चकका अवक्तव्य पद होता है और उपशमश्रेणिसे उतरते हुए उपशमसम्यग्दृष्टि मनुष्यों के देवगति चतुष्कका अवक्तव्यपद होता है। यतः ये संख्यात ही होते हैं, अतः यहाँ इनका परिमाण उक्तप्रमाण कहा है। इनमें चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभाग-हानि भी उपशमश्रेणिमें होती है, इसलिए इनके बन्धक जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है। इनमें आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात होते हैं, यह स्पष्ट ही है। तथा उपशम सम्यग्दर्शनमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ मनुष्य ही करते हैं और ऐसे मनुष्य उपशम-श्रेणिमें यदि मरते हैं, तो देवोंमें भी अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर संचित हुए तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि देव देखे जा सकते हैं। यतः ये सब जीव भी संख्यात ही होते हैं, अतः यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३१५. सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—यद्यपि सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें परिमाणका निर्देश पहले आ चुका है। उस हिसाबसे यह पुनरुक्त हो जाता है, पर हमने यहाँ मूलके अनुसार ही रहने दिया है। पहले सम्यग्मिथ्यादृष्टि पदका भी मूलमें निर्देश किया है, पर उसे उसी स्थल पर टिप्पणीमें दिखला दिया है। एक तरहसे यह पूरा प्रकरण त्रुटित और पुनरुक्त है। किसी प्रकार उसे सम्हाला है।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

क्षेत्र

३१६. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? सर्वलोक क्षेत्र है। अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें

---

१. ता०प्रतौ 'एवं परिमाणं समत्तं' इति पाठो नास्ति। २. ता०प्रतौ 'असंखेज्जदिभागो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेंज्ज० । तिण्णिआउ० वेउव्वियछ०[1] आहारदुगं तित्थ० सव्वपदा केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखें० । सेसाणं सव्वाणं पगदीणं सव्वपदा केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि० - ओरालियमि० - कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंजद०-अचक्खुदं०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०- मिच्छा०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति । णवरि ओरालियमि० - कम्मइ०-अणाहारगेसु देवगदिपंचगस्स एगपदं लोगस्स असंखेंज्ज० ।

भागप्रमाण क्षेत्र है । तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सर्वलोक क्षेत्र है । इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके एक पदके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदका बन्ध एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक कहा है । इनमेंसे कुछका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें होता है, स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्यपद गुणस्थान प्रतिपन्न जीवोंके उतरकर सासादन और मिथ्यात्वमें आनेपर होता है, मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद ऊपरके गुणस्थानवालोंका मिथ्यात्वमें आनेपर होता है, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद ऊपरके गुणस्थानवालोंके चौथे गुणस्थानमें आनेपर होता है, प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद संयत जीवके संयतासंयत होनेपर होता है और औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद यथासम्भव असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय आदि जीवोंके होता है । यतः इन सब जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके इस पदवाले जीवोंका क्षेत्र उक्तप्रमाण कहा है । इन प्रकृतियोंमेंसे छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि सम्भव है, पर इनका स्वामित्व भी गुणस्थान प्रतिपन्न जीवोंके होता है और उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । नरकायु और देवायुका असंज्ञी आदि जीव बन्ध करते हैं, मनुष्यायुका बन्ध यद्यपि एकेन्द्रियादि जीव भी करते हैं पर ये असंख्यातसे अधिक नहीं होते, क्योंकि मनुष्योंका परिमाण ही असंख्यात है, वैक्रियिकषट्कका बन्ध असंज्ञी आदि जीव, आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानवाले जीव तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं । यतः इन सब जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र उक्तप्रमाण कहा है । शेष सब प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रियादि जीव भी करते हैं, अतः उनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण कहा है । यहाँ गिनाई गई सामान्य तिर्यञ्च आदि मार्गणाओंमें अपनी-अपनी बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके सम्भव पदोंके अनुसार ओघप्ररूपणा बन जाती है,

१. ता०प्रतौ 'वेउव्विय०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१७. बादरेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ता० धुविगाणं चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वलोगे। तसपगदीणं चत्तारिवड्ढि - हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० लोगस्स संखेंज्जदिभागे[1]। मणुसाउ० ओघं। तिरिक्खाउ० सव्वपदा लोगस्स संखेंज्ज०। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वपदा सव्वलोगे। णवरि तिरिक्ख०३ अवत्त० लोगस्स असंखेंज्ज०। मणुसगदितिगं सव्वपदा लोगस्स असंखें०[2]। एदेण बीजेण याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

एवं खेंत्तं समत्तं[3]।

अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकका एक ही पद होता है और वह भी सम्यग्दृष्टियोंके ही, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है।

३१७. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है। त्रसप्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यञ्चायुके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा मनुष्यगतित्रिकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रिय आदि तीनों प्रकारके जीव मारणान्तिक समुद्घातके समय भी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके सब पद करते हैं, इसलिए इनके सब पदवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक कहा है। परन्तु एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय त्रसप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके सब पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। ओघसे मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण सिद्ध करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी बन जाता है। इसलिए यहाँ ओघके समान जाननेकी सूचना की है। इन बादर एकेन्द्रिय आदि जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चायुके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र उक्तप्रमाण कहा है। इन जीवोंके शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंका बन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके सब पदवालोंका क्षेत्र सर्वलोक कहा है। मात्र तिर्यञ्चगतित्रिकका अवक्तव्यपद बादर वायुकायिक जीव नहीं करते और इन जीवोंको छोड़कर अन्य बादर जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण नहीं है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीव मनुष्यगतित्रिकका बन्ध नहीं करते, इसलिए इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका क्षेत्र भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अनाहारक मार्गणा तक इस बीज पदको समझकर क्षेत्र प्राप्त करना सम्भव है, इसलिए उसे इस कथनको बीज मानकर जाननेकी सूचना की है।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

---

१. ता०आ०प्रत्योः 'लोगस्स असंखेज्जदिभागो' इति पाठः। २. ता०प्रतौ '-तिगं सव्वलोग असंखे०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'एवं खेत्तं समत्तं।' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फोसणं

३१८. फोसणाणुगमेण दुवि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पंचणा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठिदबंधगेहि केवडि खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो। अवत्त० लोगस्स असंखे०। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० अट्ठचों०। मिच्छ० अवत्त० अट्ठ-बारह०। छदंस-अट्ठक०-भय-दु० णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि० अट्ठचों०। सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ-दोगदि-पंचजादि-छस्संठाण-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगोद[1]० सव्वपदा केवडि खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो[2]। णवरि पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग० अणंतभागवड्डि-हाणि० अट्ठचों०। अपच्चक्खाण०४ णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि० केवडि खेत्तं फोसिदं? अट्ठचों०। अवत्त० केव० खेत्तं फोसिदं? छच्चोंद०। दोआउ०-आहारदुगं

स्पर्शन

३१८. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्य-पदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस आदि दस युगल और दो गोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्याना-वरणचतुष्कका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन

१. ता०प्रतौ 'तसादिदस [युगल०] दोगोद' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'केवडि खेत्ते फोसिदं? सव्वलोगे' आ०प्रतौ केवडि खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगे' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वपदा खेत्तभंगो। मणुसाउ० सव्वपदा लोगस्स असंखे० अट्ठचो० सव्वलो०। दोगदि-दोआणु० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० छच्चो०। अवत्त० खेत्तभंगो। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० बारहचो०। अवत्त० खेत्तभंगो। ओरालि० णाणा०भंगो। अवत्त० बारहचो०। तित्थय० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० अट्ठचो०। अवत्त० खेत्तभंगो। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि०-कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग त्ति। एवं एदेण बीजेण भुजगारभंगो कादव्वो याव अणाहारग त्ति। णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणि० सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-ओरालि०-णवुंस०-मणपज्जव० - संजद-खइग० - उवसम० खेत्तभंगो। आभिणि-सुद-ओधि० खेत्तभंगो। तेउए अपच्चक्खाण०४ अवत्त० दिवड्ढचो० पम्माए पंचचो० सुक्काए छच्चोद्दस०। अण्णेसिं तेसिं केसिं च ओघेण साधेदूण णेदव्वं।

एवं फोसणं समत्तं[1]।

किया है। दो आयु और आहारकद्विकके सब पदोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो गति और दो आनुपूर्वीकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्गकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीरका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। मात्र इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंने त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इस प्रकार इस बीजके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक भुजगारके समान भङ्ग करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानवाले, संयत, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें भी क्षेत्रके समान भङ्ग है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने पीत लेश्यामें त्रसनालीके कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका, पद्मलेश्यामें त्रसनालीके कुछ कम पाँच बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका और शुक्ललेश्यामें त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अन्य प्रकृतियोंका उनमें तथा किन्हींमें ओघके अनुसार साध लेना चाहिए।

---

१. ता०प्रतौ 'एवं फोसणं समत्तं।' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ:—पाँच ज्ञानावरणादिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पदका बन्ध सब जीव करते हैं, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके अन्य पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि इनकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका बन्ध एकेन्द्रियादि जीव भी करते हैं, इसलिए उक्त स्पर्शन बन जाता है। पर स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्यपद तृतीयादि ऊपरके गुणस्थानोंसे गिरकर इनके बन्धके प्रथम समयमें होता है। ऐसे जीवोंमें देवोंकी मुख्यता है, क्योंकि इस पदकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान आदिके समय त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन उन्हींके सम्भव है। इस पदवाले अन्य सब जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है जो पूर्वोक्त स्पर्शनमें गर्भित है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद देवोंके विहारवत्स्वस्थानके समय और नीचे कुछ कम पाँच व ऊपर कुछ कम सात राजूप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है, अतः इसके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ और कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। छह दर्शनावरण आदिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पद एकेन्द्रियादि जीवोंके भी सम्भव है और इनका अवक्तव्यपद यथायोग्य उपशमश्रेणिमें व प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका गिरते समय पाँचवेंके प्रथम समयमें होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान बन जानेसे उनके समान कहा है। मात्र इन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी होती है जो देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदवालोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन अलगसे कहा है। सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके सब पद एकेन्द्रिय आदि जीवोंके सम्भव हैं, इसलिए इनके सब पदवाले जीवोंका स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण कहा है। मात्र इनमेंसे पुरुषवेद आदिकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि भी सम्भव है, इसलिए इन पाँच प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन अलगसे कहा है। यह त्रसनालीका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्यों कहा है? इस बातका स्पष्टीकरण छह दर्शनावरण आदिका स्पर्शन कहते समय कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है, यह स्पष्ट ही है। इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन तो त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है, वह भी स्पष्ट है। तथा देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। नरकायु और देवायुका असंज्ञी आदि जीव बन्ध करते हैं। उसमें भी मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका बन्ध नहीं होता। तथा आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण जीव बन्ध करते हैं। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अतीत स्पर्शन देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा सर्वलोकप्रमाण है। अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नरकगतिद्विककी तथा देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय देवगतिद्विककी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थित-पदका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालो

२१९. कालाणुगमेण दुवि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पंचणा०-तेजा०क०-

बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। किन्तु ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नीचे कुछ कम छह राजू और ऊपर कुछ कम छह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते समय वैक्रियिकद्विककी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। परन्तु ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। औदारिकशरीरका बन्ध एकेन्द्रिय आदि जीव भी करते हैं, इसलिए इसका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है। मात्र इसके अवक्तव्यपदके स्पर्शनमें अन्तर है। बात यह है कि देव और नारकी उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें इसका अवक्तव्यबन्ध करते हैं, इसलिए इसके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिके समय भी तीर्थङ्कर प्रकृतिकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपद सम्भव हैं, इसलिए इसके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। इसका अवक्तव्यपद एक तो उपशमश्रेणिमें होता है, दूसरे इसकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद जो मरकर देव होते हैं उनके प्रथम समयमें होता है और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य अन्तमें मिथ्यादृष्टि होकर दूसरे-तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनके सम्यक्त्वपूर्वक पुनः इसका बन्ध प्रारम्भ करनेके प्रथम समयमें होता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ इसका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है, क्योंकि इस पदवाले जीवोंका क्षेत्र इतना ही है। यहाँ सामान्य तिर्यञ्च आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें अपने-अपने बन्धके अनुसार यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। यहाँ इसी प्रकार अनाहारक पर्यन्त भुजगार प्रदेशबन्धके समान जाननेकी सूचना करके कुछ अपवादोंका अलगसे निर्देश किया है। यथा—मूलमें गिनाई गई सब नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। कारण स्पष्ट है, इसलिए इनमें उक्त पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। आभिनिबोधिकज्ञानी आदि तीन मार्गणाओंमें भी इन पदवाले जीवोंका स्पर्शन इसी प्रकार जानना चाहिए। पीतादि लेश्याओंके रहते हुए देवोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यबन्ध सम्भव है, क्योंकि जो पञ्चम आदि गुणस्थानवाले जीव इन लेश्याओंके साथ मरकर देव होते हैं, उनके प्रथम समयमें उक्त प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद ही होता है, इसलिए इन लेश्याओंमें उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदवाले जीवोंका स्पर्शन क्रमसे त्रसनालीके कुछ कम डेढ़, कुछ कम पाँच और कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। इस प्रकार ओघके अनुसार साध कर सर्वत्र स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

काल

२१९. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० चत्तारिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० केवचिरं कालादो होदि ? सव्वद्धा[1]। अवत्त० केवचिरं कालादो० ? जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसमयं। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-ओरालि० णाणा०भंगो। णवरि अवत्त० केवचिरं कालादो० ? जह० एग०, उक्क० आवलियाए असंखें०। छदंस०-अट्ठक०-भय-दु० णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। अपच्चक्खाण०४ णाणा०भंगो। णवरि अणंतभागवड्डि-हाणि-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। पुरिस०-चदुणोक० अणंतभागवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। सेसपदा० केवचिरं० ? सव्वद्धा। तिण्णिआउ० असंखेंज्ज-गुणवड्डि-हाणिबंधगा केवचिरं० ? जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखें०। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। वेउव्वियछ० असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणि० सव्वद्धा[2]। तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। आहारदु० असंखेंज्जगुणवड्डि-हाणि० सव्वद्धा। तिण्णिवड्डि-

ज्ञानावरण, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है। इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और औदारिकशरीरका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अप्रत्याख्याना-वरणचतुष्कका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि इनकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेद और चार नोकषायोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष पदोंके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है। तीन आयुओंकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तीन वृद्धि, तीन हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिक-षट्कको असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा तीन वृद्धि, तीन हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आहारकद्विककी असंख्यातगुण-वृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा इनकी तीन वृद्धि और

१. ता०प्रतौ 'सव्वत्थो (द्धा)०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'सव्वत्थो (द्धा)' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाणि० [जह० एग०, उक्क० आवलि असंखें० ।] अवट्ठि०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसमयं । तित्थ० देवगदिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसमयं। सेसाणं सादादीणं चत्तारिवड्ढि - हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० सव्वद्धा[1] । एवं ओघभंगो कायजोगि - ओरालि०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि० - अब्भवसि०-आहारग त्ति । ओरालियमि० एवं चेव । णवरि देवगदिपंचग० असंखेंज्जगुणवड्ढि० जह० उक्क० अंतो० ।

तीन हानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग देवगतिके समान है । इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, अभव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इसी प्रकार भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके नौ पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि सब जीव भी करते हैं, इसलिए इनके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है । मात्र इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें होता है या ऐसे जीवोंके होता है जो उपशमश्रेणिमें इनके अबन्धक होकर मरकर देव हो जाते हैं और उपशमश्रेणिपर प्रथम समयमें चढ़कर दूसरे समयमें अन्य जीव नहीं चढ़ते । तथा लगातार यदि जीव चढ़ते रहें तो संख्यात समय तक ही चढ़ते हैं । उसके बाद व्यवधान पड़ जाता है । इस हिसाबसे अवक्तव्यपद भी कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक होता है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । स्त्यानगृद्धित्रिक आदिके नौ पद एकेन्द्रियादि यथासम्भव सब जीवोंके सम्भव हैं, अतः इन पदोंके बन्धक जीवोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है । तथा इनका अवक्तव्यपद ऊपरके गुणस्थानोंसे मिथ्यात्व और सासादनमें आनेपर प्रथम समयमें होता है और इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेका कमसे कम एक समय है और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि अन्य जिन गुणस्थानोंसे इन गुणस्थानोंमें जीव आते हैं, उनमेंसे कुछका परिमाण असंख्यात समय है, इसलिए अधिकसे अधिक असंख्यात समय तक इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेके क्रममें कोई बाधा नहीं आती । यही कारण है कि यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । मात्र औदारिकशरीरका अवक्तव्यपद अन्य प्रकारसे प्राप्त कर यह काल घटित कर लेना चाहिए । छह दर्शनावरण आदिके नौ पदोंका बन्ध यथासम्भव एकेन्द्रियादि जीव करते हैं, इसलिए तो इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा बन जानेसे वह ज्ञानावरणके समान कहा है । तथा इनमेंसे प्रत्याख्यानावरण चारको छोड़कर शेषका अवक्तव्यपद ज्ञानावरणके समान ही घटित हो जाता है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका काल भी ज्ञानावरणके समान जाननेकी सूचना की है । अब रहीं प्रत्याख्यानावरण

१. ता०प्रतौ 'सव्वद्धा (द्धा)' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुष्क सो इनका अवक्तव्यपद ऊपरके गुणस्थानवाले जीवोंके संयतासंयत होनेपर प्रथम समयमें होता है और ऐसे जीव संख्यात होकर भी कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक ही अवक्तव्यपद कर सकते हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका काल भी ज्ञानावरणके समान बन जानेसे उसे उनके समान जाननेकी सूचना की है। अब रहीं इन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि सो इनके उक्त पदोंको असंख्यात जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक असंख्यात समय तक कर सकते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके नौ पदोंका बन्ध भी यथायोग्य एकेन्द्रियादि सब जीवोंके सम्भव है, इसलिए इनके इन पदोंके बन्धक जीवोंका काल ज्ञानावरणके समान कहा है। तथा इनकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवक्तव्यपद करनेवाले जीव युगपत् और लगातार असंख्यात होते हैं, इसलिए इनके इन पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पुरुषवेद और चार नोकषायोंको अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके इन पदोंकी अपेक्षा कहे गये कालके समान ही घटित कर लेना चाहिए। तथा ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और यथायोग्य एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी इनका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके शेष पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पहले बतला आये हैं। यहाँ जघन्य काल तो एक समय ही है, क्योंकि नाना जीव एक समयतक इन पदोंको करें और दूसरे समयमें अन्य पदोंको करें, यह सम्भव है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि नाना जीव क्रमसे निरन्तर यदि इन पदोंको करें तो उस सब कालका जोड़ उक्तप्रमाण होता है। परन्तु इनके शेष पदोंका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है, क्योंकि नाना जीव एक समय तक ही इन पदोंको करें और दूसरे समयमें विवक्षित पदके सिवा अन्य पदको करने लगें, यह भी सम्भव है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि यदि अन्तरके बिना नाना जीव इन आयुओंके बन्धका प्रारम्भ कर इन पदोंको करें तो उस कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं होता। तात्पर्य यह है कि असंख्यातगुणवृद्धि आदि दो पदोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मान लीजिए कुछ जीवोंने अन्तर्मुहूर्त कालतक ये दोनों पद किये। उसके बाद व्यवधान न पड़ते हुए अन्य कुछ जीवोंने ये दो पद किये। इस प्रकार निरन्तर क्रमसे इन पदोंके करनेपर वह काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसलिए तो इन पद-वालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा शेष पदोंमें एक जीवकी अपेक्षा अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट काल एक समय है, अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल सात समय है और शेष पदोंका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। यहाँ भी व्यवधानके बिना एकके बाद दूसरे इस क्रमसे यदि इन पदोंको करें तो इस प्रकार व्यवधानके बिना प्राप्त हुए उत्कृष्ट कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, क्योंकि असंख्यात समयोंका जोड़ भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा और असंख्यात आवलियोंके असंख्यातवें भागका जोड़ भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा, इसलिए यहाँ शेष पदवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। नाना जीवोंके वैक्रियिकषट्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२०. कम्मइग०-अणाहारगेसु देवगदिपंचग० असंखेंज्जगुणवड्डि० जह० एग०, उक्क० संखेंज्जसमयं। मिच्छ० अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। धुविगाणं असंखेंज्जगुणवड्डि० सेसाणं परियत्त० असंखेंज्जगु० अवत्त०[1] सव्वद्धा। वेउव्वियमि० सव्वपगदीणं असंखेंज्जगुणवड्डि० जह० अंतो०, परियत्तीणं [जह०]एग०, उक्क० पलिदो० असंखें०। एसिं अवत्त० अत्थि तेसिं जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखें०। तित्थ०

इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है। तथा इनके शेष पदोंका क्रमसे असंख्यात जीव बन्ध कर सकते हैं, इसलिए उनके बन्धकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आहारकद्विकके बन्धक नाना जीव सर्वदा पाये जाते हैं और उनमेंसे किसी-न-किसीके इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानि भी होती रहती है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका काल सर्वदा कहा है। इनकी तीन वृद्धि और तीन हानिको क्रमसे संख्यात जीव भी करें तो भी उस सब कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, इसलिए यहाँ इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट काल एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे संख्यात समय और एक समय है, इसलिए यहाँ इनके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग देवगतिके समान होनेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इसका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इसके इस पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष सातावेदनीय आदि एक तो परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। दूसरे एकेन्द्रियादि जीव इनका बन्ध करते हैं, इसलिए इनके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। यह ओघप्ररूपणा काययोगी आदि कुछ मार्गणाओंमें अविकल बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें यथासम्भव अन्य सब प्ररूपणा ओघके समान बन जाती है, इसलिए उनमें भी ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र इनमें देवगतिपञ्चकका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं और इनकी यहाँ एक असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है, इसलिए इनके उक्त पदवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

३२०. कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और शेष परावर्तमान प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, परावर्तमान प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा जिनका अवक्तव्यपद है उनके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। नरक आदि

१. ता०प्रतौ 'असंखेज्जगु०। अवत्त०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालियमिस्सभंगो। णिरयादीणं एसिं अणंतभागवड्डि-हाणि० अत्थि तेसिं परियत्त-माणेण ओघेणेव णेदव्वं। णवरि एसिं असंखेंज्जरासीणं तेसिं ओघं देवगदिभंगो। एसिं संखेंज्जरासी तेसिं ओघं आहारसरीरभंगो। एसिं अणंतरासी तेसिं ओघं साद०भंगो। णवरि······याउभंगो कादव्वो। एसिं अणंतभागवड्डि-हाणि० अत्थि तेसिं परिमाणेण ओघेण च साधेदव्वं। एवं याव अणाहारग त्ति।

एवं कालं समत्तं[1]।

गतियोंमें जिनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदोंका भङ्ग ओघके अनुसार ही परावर्तमान प्रकृतियोंके समान साध लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंके बन्धकोंकी असंख्यात राशि है, उनमें ओघसे देवगतिके समान भङ्ग है। जिन प्रकृतियोंके बन्धकोंकी संख्यात राशि है, उनमें ओघसे आहारकशरीरके समान भङ्ग है और जिन प्रकृतियोंके बन्धकोंकी अनन्त राशि है, उनमें ओघसे सातावेदनीयके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि...........के समान भङ्ग करना चाहिए। तथा जिनकी अनन्त-भागवृद्धि और अनन्तभागहानि है, उनके इन पदवाले जीवोंका काल परिमाण या परिवर्तमान प्रकृतियोंके समान ओघके अनुसार साध लेना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें अधिकसे अधिक संख्यात जीव देवगतिपञ्चकका बन्ध करनेवाले होते हैं और ये जीव यदि निरन्तर उत्पन्न होते रहें तो संख्यात समय तक ही यह सम्भव है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। मात्र मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव यहाँ असंख्यात सम्भव हैं और वे लगातार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक उत्पन्न होते रहें, यह सम्भव भी है; इसलिए मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका यहाँ जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और परावर्तमान प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव अनन्त होते हैं, अतः यहाँ इनके उक्त पदवाले जीवोंका काल सर्वदा कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है; इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंको असंख्यातगुणवृद्धिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। परावर्तमान प्रकृतियोंको असंख्यातगुणवृद्धि एक समयके लिए हो, यह भी सम्भव है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। मात्र परावर्तमान प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, इसलिए यहाँ इनके उक्त पदवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। नरक आदि गतियोंमें जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि होती है उनका इन पदोंके साथ बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण

१. ता०प्रतौ 'एवं कालं समत्तं।' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं

३२१. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पंचणा० चत्तारि-वड्ढि-हाणि-अवट्ठि०बंधगंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं। अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं। एवं सव्वाणं धुविगाणं। णवरि थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ अवत्त० जह० एग०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। अपचक्खाण०४ जह० एग०, उक्क० चोद्दस रादिंदियाणि। पच्चक्खाण०४ जह० एग०, उक्क० पण्णारस रादिंदियाणि। एसिं पगदीणं अणंतभागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। सादादीणं तिरिक्खाउगस्स य चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० णत्थि अंतरं। एवं सव्वासिं परियत्तमाणियाणं। णिरय-मणुस-देवाऊणं तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० एग०, उक्क० चदुवीसं मुहुत्तं। वेउव्वियछ०-आहारदु० असंखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० णत्थि अंतरं। तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें०। अवत्त०

ओघके अनुसार यहाँ भी बन जाता है, इसलिए इस विषयमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तर

३२१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरणकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना अन्तर है? अन्तर नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार सब ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन-रात है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन-रात है। तथा जिन प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवस्थितपद हैं, उनके इन पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सातावेदनीय आदि और तिर्यञ्चायुकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार परावर्तमान सब प्रकृतियोंका भङ्ग जानना चाहिए। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित-पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है। वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विककी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं[1] चेव तित्थ० । णवरि अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं० । णिरएसु तित्थय० अवत्त० जह०[2] एग०, उक्क० पलिदो० असंखें० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-लोभ०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति । णवरि ओरालियमि० देवगदिपंच० असंखेंजगुणवड्डि० जह० एग०, उक्क० मासपुधत्तं । णवरि तित्थय० वासपुधत्तं । एवं कम्मइ०-अणाहार० ।

उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। नारकियोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, लोभकषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणका एकेन्द्रियादि जीव भी बन्ध करते हैं और वे अनन्त होनेसे उनके इन प्रकृतियोंकी चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपद भी निरन्तर सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तर काल नहीं कहा है। किन्तु इनका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें सम्भव है और उपशमश्रेणिमें इनकी बन्धव्युच्छित्तिके बाद मरकर जो देव होते हैं उनके सम्भव है और उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। जितनी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका यह भङ्ग बन जाता है, इसलिए उनके सब पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र जिन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति उपशमश्रेणिमें होती है उनके लिए ही यह अन्तर कथन पूरी तरहसे लागू होता है। जिन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति उपशमश्रेणिसे पूर्व अन्य गुणस्थानोंमें होती है, उनका अन्य भङ्ग तो पाँच ज्ञानावरणके समान बन जाता है पर अवक्तव्यपदके अन्तरमें फरक है, इसलिए उसका अलगसे उल्लेख किया है। सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व या सासादनको अधिकसे अधिक सात दिन-रात तक नहीं प्राप्त हों यह सम्भव है, इसलिए यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात कहा है। देशविरत जीव अधिकसे अधिक चौदह दिन-रात तक अविरत अवस्थाको नहीं प्राप्त होते, इसलिए अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन-रात कहा है। तथा संयत जीव अधिकसे अधिक पन्द्रह दिन-रात तक संयतासंयत आदि नहीं होते, इसलिए प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन-रात कहा है। इन सबका जघन्य अन्तर एक समय है, यह स्पष्ट ही है। सातावेदनीय आदि और

१. ता०प्रतौ 'एवं तित्थ०' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'तित्थय० जह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२२. अवगदवे० सव्वपगदीणं असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क०

तिर्यञ्चायुका एकेन्द्रिय आदि यथासम्भव सब जीव बन्ध करते हैं और वहाँ उनके सब पद निरन्तर सम्भव हैं, इसलिए इनके सब पदवाले जीवोंके अन्तरकालका निषेध किया है। परावर्तमान सब प्रकृतियोंके विषयमें यही बात जाननी चाहिए। नरकायु आदि तीन आयुओंका अधिकसे अधिक असंख्यात जीव ही बन्ध करते हैं, इसलिए इनका निरन्तर बन्ध तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि एक तो आयुबन्धका कुल काल अन्तर्मुहूर्त है और वह भी त्रिभागमें बन्ध होता है, इसलिए इनकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जानेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। परन्तु इन तीनों आयुओंके बन्धमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए इनके शेष पदवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यद्यपि वैक्रियिकषट्कका बन्ध करनेवाले असंख्यात और आहारकद्विकका बन्ध करनेवाले संख्यात जीव हैं, फिर भी इनका किसी-न-किसीके नियमसे बन्ध होता रहता है, इसलिए इनकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानि सर्वदा होती रहनेसे इनके अन्तरकालका निषेध किया है। पर तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदके विषयमें यह बात नहीं है। ये कमसे कम एक समय तक न हों, यह भी सम्भव है और अधिकसे अधिक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक न हों, यह भी सम्भव है, इसलिए इन पदवाले जीवोंका उक्तप्रमाण अन्तरकाल कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे होता है, इसलिए इनके इस पदवाले जीवोंका उक्त कालप्रमाण अन्तर कहा है। तीर्थङ्करप्रकृतिके सब पदवाले जीवोंका यह अन्तरकाल इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए इसे वैक्रियिकषट्कके समान जाननेकी सूचना की है। पर इसके अवक्तव्यपदके अन्तर कालमें फरक है, इसलिए उसका अलगसे निर्देश किया है। मात्र दूसरे और तीसरे नरकमें तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्य कमसे कम एक समयके अन्तरसे उत्पन्न हों, यह भी सम्भव है और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके अन्तरसे उत्पन्न हों, यह भी सम्भव है, इसलिए नारकियोंमें इसके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ मूलमें काययोगी आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगमें देवगतिपञ्चककी असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है। तथा कोई भी सम्यग्दृष्टि इस योगवाला न हो तो कमसे कम एक समय तक नहीं होता और अधिकसे अधिक मासपृथक्त्व काल तक नहीं होता, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण कहा है। इस योगमें तीर्थङ्करप्रकृतिकी भी एक असंख्यातगुणवृद्धि ही होती है। साथ ही यह नियम है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला यदि मनुष्योंमें जन्म न ले तो कमसे कम एक समय तक नहीं लेता और अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं लेता, इसलिए यहाँ इस प्रकृतिके उक्त पदवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगमें कही गई अन्तरप्ररूपणा बन जाती है, इसलिए इनमें औदारिकमिश्रकाययोगके समान जाननेकी सूचना की है।

३२२. अपगतवेदवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। तीन वृद्धि, तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छम्मासं० । तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सेढीए असंखें० । अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं० । एवं सुहुमसं० । णवरि अवत्त० णत्थि ।

३२३. वेउव्वियमि० मिच्छ० अवत्त० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखें० । एवं ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहार० । वेउव्वियमि०[1] सव्वपगदीणं एगवड्ढि-अवत्त० जह० एग०, उक्क० बारसमुहुत्तं० । णवरि एइंदियतिगस्स चउव्वीसं मुहुत्तं । एवं सेसाणं णिरयादीणं ओघेण आदेसेण य साधेदव्वं । एसिं संखेंज्जरासी असंखेंज्जरासी तेसिं अंतरं ओघं देवगदिभंगो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

एवं अंतरं समत्तं[2] ।

हानि और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसमें अवक्तव्यपद नहीं है ।

विशेषार्थ—छह और सात कर्मोंका बन्ध करनेवाले अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसलिए यहाँ सब प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है । पर क्षपकश्रेणिमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता और उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए यहाँ इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है । यहाँ इन प्रकृतियोंके शेष पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है । सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंकी स्थिति अपगतवेदी जीवोंके समान ही है, इसलिए उनमें इनके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए उसका निषेध किया है ।

३२३. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी एक वृद्धि और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजातित्रिकका उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है । इसी प्रकार शेष नरकादि गतियोंमें ओघ और आदेशके अनुसार अन्तरकाल साध लेना चाहिए । जिनकी संख्यात और असंख्यात राशि है उनका अन्तर ओघसे देवगतिके समान है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है, इसलिए यहाँ सब प्रकृतियोंकी जिनकी केवल वृद्धि सम्भव है, उनकी वृद्धिकी अपेक्षा और जिनकी वृद्धि और अवक्तव्यपद दोनों सम्भव हैं, उनके दोनों पदोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा है । मात्र यहाँ एकेन्द्रियजातित्रिकका

१. ता०प्रतौ 'अणाहार० वेउव्वियमि०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'एवं अंतरं समत्तं ।' इति पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावो

३२४. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइगो भावो। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

अप्पाबहुअं

३२५. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पंचणा० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठिदबं०[1] अणंतगु०। संखेंज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेंज्जगुणा। संखेंज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेंज्जगुणा। असंखेंज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेंज्जगुणा। असंखेंज्जगुणहाणि० असंखेंज्जगुणा। असंखेंज्जगुणवड्ढि० विसे०। एवं थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत०। एस भंगो छदंस०-बारसक०-भय-दु०। णवरि सव्वत्थोवा अवत्त०। अणंतभागवड्ढि-

बन्ध करनेवाले अधिकसे अधिक चौबीस मुहूर्तके अन्तरसे हो सकते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके उक्त पदकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त कहा है। तथा सासादन गुणस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान अन्तर बन जाता है, इसलिए इन तीन मार्गणाओंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान अन्तरकाल कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

भाव

३२४. भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्व

३२५. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी अपेक्षा जानना चाहिए। तथा छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अपेक्षा यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे

१. ता०आ०प्रतौ 'सव्वत्थोवा। अवत्त० अवट्ठिदबं०' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'असंखेजगुणवड्ढि-हाणि०' इति पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाणि० दो वि तुल्ला असंखेँज्जगुणा। अवट्ठि० अणंतगुणा। उवरि णाणा०भंगो। सादादीणं सव्वत्थोवा अवट्ठि०। असंखेँज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेँज्जगुणा। संखेँज्ज-भागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेँज्जगुणा। संखेँज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेँज्जगुणा। [अवत्त० असंखेज्जगुणा।] असंखेँज्जगुणहाणिबं० असंखेँज्जगु०। असंखेँज्ज-गुणवड्ढि० विसे०। इत्थि-णवुंस०-चदुआउ०-चदुगदि-पंचजादि-वेउव्वि०-छस्संठा०-दोअंगो०-छस्संघ०-चदुआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगोद० साद०भंगो कादव्वो। पुरिस०-चदुणोक० सव्वत्थोवा अणंतभागवड्ढि०-हाणि०। अवट्ठि० अणंतगु०। उवरि साद०भंगो। आहारदुगं सव्वत्थोवा अवट्ठि०। असंखेँज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला संखेँज्जगु०[१]। संखेँज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि संखेँज्जगुणा। संखेँज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला संखेँज्जगुणा। अवत्त० संखेँज्जगुणा। असंखेँज्जगुणहाणि० संखेँज्जगुणा। असंखेँज्जगुणवड्ढी विसे०। तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असंखेँज्जगुणा। असंखेँज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेँज्जगुणा। संखेँज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेँज्जगुणा। संखेँज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि

हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इससे आगेका अल्पबहुत्व ज्ञानावरणके समान है। सातावेदनीय आदिके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। स्त्रीवेद, नपुंसक-वेद, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, चार आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहना चाहिए। पुरुषवेद और चार नोकषायों-की अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थित-पदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। आगे सातावेदनीयके समान भङ्ग है। आहारकद्विकके अव-स्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-हानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यात-गुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुण-वृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धि और असं-ख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यात-

१. ता०प्रतौ 'असंखेज्जभाग (गुण) वड्ढिहाणि०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'तुल्ला असंखेज्जगु०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुल्ला असंखेंज्जगुणा। असंखेंज्जगुणहाणि० असंखेंज्जगुणा। असंखेंज्जगुणवड्ढि० विसे०। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

३२६. णेरइएसु पंचणाणावरणादिधुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि०। संखेंज्जभाग-वड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेंज्जगुणा। उवरि ओघं। एसिं धुविगाणं अणंत-भागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं ताओ थोवाओ। अवट्ठि० असं०गु०। उवरि णाणा०-भंगो। सेसं ओघं। एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-मणुस०अपज्ज०-[सव्वदेव-] सव्वएइंदि०-विगलिंदि०-पंचकायाणं च। तिरिक्खेसु ओघभंगो। णवरि धुविगाणं एसिं अणंतभागवड्ढि-[हाणि०] अत्थि तेसिं ताओ थोवाओ। अवट्ठि० अणंतगु०। उवरि ओघो। मणुसेसु ओघो। णवरि दोआउ० वेउव्वियछक्कं आहारदुगं आहारसरीर-भंगो। सेसाणं ओघं। णवरि किंचि विसेसो। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तं चेव। णवरि संखेंज्जं कादव्वं।

३२७. पंचिंदि०-तस०२ ओघं। णवरि यम्हि अवट्ठि० अणंतगु० तम्हि असंखेंज्जगुणं कादव्वं। पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-देवगदि-ओरालिय०-वेउव्विय०-तेजा०-क० - वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-

---

गुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

३२६. नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरणादि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। आगे ओघके समान भङ्ग है। जिन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि होती है, उनके इन पदोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आगे ज्ञानावरणके समान भङ्ग है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। इस प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें जानना चाहिए। तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जिन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है उनके इन पदोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। आगे ओघके समान भङ्ग है। मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें दो आयु, वैक्रियिकषट्क और आहारकद्विकका भङ्ग आहारक-शरीरके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मात्र कुछ विशेषता है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें वही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा कहना चाहिए।

३२७. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे कहे हैं वहाँ असंख्यातगुणे कहने चाहिए। पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानु-बन्धीचतुष्क, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक-शरीरआङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेंज्जगुणा । सेसाणं पदाणं ओघं तित्थयरभंगो । सेसपगदीणं ओघभंगो । वचिजो०-असच्चमोसवचि०-चक्खुदं० पंचिंदियभंगो । ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंतभागवड्ढि-हाणि० णत्थि ।

३२८. वेउव्वियका० देवोघं । वेउव्वियमिस्सका० सव्वत्थोवा अवत्त० । असंखेंज्ज-गुणवड्ढिबं० असंखेंज्जगुण० । एवं कम्मइ०-अणाहार० । णवरि मिच्छ० सव्वत्थोवा अवत्त० । असंखेंज्जगुणवड्ढिबं० अणंतगु० । आहारकायजोगी० । सव्वट्ठभंगो० । आहार-मिस्स० वेउव्वियमिस्स०भंगो ।

३२९. इत्थिवेद० पंचणा०- पंचंत० । सव्वत्थोवा[1] अवट्ठि० । उवरि ओघं । थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ - ओरालि० - तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेंज्जगुणा । उवरि ओघं । णिद्दा-पयला०-अट्ठक०-भय-दु० सव्वत्थोवा अवत्त० । अणंतभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेंज्जगुणा । अवट्ठिद० असंखेंज्जगु० । उवरि ओघं । णवरि चदुसंज० सव्वत्थोवा अणंतभागवड्ढि-

और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष पदोंका भङ्ग ओघसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। वचनयोगी, असत्यमृषावचनयोगी और चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि नहीं है।

३२८. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाय-योगी जीवोंमें अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे असंख्यात-गुणवृद्धिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। आहारककाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान भङ्ग है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

३२९. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। आगे ओघके समान भङ्ग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधीचतुष्क, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आगे ओघके समान भङ्ग है। निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, भय और जुगुप्साके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आगे ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि चार संज्वलनकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्त-

१. ता०प्रतौ 'इत्थिवेदभंगो पंचणा० पंचंत० । सव्वत्थोवा' आ०प्रतौ इत्थिवेदभंगो पंचणा० पंचंत सव्वत्थोवा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाणि० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । उवरि ओघं । पुरिस० इत्थि०भंगो । णवुंसग० धुविगाणं[1] इत्थि०भंगो । णवरि अवट्ठि० अणंतगु० ।

३३०. कोधकसा० णवुंसगभंगो। माणे० पंचणा०-चदुदंसणा०-तिण्णिसंज०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवट्ठि० । उवरि ओघं । मायाए पंचणा०-चदुदंसणा०-दोसंज०-पंचंत० सव्वत्थोवाअवट्ठि० । उवरि ओघं । लोभकसाए ओघं ।

३३१. मदि-सुद० धुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । उवरि ओघं । सेसाणं वि ओघो । विभंगे धुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । उवरि ओघं । असंखेंज्जगुणं कादव्वं । देवगदि-ओरालि०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा० - बादर-पज्जत्त-पत्ते० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असं०गु० । एवं [अ] संखेंज्जगुणं कादव्वं । सेसाणं ओघं ।

३३२. आभिणि-सुद-ओधि० पंचणा०- [छदंस०-] अपच्चक्खाण०४ - पुरिस०- भय-दु०-दोगदि-पंचिंदि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु० - दोअंगो०-वज्जरि०- वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदें०-णिमि०- तित्थ०-उच्चा०-

---

भागहानिके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । पुरुषवेदी जीवोंमें स्त्रीवेदी जीवोंके समान भङ्ग है । नपुंसकवेदी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

३३०. क्रोधकषायवाले जीवोंमें नपुंसकवेदवाले जीवोंके समान भङ्ग है । मानकषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । मायाकषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । लोभकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

३३१. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी ओघके समान है । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । मात्र असंख्यातगुणा करना चाहिए । देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे असंख्यातगुणा करना चाहिए । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है ।

३३२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क,

---

१. ता०प्रतौ 'णपुंसक धुवि (?) धुविगाणं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । उवरि ओघं । णवरि चदुदंस० सव्वत्थोवा अणंतभागवड्ढि-हाणि० । अवत्त० संखेंज्जगु० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । उवरि ओघं । पच्चक्खाणाव०४ सव्वत्थोवा अवत्त० । अणंतभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असंखेंज्जगु० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । उवरि ओघं । [एवं चदुसंज०] । दोवेदणी०-थिरादितिण्णियुग०-आहारदुगं ओघं । चदुणोक० साद० भंगो । एवमाउगं । णवरि मणुसाउ० मणुसि०भंगो । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग० । मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार० ओधि०भंगो । णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं । सुहुमसंप० अवगद०भंगो । संजदासंजद० परिहार०भंगो ।

३३३. असंजदेसु[2] धुविगाणं मदि०भंगो । एसिं धुविगाणं अणंतभागवड्ढि-हाणि० अत्थि तेसिं ताओ थोवाओ । अवट्ठि० अणंतगुणा । उवरि ओघं । सेसाणं पगदीणं ओघं । एवं किण्ण-णील-काऊणं । तेऊए धुविगाणं सव्वत्थोवा अवट्ठि० । उवरि ओघं । देवगदिपंचग-ओरालि० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु०[3] । उवरि ओघं ।

सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । प्रत्याख्यानावरण-चतुष्कके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभाग-हानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । इसी प्रकार चार संज्वलनके विषयमें जानना चाहिए । दो वेदनीय, स्थिर आदि तीन युगल और आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है । चार नोकषायोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है । इसी प्रकार आयुके विषयमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए । सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है । संयतासंयत जीवोंमें परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान भङ्ग है ।

३३३. असंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है । जिन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानि है,उनके इन पदोंके बन्धक जीव स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यामें जानना चाहिए । पीतलेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । देवगतिपञ्चक और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके

१. ता०प्रतौ 'ओधिदं' । सम्मादि० खइग० वेदग० मणपज्ज' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'असंखेज्ज (असंज) देसु' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ 'अवत्त० । असंखेज्जगु०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पम्माए वि । णवरि देवगदिपंचग० - ओरा०-ओरा०अंगो०-समचदु०-उच्चा० थीणगिद्धिभंगो । सुक्काए तेउ०भंगो ।

३३४. उवसम० धुविगाणं सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । उवरि ओघं । चदुदंस० सव्वत्थोवा अणंतभागवड्ढि-हाणि० । अवत्त० संखेंज्जगु० । अवट्ठि० असंखेंज्जगु० । सेसाणं ओघं । सासण०-सम्मामि० मदि०भंगो । एवं मिच्छादिट्ठि०-असण्णि० । सण्णि० पंचिंदियभंगो । आहारा० ओघं ।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं

एवं वड्ढिबंधे त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

अज्झवसाणसमुदाहारपरूवणा परिमाणाणुगमो

३३५. अज्झवसाणसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा—परिमाणाणुगमो[1] अप्पाबहुगे त्ति । परिमाणाणुगमेण दुवि०[2]— ओघेण आदेसेण य । आभिणिबोधियणाणावरणीयस्स असंखेंज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि[3] । जोगट्ठाणेहिंतो संखेंज्ज०भागुत्तराणि[4] । कधं संखेंज्जदिभागुत्तराणि ? अट्ठविधबंधगेण

बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चहिए । इतनी विशेषता है कि देवगति-पञ्चक, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान और उच्चगोत्रका भङ्ग स्त्यानगृद्धिके समान है । शुक्ललेश्यामें पीतलेश्याके समान भङ्ग है ।

३३४. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । आगे ओघके समान भङ्ग है । चार दर्शनावरणकी अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । शेषका भङ्ग ओघके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय जीवोंके समान भङ्ग है । आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार वृद्धिबन्ध अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

अध्यवसानसमुदाहारप्ररूपणा परिमाणानुगम

३३५. अध्यवसानसमुदाहारका प्रकरण है । उसमें ये दो अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं । यथा—परिमाणानुगम और अल्पबहुत्व । परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणके असंख्यात प्रदेशबन्धस्थान हैं । ये योगस्थानोंसे संख्यातवें भाग अधिक हैं । संख्यातवें भाग अधिक कैसे हैं ? आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले

१. ता०प्रतौ 'परिमा [णा] णुगमो' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'परिमाणाणुगमं दुवि०' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ 'पदेसबंध [ट्ठा] णाणि' इति पाठः । ४. ता.आ.प्रत्योः 'असंखेज्जभागुत्तराणि' इति पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताव सव्वाणि जोगट्ठाणाणि लद्धाणि। तदो सत्तविधबंधगस्स उक्कस्सगादो अट्ठविध-बंधगस्स[1] उक्कस्सगं सुद्धं। सुद्धिसेसो यावदियो भागो अधिट्ठित्तो जोगट्ठाणं तदो सत्तविधबंधगेण विसेसो लद्धो। एवं सत्तविधबंधगादो छव्विधबंधगं उवणीदा। एदेण[2] कारणेण आभिणिबोधियणाणावरणीयस्स असंखेंज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि जोगट्ठाणेहिंतो संखेंज्जभागुत्तराणि। एवं सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-केवलणा०-पंचंतराइयाणं च एसेव भंगो। थीणगि०३ असंखेंज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि जोगट्ठाणेहिंतो विसेसाधियाणि। विसेसो पुण संखेंज्जदिभागो। णिद्दा-पयलाणं असंखेंज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि। जोगट्ठाणेहिंतो दुगुणाणि संखेंज्जदिभागुत्तराणि। चदुदंस० असंखेंज्जाणि पदेस-बंधट्ठाणाणि जोगट्ठाणेहिंतो तिगुणाणि संखेंज्जदिभागुत्तराणि। कधं तिगुणाणि[3] संखेंज्जदि-भागुत्तराणि? असण्णिघोलमाणगं जहण्णयं जोगट्ठाणं आदिं कादूण सव्वाणि जोगट्ठाणाणि अट्ठविधबंधगेण लद्धाणि। तदो सत्तविधबंधगेण विसेसो लद्धो। एत्तियाणि[4] चेव पदेसबंधट्ठाणाणि सम्मादिट्ठिणा वि लद्धाणि। पुणो वि णिद्दा-पयलाणं बंधगदो च्छेदो एत्तियाणि[5] चेव पदेसबंधट्ठाणाणि लद्धाणि। एदेण कारणेण चदुदंसणावरणीय-स्स असंखेंज्जाणि पदेसबंधट्ठाणाणि जोगट्ठाणेहिंतो तिगुणाणि संखेंज्जदिभागुत्तराणि। सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस० चदुण्णं आउ० सव्वासिं णामपगदीणं

जीवने सब योगस्थान प्राप्त किये हैं। उनसे सात प्रकारके बन्धक जीवके उत्कृष्टमेंसे आठ प्रकारके बन्धक जीवका उत्कृष्ट घटा दें। घटानेपर योगस्थानका जितना भाग शेष रहे, उसकी अपेक्षा सात प्रकारके बन्धक जीवने विशेष प्राप्त किया है। इसी प्रकार सात प्रकारके बन्धक जीवसे छह प्रकारके बन्धक जीवने विशेष अधिक प्राप्त किया है। इस कारणसे आभिनिबोधिकज्ञानावरणके असंख्यात प्रदेशबन्धस्थान हैं जो योगस्थानोंसे संख्यातवें भाग अधिक हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञाना-वरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण और पाँच अन्तरायोंके विषयमें यही भङ्ग जानना चाहिए। स्त्यानगृद्धित्रिकके असंख्यात प्रदेशबन्धस्थान हैं जो योगस्थानोंसे विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण संख्यातवें भागप्रमाण है। निद्रा और प्रचलाके असंख्यात प्रदेश-बन्धस्थान हैं जो योगस्थानोंसे संख्यातवाँ भाग अधिक दूने हैं। चार दर्शनावरणोंके असंख्यात प्रदेशबन्धस्थान हैं जो योगस्थानोंसे संख्यातवाँ भाग अधिक तिगुणे हैं। संख्यातवाँ भाग अधिक तिगुणे कैसे हैं? असंज्ञीके घोलमान जघन्य योगस्थानसे लेकर सब योगस्थान आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीवने प्राप्त किये हैं। उनसे सात प्रकारके कर्मोंके बन्धक जीवने विशेष प्राप्त किये हैं। तथा इतने ही प्रदेशबन्धस्थान सम्यग्दृष्टि जीवने प्राप्त किये हैं। तथा फिर भी निद्रा और प्रचलाका बन्धसे छेद होनेके बाद इतने ही प्रदेशबन्धस्थान प्राप्त किये हैं। इस कारणसे चार दर्शनावरणके असंख्यात प्रदेशबन्धस्थान हैं जो योगस्थानोंसे संख्यातवाँ भाग अधिक तिगुणे हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और उच्चगोत्र इनका स्त्यानगृद्धि-

१. आ०प्रतौ 'अवट्ठिदबंधगस्स' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'उवणिए० एदेण' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'कथं (धं) तिगुणाणि' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'यत्तियाणि' इति पाठः। ५. ता०प्रतौ 'बंधदोच्छेदो यत्तियाणि' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णीचुच्चागोदस्स य यथा थीणगिद्धितियस्स भंगो कादव्वो। अपच्चक्खाण०चदुक्कस्स दुवे परिवाडीओ। पच्चक्खाण०४ तिण्णि परिवाडीओ। कोधसंजलणाए चत्तारि परिवाडीओ। अण्णा च अट्ठ परिवाडीओ[1]। माणसंजलणाए चत्तारि परिवाडीओ अण्णा च तिभागूणिया[2] परिवाडी। मायसंजलणाए चत्तारि परिवाडीओ अण्णा च चदुभागूणिया परिवाडी। लोभसंजलणाए चत्तारि परिवाडीओ अण्णा च अट्ठम-भागूणिया परिवाडी। पुरिसवेदस्स दुवे परिवाडीओ अण्णा च तदिया पंचभागूणिया परिवाडीओ। छण्णोकसायाणं दुवे परिवाडीओ। परिवाडी णाम सण्णा का ? याणि[3] मिच्छादिट्ठिस्स पदेसबंधट्ठाणाणि एसा परिवाडी सण्णा णाम।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो[4]।

अप्पाबहुगं

३३६. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणाणावरणीयाणं सव्वत्थोवाणि जोगट्ठाणाणि। पदेसबंधट्ठाणाणि विसेसाधियाणि। सव्वत्थोवाणि णवण्हं[5] दंसणावरणीयाणं जोगट्ठाणाणि। थीणगिद्धितियस्स पदेसबंधट्ठाणाणि विसेसा०। णिद्दा-पयलाणं पदेसबंधट्ठाणाणि विसेसा०। चदुण्हं दंसणावर० पदेसबंधट्ठाणाणि विसेसाधि०। सव्वत्थोवाणि सादासादाणं दोण्हं पगदीणं जोगट्ठाणाणि। असादस्स

त्रिकके समान भङ्ग कहना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें दो परिपाटियाँ हैं। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें तीन परिपाटियाँ हैं। क्रोधसंज्वलनके विषयमें चार परिपाटियाँ हैं और आठ अन्य परिपाटियाँ हैं। मान संज्वलनकी चार परिपाटियाँ हैं और त्रिभाग कम एक अन्य परिपाटी है। मायासंज्वलनकी चार परिपाटियाँ हैं और चतुर्थ भाग कम एक अन्य परिपाटी है। लोभसंज्वलनकी चार परिपाटियाँ हैं और अष्टम भाग कम एक अन्य परिपाटी है। पुरुषवेदकी दो परिपाटियाँ हैं और तृतीय भाग कम एक तीसरी परिपाटी है तथा छह नोकषायोंकी दो परिपाटियाँ हैं।

शंका—परिपाटी इस संज्ञाका क्या अर्थ है ?

समाधान—मिथ्यादृष्टिके जो प्रदेशबन्धस्थान होते हैं उतनेकी परिपाटी संज्ञा है।

अल्पबहुत्व

३३६. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरणके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। नौ दर्शनावरणोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे स्त्यानगृद्धित्रिकके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे निद्रा और प्रचलाके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे चार दर्शनावरणके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। सातावेदनीय और असातावेदनीय इन दोनों प्रकृतियोंके योगस्थान सबसे

---

१. ता०प्रतौ 'अण्णा व (च) अट्ठपरिवाडीए' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'तिभागू (ऊ) णिया' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'सण्णा कायाणि' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'एवं परिमाणाणुगमो समत्तो' इति पाठो नास्ति। ५. ता०प्रतौ 'सव्वत्थोवाणं (णि) णवण्हं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदेसबंधट्ठाणाणि विसेसाधियाणि । सादस्स पदेसबंध० विसे० । सव्वत्थोवाणि मिच्छ०-सोलसक० जोगट्ठाणाणि । मिच्छ०-अणंताणु०४ पदेसबंध० विसे० । अपच्चक्खाण०४ पदेसबंध० विसे० । पच्चक्खाण०४ पदेसबंध० विसे० । कोधसंज० पदेसबंध० विसे० । माणसंज० पदेसबंध० विसे० । मायसंज० पदेसबंध० विसेसा० । लोभसंज० पदेसबंध० विसेसा० । सव्वत्थोवाणि णवणोकसायाणं जोगट्ठाणाणि । इत्थि०-णवुंस० पदेसबंध० विसेसा० । छण्णोक० पदेसबंध० विसेसा० । पुरिस० पदेसबंध० विसेसा० । चदुण्हमाउगाणं सव्वासिं णामपगदीणं पंचण्हमंतराइगाणं च णाणावरणभंगो । णीचुच्चागोदाणं सादासाद०भंगो । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदि०-तस२-पंचमण०[1]-पंचवचिजो०-कायजोगि-ओरालिय०-इत्थि०- पुरिस०-णवुंस० - अवगद० - कोधादि०४-आभिणि०- सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामा० - छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति ।

३३७. णिरयगदीए पंचणा० सव्वत्थोवाणि जोगट्ठाणाणि। पदेसबंध० विसे०[2] । एवं दोवेदणी०-दोआउ० सव्वाणं णामपगदीणं दोगोद[3]० पंचंतराइगाणं च। सव्वत्थोवाणि

स्तोक हैं। उनसे असातावेदनीयके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे सातावेदनीयके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे क्रोधसंज्वलनके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे मान संज्वलनके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे माया संज्वलनके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे लोभसंज्वलनके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। नौ नोकषायोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे छह नोकषायोंके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे पुरुषवेदके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। चार आयु, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ और पाँच अन्तरायका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। नीचगोत्र और उच्चगोत्रका भङ्ग सातावेदनीय और असातावेदनीयके समान है। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, नपुंसकवेदवाले, अपगतवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

३३७. नरकगतिमें पाँच ज्ञानावरणके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। तथा योगस्थानोंसे प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार दो वेदनीय, दो आयु, नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके विषयमें जानना चाहिए। नौ दर्शनावरणके योगस्थान

१. आ०प्रतौ 'तस० पंचमण०' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'सव्वत्थो०' । जोगट्ठाणादो० पदे० विसे० साधियाणि ।' इति पाठः । ३. ता०प्रतौ 'दोगदि०' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवण्हं दंसणा० जोगट्ठाणाणि । थीणगिद्धि०३ पदेसबंध० विसे० । छदंस० पदेसबंध० विसे० । सव्वत्थोवाणि मिच्छ०सोलसकसायाणं जोगट्ठाणाणि । मिच्छ०-अणंताणु०४ पदेसबंध० विसे० । बारसक० पदेसबंध० विसे० । सव्वत्थोवाणि णवण्हं णोकसा० जोगट्ठाणाणि । इत्थि०-णवुंस० पदेसबंध० विसे० । सत्तणोक० पदेसबंध० विसे० । एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख०३ देवा याव उवरिमगेवज्जा त्ति वेउव्वि०-असंजद०-पंचले०-वेदग० । णवरि एदेसु किंचि विसेसो । तिरिक्खेसु सव्वत्थोवाणि मिच्छ०-सोलसक० जोगट्ठाणाणि । मिच्छ०-अणंताणु०४ पदेसबंध० विसे० । अपच्चक्खाण०४ पदेसबंध० विसे० । अट्ठक० पदेसबंध० विसे० । एवं तेउ-पम्माणं । णवरि अपच्चक्खाण०४ पदेसबंध० विसे० । पच्चक्खाण०४ पदेसबंध० विसे० । चदुसंज० पदेसबंध० विसे० । एवं वेदग० ।

३३८. सव्वअपज्जत्ताणं[1] तसाणं थावराणं च सव्वएइंदिय-विगलिं०-पंचकायाणं च सव्वपगदीणं च सव्वत्थोवाणि जोगट्ठाणाणि । पदेसबंध० विसे० । एवं ओरालियमि०-मदि-सुद-विभंगे० अब्भव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति । णवरि ओरालियमिस्स० देवगदि-

सबसे स्तोक हैं। उनसे स्त्यानगृद्धित्रिकके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे छह दर्शनावरणके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे बारह कषायोंके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। नौ नोकषायोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे सात नोकषायोंके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव, उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, असंयत, पाँच लेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें सामान्य नारकियोंसे कुछ विशेष है। यथा—सामान्य तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे आठ कषायोंके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार पीत और पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे चार संज्वलनोंके प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए।

३३८. त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तक, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके योगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे प्रदेशबन्धस्थान विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चकका अल्पबहुत्व नहीं है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना

१. ता०प्रतौ 'एवं वेदग० सव्वअपज्जत्तगाणं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचग० णत्थि अप्पाबहुगं। एवं वेउव्वियमि०।[1] कम्मइ०-अणाहार० सव्वपगदीणं णत्थि अप्पाबहुगं। अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति अपज्जत्तभंगो। एवं आहार०-आहारमि०-परिहार०-संजदासंजद०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठीणं णत्थि[2] अप्पाबहुगं।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं अज्झवसाणसमुदाहारे त्ति समत्तमणियोगद्दारं।

जीवसमुदाहारपरूवणा

३३९. जीवसमुदाहारे त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि। तं जहा—पमाणाणुगमो अप्पाबहुगे त्ति।

पमाणाणुगमो जोगट्ठाणपरूवणा

३४०. पमाणाणुगमो त्ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—जोगट्ठाणपरूवणा पदेसबंधट्ठाणपरूवणा चेदि[3]। जोगट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवो[4] सुहुमअपज्जत्तयस्स जहण्णगो जोगो[5]। बादरअपज्जत्तयस्स जहण्णगो जोगो असंखेंज्जगुणो[6]। एवं बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णिपंचिंदि०अपज्ज० जह०[7] जोगो असंखेंज्जगुणो।

चाहिए। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार अध्यवसानसमुदाहार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

जीवसमुदाहार प्ररूपणा

३३९. जीवसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार हैं। यथा—परिमाणानुगम और अल्पबहुत्व।

परिमाणानुगम योगस्थानप्ररूपणा

३४०. परिमाणानुगममें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—योगस्थानप्ररूपणा और प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा। योगस्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्त जीवका जघन्य योग सबसे स्तोक है। उससे बादर अपर्याप्तका जघन्य योग असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवका जघन्य योग उत्तरोत्तर

---

१. ता०प्रतौ 'वेउव्वियमि० कम्मइ०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'सम्मादिट्ठि णत्थि' आ०प्रतौ 'सम्मादिट्ठीणं णत्थि' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'चेदि' इति पाठो नास्ति। ४. ता०प्रतौ 'सव्वत्थोवा (वो)' आ०प्रतौ 'सव्वत्थोवा' इति पाठः। ५. ता०प्रतौ 'जहण्णयं जोगो' इति पाठः। ६. ता०प्रतौ 'असंखेज्जगुणं' इति पाठः। ७. ता०प्रतौ 'अपज्ज०। जह०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमस्स पज्जत्तयस्स जह० जोगो असंखेंज्जगुणो[1]। बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जह० जोगो असंखेंज्जगुणो[2]। सुहुम० अपज्जत्तयस्स उक्कस्सगो जोगो असंखेंज्जगुणो। बादर० अपज्ज० उक्क० जोगो असंखेंज्जगु०। सुहुम० पज्जत्त० उक्क० जोगो असंखेंज्जगु०। बादर० पज्जत्त० उक्क० जोगो असंखेंज्जगु०। बेइंदि०पज्जत्त० जह० जोगो असंखेंज्जगु०। एवं तेइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णिपंचिंदि०-सण्णिपंचिंदि०पज्जत्त० जह० जोगो असंखेंज्जगुणो। बीइंदि०अपज्ज० उक्क० जोगो असंखेंज्जगुणो। एवं तेइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णि-पंचिंदि०-सण्णिपंचिंदि०अपज्ज० उक्क० जोगो असं०गुणो। बीइंदि०पज्जत्त० उक्क० जोगो असं०गुणो। एवं तीइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णिपंचिं०-सण्णिपंचिंदि०पज्जत्त० उक्क० जोगो असंखें०गुणो। एवमेंक्केंक्कस्स जीवस्स जोगगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेंज्जदिभागो।

एवं जोगट्ठाणपरूवणा समत्ता।

पदेसबंधट्ठाणपरूवणा

३४१. पदेसबंधट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवा सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णयं पदेसग्गं। बादर०अपज्ज० जह० पदेसग्गं असंखेंज्जगुणं। एवं बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णिपंचिंदि०-सण्णिपंचिंदि[3]०अपज्जत्त० जह० पदेसग्गं असंखेंज्जगुणं। सुहुमस्स

असंख्यातगुणा है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके जघन्य योगस्थानसे सूक्ष्म पर्याप्तका जघन्य योग असंख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य योग असंख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्म अपर्याप्तका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। उससे बादर अपर्याप्तका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्म पर्याप्तका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। उससे बादर पर्याप्तका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य योग असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार क्रमसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवका जघन्य योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार क्रमसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवका उत्कृष्ट योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट योगसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार क्रमसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवका उत्कृष्ट योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार एक-एक जीवका उत्तरोत्तर योग गुणकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार योगस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई।

प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणा

३४१. प्रदेशबन्धस्थानप्ररूपणाकी अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। उससे बादर अपर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार क्रमसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय

१. ता०प्रतौ 'जोग० असंखेज्जगुणं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ '-पज्जत्त० जोगो० जह० असंखेज्जगु०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ० 'असण्णिपंचिंदि०। सण्णिपंचिंदि०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्त० जह० पदेसग्गं असंखेँज्जगुणं। एवं बादर०पज्जत्त०। सुहुम०अपज्जत्त० उक्क० पदेसग्गं असंखेँ०गुणं। बादर०अपज्ज० उक्क० पदे० असं०गुणं। सुहुम०पज्ज० उक्क० पदे० असं०गुणं। बादर०पज्जत्त० उक्क० पदे० असं०गुणं। बेइंदि०पज्जत्त० जह० पदे० असं०गुणं। एवं तीइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णिपंचिंदि०-सण्णिपंचिंदि०पज्जत्त० जह० पदे० असं०गुणं। बीइंदि०अपज्ज० उक्क० पदे० असं०गुणं। एवं तेइंदि०-चदुरिंदि० - असण्णिपंचिंदि० - सण्णिपंचिंदि०अपज्ज० उक्क० पदे० असंखेँ०गुणं। बीइंदि०पज्जत्त० उक्क० पदे० असं०गुणं। एवं तेइंदि०-चदुरिंदि०-असण्णिपंचिंदि०-सण्णिपंचिंदि०पज्जत्त० उक्क० पदे० असं०गु०। एवमेँक्केँक्कस्स जीवस्स पदेसगुणगारो[2] पलिदोवमस्स असंखेँज्जदिभागो।

एवं पदेसबंधट्ठाणपरूवणा समत्ता।

अप्पाबहुगं

३४२. अप्पाबहुगं तिविहं—जहण्णयं उक्कस्सयं जहण्णुकस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण तिण्णिआउगाणं वेउव्वियछक्क० तित्थयरस्स य सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा। अणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असं०गुणा। आहारदुगस्स सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा। अणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा

अपर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। आगे सूक्ष्म पर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे बादर पर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्म अपर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे बादर अपर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्म पर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे बादर पर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार क्रमसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य प्रदेशाग्र उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है। आगे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार आगे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। आगे द्वीन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार आगे क्रमसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवका उत्कृष्ट प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक-एकका प्रदेश गुणकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार प्रदेशबन्धस्थान प्ररूपणा समाप्त हुई।

अल्पबहुत्व

३४२. अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे तीन आयु, वैक्रियिकषट्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अनुकृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विकके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे

१. ता०प्रतौ 'बीइं उ (अ) प०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'एवमेक्केकस्स पदेसगुणगारो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेंज्जगुणा । सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा । [अणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा] अणंतगुणा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंजद-अचक्खुदं० - तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-आहार-अणाहारग त्ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारगेसु देवगदिपंचग० सव्वत्थोवा उक्क०पदेस०बं० जीवा । अणुक्क०-पदेसबंध० जीवा संखेंज्जगुणा । सेसाणं णिरयादि याव सण्णि त्ति एसिं असंखेंज्जरासीणं[1] तेसिं एइंदिय-वणप्फदि-णियोदाणं च ओघं देवगदिभंगो । णवरि णिरएसु मणुसाउगमादीणं याव सासण त्ति एसिं परियत्त-अपरियत्तरासीणं याओ पगदीओ परिमाणे संखेंज्जाओ तासिं पगदीणं ओघं आहारसरीरभंगो ।

एवं उक्कस्सगं अप्पाबहुगं समत्तं[2] ।

३४३. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० आहारदुगं सव्वत्थोवा जह०पदे०बंधगा जीवा । अजह०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगुणा । एवं याव अणाहारग त्ति संखेंज्जपगदीणं सव्वाणं । सेसाणं पगदीणं णाणावरणादीणं सव्वत्थोवा जह०पदे०-

अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष नारकियोंसे लेकर संज्ञी मार्गणा तक जो असंख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ हैं उनमें तथा एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें ओघसे देवगतिके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें मनुष्यायु आदिका सासादनसम्यग्दृष्टि तक तथा परिवर्तमान और अपरिवर्तमान जिन प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं उन प्रकृतियोंका ओघसे आहारकशरीरके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

३४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अजघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अनाहारक मार्गणा तक जिन प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले जो संख्यात जीव हैं, उन सबका भङ्ग इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् जिन प्रकृतियोंका किन्हीं भी मार्गणाओंमें संख्यात जीव बन्ध करते हैं उनमें तथा जिन मार्गणाओंका परिमाण ही संख्यात है, उनमें ओघसे आहारकशरीरके समान भंङ्ग जानना चाहिए। शेष ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंका

१. ता०प्रतौ 'ए[सिं] असंखेज्जरासीणं' इति पाठः । २. ता०प्रतौ 'एवं उक्कस्सगं समत्तं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधगा जीवा। अजहण्णपदे०बं० जीवा असं०गुणा। एवं याव अणाहारग त्ति असंखेंज्जरासीणं अणंतरासीणं च सव्वेसिं च णेदव्वं।

३४४. जहण्णुक्कस्सए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-दोवेद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि - पंचजादि-तिण्णि-सरीर-छस्संठाण-ओरा०अंगो०[1] - छस्संघ०-वण्ण०४ - दोआणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगोद०-पंचंतरा० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदेसबं० जीवा अणंतगु०। अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबं० जीवा असंखेंज्जगुणा[3]। णिरय-मणुस-देवाउ-णिरयगदि-णिरयाणु०[4] सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असं०गुणा। अजहण्णमणुक्कस्सपदे०बं०[5] जीवा असं०गुणा। देवगदि०४ सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गुणा। आहारदु० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगुणा। अज०मणु०पदे०बं० जीवा सं०गुणा। तित्थ० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असंखें०गुणा।

बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अजघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात-गुणे हैं। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक असंख्यात राशिवाली और अनन्त राशिवाली जितनी मार्गणाएँ हैं, उन सबमें जानना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

३४४. जघन्योत्कृष्ट अल्पबहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चायु, दो गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरकायु, मनुष्यायु, देवायु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विकके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य

---

१. ता०प्रतौ 'आ०। पंचणा०' इति पाठः। २. आ०प्रतौ 'पंचणा० तिण्णिसरीर छसंठाण अंगो०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'असंखेज्जगुणं (णा)' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'देवाउणिरयाणु०' इति पाठः। ५. ता०प्रतौ 'अजह० अं (अ) णुक्क० पदे०बं०' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइका०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-असंजद-अचक्खुदं०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०- अणाहार० देवगदि-पंचग० ओघं। णवरि संखेंज्जं कादव्वं।

३४५. णिरएसु छदंस०-बारसक०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ० सव्वत्थोवा उक्क०पदे० बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगु०। अज०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। मणुसाउ० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जी० संखेंज्जगु०[1]। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगु०[2]। सेसाणं पगदीणं तित्थय० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। एवं सत्तसु पुढवीसु। सव्वत्थोवा............संखेंज्जं[3] कादव्वं।

४४६. तिरिक्खेसु ओघं। पंचिंदियतिरिक्खि० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०-पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। देवगदि०४ ओघभंगो। पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु पंचणा०-थीणगि०३-दोवेदणी०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-मणुसाउ-देवाउ-देवगदि०४-

अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगति-पञ्चकका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणे करना चाहिए।

३४५. नारकियोंमें छह दर्शनावरण, बारह कषाय, सात नोकषाय, और तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए।............संख्यात कहना चाहिए।

३४६. तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें पाँच ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक, दो वेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्रीवेद, मनुष्यायु, देवायु,

१. ता०आ०प्रत्योः 'असं०गु०' इति पाठः। २. ता०आ०प्रत्योः 'असंखेजगु०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'सव्वत्थोवा.........रे संखेज्जं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उच्चा० - पंचंतरा० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगुणा। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असंखेंज्ज-गुणा। सेसाणं पगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असं० गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०पदेबं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगु०। अज०मणु०पदे०-बं० जीवा असं०गु०। एवं[1] एइंदिय-बादरेइंदिय-विगलिंदियाणं तिण्णिपदा। पंचिंदिय-तसअपज्ज० पंचकायाणं च ओघं पदा। तेसिं बादराणं ओघं पदा। बादरेइंदियपज्जत्ता[2] सव्वसुहुमपंचकायाणं बादरपज्जत्तापज्जत्ताणं तेसिं सव्वसुहुमाणं सव्वत्थोवा जह०पदे०-बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गुणा। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। किं कारणं जह०पदे० जीवा थोवा? सगरासिस्स असंखेंज्जदिभागो जहण्णयं करेदि त्ति। मणुसाउ० ओघो।

३४७. मणुसेसु दोआउ-वेउव्वियछक्कं आहारदुगं तित्थ० ओघं आहारसरीरभंगो। सेसाणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जी० असं०गु०। अजह०-मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा

देवगतिचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असं-ख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोंमें तीन पदोंका अल्प-बहुत्व जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और पाँच स्थावरकायिकोंमें ओघके अनुसार पदोंका अल्पबहुत्व है। उनके बादरोंमें ओघके अनुसार पदोंका अल्पबहुत्व है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, सब सूक्ष्म पाँच स्थावरकायिक, बादर पर्याप्त और बादर अपर्याप्त तथा उनके सब सूक्ष्म जीवोंमें जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं, इसका क्या कारण है? क्योंकि अपनी राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करते हैं। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है।

३४७. मनुष्योंमें दो आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघसे आहारकशरीरके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक

१. आ०प्रतौ 'जह०पदे०बं० जीवा असंखेज्जगु०। एवं' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'पद (दा) बादर-एइंदियपज्जत्ता' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगु०। णवरि पंचणा०-छदंस०सादा०-बारसक०-सत्तणोक०-जस०-उच्चा०-पंचंत० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगु०। अजह०मणु०-पदे०बं० जीवा संखेँज्जगु०। मणुसअपज्ज० णिरयभंगो।

३४८. पंचिंदिय-तसाणं देवगदि०४ सादाणं ओघं। सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। पंचिंदियपज्जत्तगेसु थीणगिद्धि०३-असाद०-मिच्छ-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-देवगदि४-पंचसंठा०-पंचसंघ०-पर०उस्सा०-आदाउज्जो० - पसत्थ०-पज्जत्त-थिर-सुभ-सुस्सर-आदे०-णीचा० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजहण्णमणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। पंचणा०-छदंस०-सादा०-बारसक०-सत्तणोक०-चदुआउ०-तिण्णिगदि-पंचजादि-ओरालि० - तेजा०-क० - हुंड० - ओरालि०-अंगो०-असंप०-वण्ण०४-तिण्णिआउ०-अगु०-उप० - अप्पसत्थ०-तस-थावर-बादर-सुहुम-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-अथिरादिछक्क-जसगि०-णिमि०-उच्चागो०-पंचंत० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। आहारदुगं तित्थय० ओघं। एवं तसपज्जत्त०।

जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है।

३४८. पञ्चेन्द्रिय और त्रस जीवोंमें देवगतिचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, देवगतिचतुष्क, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, स्थिर, शुभ, सुस्वर, आदेय और नीचगोत्रके जघन्य प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, चार आयु, तीन गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, तीन आयु, अगुरुलघु, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, अस्थिर आदि छह, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार त्रसपर्याप्तक जीवोंमें जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४९. पंचमण०-तिण्णिवचि० मणुसग०-देवग०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०-अंगो०-दोआणु० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। आहारदुगं तित्थयरं ओघं। सेसाणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। वचिजोगि०-असच्चमोसवचि० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। आहारदुगं तित्थ० ओघं।

३५०. कायजो०-ओरालियका०-ओरालियमि० ओघभंगो। वेउव्वियका० देवोघं। वेउव्वियमि० छदंसणा०-बारसक०-सत्तणोक० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। एवं सव्वपगदीणं। णवरि मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। तित्थ० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगु०। अजह०मणुक०-पदे०बं० जीवा संखेंज्जगुणा। आहारकायजोगीसु सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० संखेंज्जगु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगु०।

३४९. पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें मनुष्यगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग और दो आनुपूर्वीके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उससे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर-प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

३५०. काययोगी, औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छह दर्शनावरण, बारह कषाय और सात नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। आहारककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारमिस्स० वेउव्वियमिस्स०भंगो। णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं। कम्मइग० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०ब० जीवा। जह०पदे०ब० जीवा अणंतगु०। अजह०मणु०-पदे०ब० जीवा असं०गु०। देवगदि०४ ओघं। णवरि संखेंज्जगुणं कादव्वं। तित्थयरं वेउव्वियमिस्स०भंगो।

३५१. इत्थिवेदगे पंचणाणावरणीय-थीणगि०३-सादासाद०-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-पसत्थ०-पज्ज० - थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदें०-दोगोद०-पंचंत० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०ब० जी० असं०गु०। सेसाणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०ब० जीवा। जह०पदे०ब० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०ब० असं०गु०। आहारदुगं ओघं। तित्थ० सव्वत्थोवा जह०पदे०ब० जीवा। उक्क०पदे०-ब० जीवा संखेंज्जगु०। अजह०मणु०पदे०ब० जीवा संखेंज्जगु०। एवं पुरिसवेदगेसु। णवरि आहारदुगं तित्थ० ओघभंगो। णवुंस० ओघं। णवरि देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०ब० जीवा। जह०पदे०ब० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०ब० जीवा असंखें०गु०। तित्थय० सव्वत्थोवा जह०-

---

अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए। तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है।

३५१. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणीय, स्त्यानगृद्धित्रिक, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विकका भङ्ग ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पुरुषवेदवाले जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। नपुंसकवेदवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीर आङ्गो-पाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगुणा। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगुणा।

३५२. कोध-माण-माय-लोभकसाईसु ओघभंगो। मदि-सुद० ओघभंगो। णवरि देवगदि०४ णिरयगदिभंगो। विभंग० देवगदि०४ सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असं०गु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असं०गु०। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं०[1] जीवा। जह०पदे०बं० जीवा असंखेंज्ज-गुणा। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगुणा।

३५३. आभिणि-सुद-ओधिणाणीसु पंचणाणावरणीय-चदुदंस०-सादा०चदुसंजल०-पुरिस०-देवाउ०-जसगि०-उच्चा०-पंचंत० सव्वत्थोवा[2] उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०-पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगु०। मणुसाउगं णिरयभंगो। आहारदुगं तित्थ० ओघभंगो। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा जह०-पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगु०। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा असंखेंज्जगुणा। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०। णवरि उवसम० तित्थय० सव्वत्थोवा जह०पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा संखेंज्जगुणा। अजह०मणु०पदे०-बं० जीवा संखेंज्जगुणा।

उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

३५२. क्रोधकषायवाले, मानकषायवाले, मायाकषायवाले और लोभकषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कका भङ्ग नरकगतिके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें देवगतिचतुष्कके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

३५३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, देवायु, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुका भङ्ग नारकियोंके समान है। आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थङ्करप्रकृतिके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव

---

१. ता०प्रतौ 'सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा णं (?) उक्क०पदे०' आ०प्रतौ सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवाण उक्क०पदे०बं०' इति पाठः। २. आ० प्रतौ 'पंचणाणावरणीय सव्वत्थोवा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५४. मणपज्जव० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-चदुसंजल०-पुरिस०-जसगि[1]०-उच्चा०पंचंतरा० सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगुणा। अजहण्णमणु०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगुणा। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा जह० पदे०बं० जीवा। उक्क०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगुणा। अजह०मणु०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगुणा। एवं संजदा०। सामाइ०-छेदो०-परिहार० सव्वपगदीणं मणपज्जव०असादभंगो। णवरि सामाइ०-छेदो० चदुदंस०-पुरिस[2]०-जसगित्ति० मणपज्जवभंगो।

३५५. सुहुमसंप० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा उक्क०पदे०बं० जीवा। जह०-पदे०बं० जीवा संखेँज्जगुणा। अजहण्णमणु०पदे०बं० जीवा संखेँज्जगुणा। एवं अवगदवेदाणं पि। संजदासंजदेसु असाद०-अरदि-सोग-देवाउ० सव्वत्थोवा उक्कस्स-पदेसबंधगा जीवा। जहण्णपदेसबंधगा जीवा असंखेँज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्स-पदेसबंधगा जीवा[3] असंखेँज्जगुणा। सेसाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा जहण्णपदेसबंधगा जीवा। उक्कस्सपदेसबंधगा[4] जीवा असंखेँज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेँज्जगुणा। असंजदेसु तिरिक्खोघं। णवरि तित्थयरं ओघं। एवं किण्णलेस्सिय-

---

सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे।

३५४. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार संयत जीवोंमें जानना चाहिए। सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानियोंमें कहे गये असातावेदनीयके समान है। इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें चार दर्शनावरण, पुरुषवेद, और यशःकीर्तिका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है।

३५५. सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें असातावेदनीय, अरति, शोक और देवायुके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। असंयत जीवोंमें सामान्य

---

१. ता०आ०प्रत्योः 'पुरिस० उवसम० जसगि०' इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'चदुदंस० पुरिस०' इति पाठः। ३. ता०प्रतौ 'पदेसबंधोवा (धगा) जीवा' इति पाठः। ४. ता०प्रतौ 'उक्कस्स उक्कस्स (?) पदेस-बंधगा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणं। णवरि किण्ण-णीलाणं तित्थयरं इत्थि०भंगो। चक्खुदंसणी० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदंसणी० ओघं।

३५६. तेउ-पम्मासु छदंसणावरणीयाणं बारहकसायं सत्तणोकसायं सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा। जहण्णपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा। मणुसाउगं देवभंगो। देवाउगं ओधि०भंगो। सेसाणं सव्वत्थोवा जहण्णपदेसबंधगा जीवा। उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा।

३५७. सुक्काए पंचणाणावरणीयाणं चदुदंस० सादा० चदुसंजल० पुरिस० जसगित्ति उच्चागोद पंचण्णं अंतराइगाणं च सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा। जहण्णपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा। दोआउ० देवभंगो। सेसाणं सव्वत्थोवा जहण्णपदेसबंधगा जीवा। उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा।

३५८. भवसिद्धिया० ओघं। अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि० मदि०भंगो। वेदगसम्मादिट्ठी० सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा जहण्णपदेसबंधगा जीवा। उक्कस्सपदेस-

---

तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अर्थात् असंयत जीवोंके समान कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्यावाले जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रस पर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

३५६. पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय और सात नोकषायोंके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

३५७. शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

३५८. भव्य जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा । अजहण्णमणुकस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा । एवं सासण०-सम्मामि० । सण्णीसु पंचणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०[1]-जसगित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं च सव्वत्थोवा उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा । जहण्ण-पदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा । अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्ज-गुणा । एवं चदुण्णमाउगाणं णाणावरणभंगो । आहारदुगं तित्थयरं च ओघं । सेस-पगदीणं सव्वत्थोवा जहण्णपदेसबंधगा जीवा । उक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा । अजहण्णमणुक्कस्सपदेसबंधगा जीवा असंखेंज्जगुणा । एवं एदेण बीजेण चिंतेदूण णेदव्वं भवंति । आहार० ओघो । अणाहार० कम्मइगकायजोगिभंगो ।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं जीवसमुदाहारे त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

एवं पदेसबंधो समत्तो[2] ।

एवं बंधविधाणे त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

एवं चदुविधो बंधो समत्तो ।

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए । संज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार चार आयुओंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशोंके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशोंके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार विचार कर ले जाना चाहिए । आहारक जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार जीवसमुदाहार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

इस प्रकार प्रदेशबन्ध समाप्त हुआ ।

इस प्रकार बन्धन अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

इस प्रकार चार प्रकारका बन्ध समाप्त हुआ ।

अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें सब साधुओंको नमस्कार हो ।

---

१. आ०प्रतौ 'सादावे० पुरिस०' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'पदेसबंधं समत्तं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org